UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178820

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H83 T36B

Accession No. 4H853

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before marked below.

भावी समाज की

भूमिका

(भारत के क्रान्ति युग का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास)

समालोचनार्थ

लेखक —

बलभद्र ठाकुर साहित्याचार्य

प्रकाशक —

शक्ति पब्लिकेशन्स,

फ़ीरोज़पुर शहर माडल टाऊन लुध्याना

प्रकाशक—
योगेन्द्र मोहन 'गुप्त'
प्रभाकर, ज्ञानी
प्रोप्राइटर, शक्ति पब्लिकेशन्स,
माडल टाउन, लुध्याना व फीरोज़पुर शहर।

प्रथमावृत्ति २००० : अक्तूबर, १९५० : मूल्य ४॥।=)

मुद्रक
श्री प्राणराज गुप्ता
नेशनल प्रैस, फीरोज़पुर शहर
(पृष्ठ १–९६ श्री बालकृष्ण एम. ए. द्वारा
युगान्तर प्रैस, मोरी गेट, देहली में छपे।)

समर्पण

"माँ के स्वर्गीय चरणों में"

— लेखक

लेखक की अन्य कृतियां

१. विश्व-नागरिक गांधी	(अनुवाद)	(अंग्रेजी से)
२. कप्तान की कन्या	,,	(रूसी से)
३. निराश प्रणयी	,,	,,
४. रूसी कहानियाँ	,,	,,
५. गृहदाह	,,	(बङ्गला से)
६. चरित्रहीन	,,	,,
७. दत्ता	,,	,,
८. श्रीकान्त (चारों भाग)	,,	,,
९. बिन्दू का लड़का (कहानियाँ)	,,	,,
१०. राधा (प्रेस में)	(मौलिक)	(उपन्यास)
११. पुनर्जन्म ,,	,,	,,
१२. काला पानी ,,	,,	(भ्रमण)
१३. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सर्वसंग्रह	(संपादित)	

आपकी सेवा में

अपने घुमन्तू जीवन में बहुत कुछ देखा, भीतर और बाहर की आँखों से। उन्हीं में से कुछ को कथा-सूत्र में पिरोकर रख रहा हूँ आपकी सेवा में। सब सत्य है, देखने और समझने की अपनी निज की आँखें, निज की प्रज्ञा चाहिये।

यदि 'कला कला के लिये', तो फिर औरों के लिये इसका प्रयोजन ? मैं नहीं मानता इस सिद्धांत को !

मैं मानता हूँ 'कला है समाज के लिये, संसार के लिये और सब से बढ़कर अखिल-अखंड मानव-जाति के लिये'। कला का परम एवं चरम लक्ष्य केवल मनोरंजन न होकर उसके द्वारा समाज, संसार और अखंड मानव-समाज को उसके कृष्ण पक्ष से हटाकर शुक्ल पक्ष की ओर उन्मुख करना, विमूढ़ मानवता में महत्-आकांक्षा की उत्सुकता भरना, निराशा के दलदल में फँसे समाज और संसार के समक्ष एक आशाभरी दुनिया के चित्र खींच देना होना चाहिये।

केवल बुद्धिमात्र को स्पर्श करने वाली कथा-कृति कला की कोटि में आकर भी अवर ही ठहरेगी। कला की उत्कृष्टता तो उस कथा में प्रतिफलित होती है, जो हृदय और बुद्धि को एक साथ झकझोरती चलती है, जहाँ बुद्धि पर हृदय का साम्राज्य होता है, जहाँ कुबुद्धि सुबुद्धि से हार खाती है, और जहाँ खंड अखंड बनकर अखिलत्व के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है।

युग का कलाकार ही युग-युग का कलाकार होता है; लेकिन तब, जब उसकी कृति में युग-धर्म, युग-परिस्थिति और युग-समाज अपने विभिन्न रूपों के साथ सही रूप में प्रतिबिंबित हुआ हो ; जो युग-धर्म को स्पन्दित करे, युग-समाज को प्रेरणा दे, और तत्कालीन समाज की आँखों में अंगुली डाल-डालकर उसे उसकी बुराइयों से आगाह करे, ऊपर उठने की प्रेरणा दे।

प्रेमचंद जनता और युग के कलाकार थे। उनकी कृतियों में ऊपर कही सारी बातें न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती हैं, अतः वे युग के, युग-युग के और जनता के कलाकार हैं। उन्हें इस पद से हटाने की चेष्टा करके भी कोई हटा नहीं सकता। जनता उन्हें अपना चुकी है। वाल्मीकि और तुलसी युग के कलाकार बनकर ही युग-युग के कलाकार बन सके।

मैं कलाकार नहीं हूँ, और न यह आशा ही करता हूँ कि यह मेरी आरंभिक कृति कला की कसौटी पर खरी उतरेगी। पर इतना अवश्य जानता हूँ कि सचाई के अनगढ़ पत्थरों से बने इस कथा-कोट में बहुत कुछ नयापन, अपनापन और अनोखापन आपको दीखेगा जिसे हर हृदयवान् देखना चाहता है। और दीखेगा एक ऐसे समाज और संसार का रूप जो भावी समाज और संसार की **'भूमिका'** है; जहाँ स्वार्थ के काले बाजार की अंधेरी एवं गंदी गलियों का दिग्दर्शन कराकर एक उस आलोकमयी नई दुनिया का दर्शन कराया गया है जहाँ समता और ममता का साम्राज्य है, मनुष्य मनुष्य है, और हर मानव के मन में विश्व-बन्धुत्व का भाव भरा है। और आश्चर्य तो यह, कि इस नये समाज और संसार के निर्माण में खून की एक बूँद भी नहीं बही, और बहेगी भी नहीं, बशर्ते कि हम.....

अब इसके बाद आप इस उपन्यास को पढ़ें और स्वयं सोचें।

विनीत—
लेखक

हिन्दी नगर, वर्धा
१४. ६. ५०

भूमिका

: १ :

सन् १९३० का देशव्यापी सत्याग्रह-आन्दोलन अपने पूरे उत्कर्ष पर था। महात्मा गांधी के अह्वान ने देश के नर-नारियों में देशभक्ति की तूफ़ानी तरंग पैदा कर दी थी। सब मानो सोते से जगे थे। आज़ादी की बलिवेदी पर हँस-हँसकर निछावर हो जाने की अडिग भावना सबमें काम कर रही थी। देश के छात्र स्कूल-कालेज त्याग कर स्वातन्त्र्य-संग्राम में कूद पड़े थे। अमीरों के लाड़ले विलासिता के तंग तहख़ाने से निकलकर त्याग और बलिदान के विशाल मैदान में आ डटे थे। निर्धन किसानों के कुमार भूखे परिवार की परवाह न कर अपने को उत्सर्ग करने घर से निकल पड़े थे। 'भारत के शेर जागो' इस राष्ट्र-गीत के सुरीले स्वर किस हृदय को आन्दोलित न कर उठते? हर गाँव में स्वयं-सेवकों की घूमती टोलियाँ 'रघुपति राघव राजा राम' की मधुर ध्वनि से किस हृदय में आन्दोलन के प्रति श्रद्धा का स्रोत न बहा देतीं? गाँव-गाँव में ताड़ के पेड़ काटे जा रहे थे। ताड़ीख़ानों और शराबख़ानों पर धरने दिये जा रहे थे। मिट्टी से नमक बनाकर नमक-क़ानून को तोड़ा जा रहा था। नंगे फकीर की करामात ने देश भर में भावुकता की एक अद्भुत् बाढ़ बहा

दी थी। नौकरशाही काँप उठी थी; बृटिश साम्राज्यवाद दहल उठा था।

चन्द्रभानुपुर का गांधी-आश्रम आज नौ वर्ष बाद पुनः मानव-आश्रम बन गया था। सन् १९२१ के देशव्यापी सत्याग्रह-आन्दोलन के समय इस पवित्र आश्रम की नींव पड़ी थी, किन्तु उस सत्याग्रह की समाप्ति के बाद यह आश्रम भी नाममात्र का आश्रम रह गया था, या यों कहिए कि कुछेक रंगे देशभक्तों के वैयक्तिक स्वार्थ-साधन का अखाड़ा। सन् १९३० के आन्दोलन ने पुनः इस अखाड़े को आश्रम में परिणत कर दिया। चन्द्रभानुपुर के चतुर्दिक् चार-पाँच मील तक के गाँवों में काम करने वाले स्वयंसेवकों का केन्द्र यह आश्रम था। आश्रम ने अमीरों और ग़रीबों को एक समान सतह पर ला खड़ा किया था। आश्रम का वातावरण इतना पवित्र और इतना निष्कलुष था, कि उसमें पदार्पण करते ही अमीर अपनी अमीरी को, और गरीब अपनी गरीबी को भूल जाते। प्रत्येक स्वयंसेवक एक-दूसरे का सम्मान करते। छोटे-बड़े का भेद न होते हुए भी छोटे-बड़े भाई की भांति रहते। आश्रम की रूखी-सूखी रोटी को सब एकसाथ बड़े चाव से खाते। कोई भी व्यक्ति अपने लिये अधिक की कामना नहीं करता। परिश्रम की अधिकता के लिये अवश्य सबों में होड़ लगी रहती। ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं, सारा आश्रम एक पवित्र परिवार में परिणत हो गया था। इस समता और ममता के आगे मार्क्स-प्रतिपादित साम्यवाद भी फीका लग रहा था।

इस आश्रम के इन समस्त स्वर्गीय गुणों का श्रेय महामानव गांधी के आदर्श के अतिरिक्त एक अन्य महामानवी को था, जो आश्रम की अधिष्ठात्री थीं। उनका नाम था अन्नपूर्णा देवी। सारा आश्रम उन्हें 'माँ' कहकर पुकारता। माँ की उम्र थी पचास के करीब। गोरा रंग, मझोला कद और आँखें बड़ी-बड़ी, जिनसे निरन्तर प्रेम और ममता की ज्योति छिटकती रहती। चौड़े ललाट पर निर्धूम अग्नि जैसी एक आभा सदा खेलती रहती। शिर के बाल मुड़े थे, जो उनके वैधव्य का प्रतीक था। हृदय की उच्चाशयता और पवित्रता उनके सदा हँसते चेहरे पर विराजमान थी। इस महामानवी के दर्शनमात्र से हृदय के समस्त दुर्गुण दूर हो जाते, आत्मा परिपूत हो जाती। देश के अन्य आश्रमों की अपेक्षा इस आश्रम में यही एक विशेषता थी।

× × ×

गांधी की जादू भरी पुकार ने देश के अन्य नवयुवकों की तरह हरिहरपुर के एक नन्हें नौजवान को पागल बना दिया। इसका नाम था सुमनचन्द्र। उम्र थी पंद्रह साल की। अपने गाँव के हाई स्कूल में दसवें दर्जे में वह पढ़ रहा था। बड़ा प्रतिभाशाली था। बड़ा सुन्दर था। गुलाबी गालों और दीर्घ-आयत नेत्रों से युक्त उसके गोरे मुखड़े पर एक अद्भुत् अल्हड़पन का भाव सदा खेलता रहता। घर-भर का प्यारा था। सबसे छोटी सन्तान होने के कारण अपनी माँ की आँखों का तारा था। बहिन पार्वती का दुलारा और भाभी प्रतिभा का प्यारा खिलौना। अपने पिता

हरिनाथ बाबू के भग्न मनोरथ का एकमात्र सहारा था। अपने बड़े भाई भुवनचन्द्र को सत्याग्रह में शामिल होते देख इसका दिल भी ललक उठा। दौड़ा हुआ पिता के पास पहुँचा।

"मैं सत्याग्रह में जाऊँगा बाबूजी!" गिड़गिड़ाते हुए वह अपने पिता से बोला।

"कैसा सत्याग्रह बेटा?"—हरिनाथ बाबू ने पूछा।

"गांधीजी का सत्याग्रह-आन्दोलन चल रहा है, उसी में बाबूजी!"

"पागल तो नहीं हो गये?"

"भैया जो गये हैं।"

'भैया' यह शब्द सुनते ही हरिनाथ बाबू की देह में मानो आग लग गई। हृदय का दबा क्रोध सहस्रधार होकर फूट पड़ा। हाथ-मुँह चमका कर बोले—"भैया जो गये हैं! भैया तुम्हारे आवारा हैं, कामचोर हैं। उसी की तरह पढ़ाई-लिखाई छोड़कर आवारा बनना हो, रुपया बरबाद करना हो, कुल में दाग़ लगाना हो, बाप-दादों का मुँह काला करना हो, तो तू भी सत्याग्रह में जा। अभागे! ताड़ के पेड़ काटकर और मिट्टी का नमक बनाकर अंग्रेज़ बहादुर का तख्ता उलटने चले हैं! सुराज लेने चले हैं! न जाने यह अभागा गांधी कहाँ से आ गया! पाखण्डी, मिथ्यावादी, धोखेबाज़! सन् २१ में भी इसने सत्याग्रह कराया था। लोगों से कहा था कि साल के भीतर सुराज मिल जायगा। कहाँ मिला सुराज? भुवन भी तब तुम्हारी ही उमर का था! सत्याग्रह

में चम-चम कर रहा था। पढ़ाई-लिखाई छोड़कर आश्रम में चला गया और बाद में आवारा बन गया। घर में पड़े विलायती कपड़ों के कितने गट्ठे उसने जला डाले। गाँववालों का कितना सत्यानास हुआ! कितनों की पढ़ाई गयी, लिखाई गयी। कितनों के बच्चे गोलियों से भून डाले गये। कितनों की ज़मीन-जायदाद ज़ब्त हो गयी। हत्यारा गांधी फिर वही सब कराना चाहता है। उसका अपना क्या बिगड़ता है? बिगड़ता है जिसका तिसका। तुझे भी यही सब कराना है तो सत्याग्रह में जा। आजकल के छोकरे माँ-बाप का कहना थोड़े ही मानेंगे?"

एक साँस में ही हरिनाथ बाबू अपने जलते हृदय का उद्गार उगल गये। सुमन भौंचक्का रह गया। उसे ऐसी आशा न थी। उसके समान उम्र के बच्चे हँस-हँसकर सत्याग्रह में भाग ले रहे थे। खादी की वर्दियों में सजी उनकी टोलियाँ तिरंगा झंडा लिये गाँव की गलियों में विचरा करतीं। उनके राष्ट्रीय गानों से वहाँ का आकाश गूँज रहा था। भला ऐसी स्थिति में सुमन कैसे अलग रह सकता था? उनमें शामिल होने को वह लालायित हो उठा। किन्तु उसे क्या पता कि पिता का पुँजीभूत क्रोध भुवन के बदले सुमन पर बरस पड़ेगा। अपना-सा मुँह लिये वह अपने कमरे में आ गया। निराशा आँसू बनकर आँखों से बह निकली। अपने तख़्तपोश पर पड़ा-पड़ा वह सिसकियाँ लेने लगा।

भावी सत्याग्रह का पूर्वाभिनय सुमन ने अपने घर में ही आरम्भ कर दिया। उसने भूख-हड़ताल कर दी। उसकी माँ कहीं

पड़ोस में गयी थीं। अपने लाड़ले की भूख-हड़ताल की बात सुनते ही वे व्याकुल हो गयीं। दौड़ी हुई उसके कमरे में पहुँचीं। बहन और भाभी पहले मनाकर हार मान चुकी थीं। सुमन 'डिगै न शंभु-शरासन' की तरह अड़ा हुआ था।

सुमन का दायाँ हाथ पकड़के माँ बोलीं—"उठ, चलकर खा ले! भात परोसा ठंडा हुआ जा रहा है।"

सुमन ने माँ का हाथ झिड़कते हुए जवाब दिया "जा, चली जा यहाँ से। मुझसे मत बोल, मैं नहीं खाऊँगा।"

"क्यों नहीं खायेगा?"

"मेरी इच्छा! मैं नहीं खाता। जाओ यहाँ से।"

"मैं नहीं जाती। तू नहीं खाता, तो मैं भी नहीं खाती।"

कोई दूसरा समय होता तो सुमन अपनी माँ के इस अचूक तीर का शिकार बन गया होता। माँ के लिये उसके दिल में श्रद्धा और स्नेह का अखंड स्रोत सदा बहता रहता। और यही समझकर माँ ने सदा की भाँति इस बार भी इस तीर का प्रयोग किया, किन्तु निशाना सधा नहीं। वार व्यर्थ गया।

सुमन कुछ रुखाई के साथ बोला—"मुझे नाहक लजाओ मत माँ! खाना-वाना मैं खाता नहीं। सत्याग्रह में जाके रहूँगा, या यहीं मर जाऊंगा।"

मरने की बात सुनते ही सुमन की माँ सिहर उठीं। पुनः उसका हाथ पकड़के अत्यन्त स्नेह-सने स्वर में बोलीं—"मेरा मुन्नू! मान जा। नहीं तो सारा घर उपास पड़ेगा।"

सुमन कुछ न बोला।

"अपने हठ के आगे क्या तुझे किसी पर भी दया-मया नहीं ? चल, अभी खा ले, फिर तेरे बाबूजी को कह-सुनकर मना लूँगी।"—कह कर माँ उसका हाथ झकझोरने लगीं।

सुमन इस बार बड़े ज़ोर से झल्लाकर बोला—"मुझे ज्यादा तंग मत करो माँ ! कहे देता हूँ। नहीं तो यहीं सिर पटक कर मर जाऊँगा।"

माँ चट अपना दायाँ हाथ उसके मुँह पर रखके घबड़ाकर बोलीं—"चुप कुलच्छना ! ऐसी बात मुँह से मत निकाल !"

और उसी क्षण भनभनाती हुई अपने पतिदेव के पास पहुँचीं और गरजकर बोलीं—"मेरे बच्चे का मरा मुँह देखकर ही तुम्हारी छाती ठंडी होगी न ? गाँव-भर के बच्चे सत्याग्रह में जा रहे हैं। हँस रहे हैं, खेल रहे हैं। अगर मेरा सुमन भी चला गया तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ेगा ? उसने अन्न-पानी त्याग दिया है। कहता है मर जाऊँगा !"

एक तो पहले से ही हरिनाथ बाबू के दिल में क्रोध की आग सुलग रही थी, तिसपर पत्नी के तीखे ताने ने घी का काम किया। क्रोधाग्नि भभक उठी। वे बोले—"एक को लाड़-प्यार करके तुमने आवारा और सत्यानासी बना ही डाला। इसका भी उसी प्रकार सत्यानास करना चाहती हो ? मर जाने दो अभागे को ! मर जायँ दोनों ! मैं तो तंग आ गया इनसे।"

पतिदेव के मुख से भी वही कुलच्छन की बातें सुनकर उनका

दिल दहल उठा। दाँतों तले जीभ दबाके वे खड़ी रह गयीं। कुछेक क्षण बाद बगैर कुछ कहे वे वापिस आँगन में आ गयीं, और चुपचाप अपने कमरे में जाके बिछौने पर लेट गयीं।

उस रात सारे घर का उपवास रहा। हरिनाथ बाबू सदा की भांति सबसे पहले जीम चुके थे, अतः इस सामूहिक उपवास से वे बच गये। सुमन की माँ भूखे पुत्र की याद कर रात-भर आँसुओं से तकिया भिगाती रहीं। हरिनाथ बाबू बिछौने पर पड़े-पड़े रात-भर पछताते रहे। उनकी जिद के कारण घर-भर को भूखा रहना पड़ा। इस बात का उन्हें और कचोट हो रहा था कि वे स्वयं जीम चुके थे। करवट बदलते रात बीती। हृदय उनका बदल गया। सुमन को सत्याग्रह में शामिल होने की अनुमति देने का निर्णय उन्होंने कर लिया।

भोर के वक़्त कुछ क्षण के लिये उनकी आँखें लगीं। फिर आँख खुलते ही वे सीधे सुमन के कमरे में जा पहुँचे, और तख़्तपोश पर पड़े सुमन की देह को हल्के हाथ से हिलाते हुए बोले—"सुम्मू, उठो! जल्दी हाथ-मुँह धोके कुछ खा लो! तुम्हारी खातिर रात सारा घर भूखा रह गया।"

सुमन जगा ही हुआ था, किन्तु उसने चुप्पी साध ली।

हरिनाथ बाबू अपने स्वर को अत्यधिक कोमल बनाके पुनः उसे हिलाते हुए बोले—"उठो बेटा, हठ मत करो! तुम्हें सत्याग्रह में जाने की आज्ञा देता हूँ। अब तो उठो, अब तो मान जाओ।"

सुमन इस बार एक हल्की सी अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। घर के

सत्याग्रह में वह विजयी हुआ। किन्तु सारे घर और खासकर माँ के भूखी रह जाने का उसे बड़ा क्षोभ [illegible] वह उसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा। हरिनाथ बाबू के वहाँ से हटते ही वह सीधा दौड़ा हुआ माँ के कमरे के पास पहुँचा। और 'भूख लगी है माँ, खाने को दो', कहते हुए वह किवाड़ की कुंडी खड़काने लगा। माँ भी जागी हुई थीं। किवाड़ खोल कमरे से बाहर निकलीं। सुमन की भूख की रट से उनके हृदय की सारी व्यथा मिट गई। इस प्रकार रात का यह कलह रात के साथ ही समाप्त हो गया।

× × ×

सुमन अपने घर के छोटे सत्याग्रह में सफल होकर देश के बड़े सत्याग्रह में कूद पड़ा। चंद्रभानुपुर आश्रम की अधिष्ठात्री श्री अन्नपूर्णा देवी इस कोमल किशोर स्वातंत्र्य योद्धा की ओर बरबस आकृष्ट होती गईं। यद्यपि आश्रम का प्रत्येक स्वयं-सेवक उनका प्रिय पुत्र था, किन्तु 'भवन्ति भव्येषु ही पक्षपाताः।' इस सर्वसामान्य प्राकृतिक नियम की अवहेलना वे भी न कर सकीं। परन्तु नन्हें सुमन के प्रति अपने विशेष आकर्षण को ऊपर से उन्होंने रंचमात्र भी व्यक्त न होने दिया।

और सुमन का कहना ही क्या? वह तो अपनी इस नई धर्म-माँ पर निछावर हो गया। मानव के सारे सद्गुण माँ अन्नपूर्णा में पुंजीभूत हो गये थे। ओछी प्रकृति का व्यक्ति भी माँ से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। सुमन तो यों ही निर्द्वंद्व, निष्कलुष, था। भला वह क्यों न प्रभावित होता? दिन पर दिन अपनी इस माँ का वह एकांत अनुगत बनता गया।

आश्रम में पाँच सौ के क़रीब स्वयंसेवक थे। कुछेक स्वयंसेविकाएँ भी थीं। इनमें १० से लेकर ५० साल तक की विभिन्न उम्र की क्वाँरी, ब्याही और विधवाएँ थीं। इन्हीं माँ-बहिनों पर सबको खिलाने-पिलाने का भार था। वे टोलियों में बँटी थीं। पाँच पाकशालाएँ थीं। हर टोली के जिम्मे एक पाकशाला होती, हर पाकशाला में सौ के लगभग स्वयंसेवक जीमते। माँ अन्नपूर्णा सबको खिलाके खातीं, सबको सुलाके सोतीं। रात को भोजनोपरांत हाथ में लालटेन लिये एक बार सारे आश्रम का चक्कर लगा आतीं। शांति नहीं, विश्रांति नहीं। इस विशाल मातृत्व का उत्तरदायित्व बड़ी योग्यता, तत्परता और प्रेम से वे निबाहे जा रही थीं। और सुमन घरेलू मातृत्व के संकुचित दायरे से निकलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाले विशाल मातृत्व की परिधि में प्रविष्ट हुआ। उसका संवेदनशील हृदय इस मातृत्व के अंक में अपने को पाकर निहाल हो गया, कृतकृत्य हो गया।

: २ :

"जा बेटा, सो जा! बहुत रात हो गई! दिन-भर का थका है तू!"

"तुम्हारे चरणों को छोड़ने को दिल नहीं करता माँ!"

"कहाँ छिपाकर रखूँ तेरे इतने बड़े प्यार को बेटा?"

"अपने बड़े से दिल में माँ!"

"तेरी इस माँ का इतना बड़ा दिल कहाँ बेटा?"

"इतना बड़ा दिल नहीं तो इतने लोग उसे प्यार कैसे करते हैं?"

"सो तो तुम लोगों का दिल बड़ा है, इसलिये।"

"तुम मुझे लजाकर भगाना चाहती हो, पर मैं भागता नहीं। अच्छा माँ, अगर मैं भी तुम्हारे पेट से पैदा हुआ होता ? तुम अगर मेरी अपनी माँ होतीं ?"

"तेरी माँ का ऐसा भाग्य कहाँ बेटा कि तेरे-जैसे हीरे को इस कोख से निकाले।"

"फिर मुझे लजाने लगीं ?"

"लजाती नहीं, सच कहती हूँ बेटा !"

"तुम्हारे पेट से पैदा होकर मैं भी सुरेन्द्र भैया जैसा होता माँ !"

सुमन के मुख से सुरेंद्र का नाम सुनते ही माँ अन्नपूर्णा के हृदय में एकाएक मातृत्व का स्रोत उमड़ पड़ा। वे झट उठ बैठीं और सुमन को खींचके छाती से लगाकर ममता-भरे स्वर में बोलीं—"मेरे सम्मू ! सुरेंद्र से अलग करके मैंने तुझे देखा ही कब है बेटा ! जिस दिन प्रथम-प्रथम तूने आश्रम में पैर रखा, मैं तो क्षण भर के लिये चौंक उठी। मैंने तुझ में स्वर्गीय सुरेंद्र की झलक देखी। सोचा मेरा सुरेंद्र मुझसे अलग नहीं रह सकता। वीरों और शहीदों का लोक — स्वर्ग—भी उसे नहीं रुचा। मेरे बिना उसका दिल वहाँ भी न लगा। अपने हृदय की उमड़ती भावुकता को मैंने दबाया। आखिर आश्रम के दूसरे स्वयंसेवक भी तो मेरे पुत्र ही हैं। उन्हींमें मैं अपने सुरेन्द्र को देखा करती हूँ, देखने की चेष्टा करती हूँ। पर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ बेटा ! दुर्बलता मुझ पर भी जब-तब वार कर बैठती है। तुझे विशेष दृष्टि से देखे बिना मुझसे रहा नहीं जाता। और सबसे अधिक आश्चर्य तो मुझे

तब हुआ जबकि तेरे बोल-चाल और गति-छवि में हूबहू सुरेन्द्र की ही प्रतिच्छवि दिखाई दी। मैं समझ गयी कि मेरी गोदी से बिछुड़ा सुरेन्द्र फिर मेरी गोद में आ पहुँचा है।"—कहकर अपने आँचल में छिपो सुमन की ठोड़ी को हाथ से ऊपर उठाकर उन्होंने चूम लिया।

× × ×

अन्नपूर्णादेवी चन्द्रभानुपुर की रहने वाली थीं। जाति से राजपूतिन थीं। पति का नाम ठाकुर मलखानसिंह था जो दो साल पहले स्वर्ग सिधार चुके थे। ठाकुर साहेब का गाँव के धनियों में शुमार होता। किसी चीज़ की कमी उन्हें न थी। उनके बड़े भाई का नाम था ठा. संग्रामसिंह। दोनों भाइयों में अलगा-अलगी, बाँट-बखरा हो चुका था। संग्रामसिंह बड़े चलते-पुर्जे थे। उनके दो लड़के रघुवीर और जीवन भी इस कला में पिता से ज़रा भी कम न थे। उस आस-पास में उनकी तूती बोलती। कितने किसान, कितने खाते-पीते परिवार इनके ड्यौढ़े-सवैये की तिकड़मबाज़ी के शिकार बनकर अपने सर्वस्व से हाथ धो चुके थे। इस प्रकार संग्रामसिंह की सम्पत्ति आशातीत स्मृद्ध हो उठी थी। लक्ष्मी अपने हाथ-पैर तोड़कर उनके घर में बैठ दिन-दूनी रात-चौगुनी होती जा रही थीं। इधर छोटे भाई ठाकुर मलखानसिंह की स्थिति बिल्कुल विपरीत थी। बड़े निःस्पृह व्यक्ति थे। उनके सीधे और सरल स्वभाव की गाँव-भर में चर्चा थी। फलस्वरूप उनकी सम्पत्ति-विषयक स्थिति वैसी ही थी, जैसी कि गाँव के भोले धनवानों की

होती है। कहते हैं, लक्ष्मी सीधे-सादों को नहीं चाहतीं। वह चाहती हैं 'कूदे-फाँदे तोड़े तान' वालों को। अतः मलखानसिंह की लक्ष्मी भी संग्रामसिंह की मक्कारी और नखरेबाज़ी का शिकार होने को तड़फ रही थी। इन्हीं मलखानसिंह के एकमात्र पुत्र का नाम सुरेन्द्र था।

अन्नपूर्णादेवी प्रत्येक स्वयंसेवक को खिला-पिला लेने के बाद स्वयं स्वयंसेविकाओं के साथ जीमने बैठतीं। जब-तब इन महिलाओं को अधपेटे पर ही संतोष करना पड़ता, किन्तु इससे उनके मन में ज़रा भी ग्लानि नहीं आने पाती। माँ बड़े गर्व से कहतीं—'स्त्रियों का सम्मान और सौभाग्य इसी में है कि पुरुषों को खिलाके खायँ।' और उस नन्हीं दससाला कमला की ओर मुड़ के कहतीं—'आ जा बिटिया, मेरी थाली में आ जा। तू तो आज भूखी ही रह गई।' और उत्तर में कमला तुनककर बोलती—'भूखी क्यों रहूँगी माँ? तुम खुद तो कभी भर-पेट खाती नहीं। दूसरों को ही खिलाने में मगन रहती हो। आखिर हम भी तो तुम्हारी ही जाति की हैं?' और माँ प्रेम-भरी मुस्कुराहट के साथ बोलतीं—'हमारी कमल बिटिया बड़ी सयानी है। उम्र की कच्ची और अक़्ल की पक्की। जब ससुराल जायगी, सास-ससुर बड़ा प्यार करेंगे।' इस पर कमल के मुख पर कमल की-जैसी हल्की लाली दौड़ती दीखती। दूसरी औरतें ठठाकर हँस पड़तीं, और वह शरमाकर दूसरी ओर मुँह कर लेती। सब खा-पीकर हँसी-खुशी अपने-अपने बिछौने पर चली जातीं, और माँ हाथ में लालटेन लेकर एक बार आश्रम का

चक्कर लगा आतीं। फिर अपने शयन-कुटीर में प्रविष्ट होतीं, जहाँ पहले से ही उनके इन्तजार में बैठा सुमन किसी किताब के पढ़ने में मशगूल रहता।

सुमन के लिये यह दैनिक नियम बन गया था। रात को भोजनोपरांत वह माँ की कुटिया में पहुँच जाता। माँ के आने तक किताबी कीड़ा बना रहता। माँ के कमरे में किताबों का ढेर लगा रहता। माँ अपने मायके के स्कूल में दर्जा पाँच तक पढ़ी थीं। पहले केवल रामायण, महाभारत भाषा-टीका के सहारे पढ़ा करतीं। किन्तु सुरेन्द्र के शहीद होने के बाद से तो वे भी किताबी कीड़ा बन गई थीं। सुरेन्द्र की सारी किताबें पढ़ डाली थीं। उन किताबों को सुमन भी बड़े चाव से पढ़ा करता। माँ के आकर बिछौने पर पड़ते ही वह उनके चरणों के निकट बैठ जाता। लाख मना करने पर भी माँ के चरण चाँपने लगता। सुरेन्द्र के सम्बन्ध में अधिक से अधिक पूछता। माँ भी अपने शहीद पुत्र की स्मृति से उत्तेजित हो विभोर होकर सुरेन्द्र की गौरव-गाथा सुनाने लगतीं। सुमन तन्मग्न होकर उस पुण्य-कथा का श्रवण करता। वक्ता-श्रोता दोनों ही एक समान रस में घण्टों भूले रहते। अन्त में माँ बड़े प्रेम और आग्रह से सुमन का हाथ पकड़ उसे बिछौने पर सुला आतीं, उसी प्रकार जैसे माँ अबोध शिशु को सुलाती है।

इसी प्रकार एक रात सुमन के आग्रह करने पर उन्होंने अपनी रामकहानी सुनाते हुए कहा था :—

"मेरा सुरेन्द्र तुम्हारे भुवन की उम्र का था। सन् २९ के सत्याग्रह में उसने बड़ा काम किया। गांधीजी की महानता और उनके अहिंसा-सिद्धांत में वह अटूट विश्वास लेकर चल रहा था। किन्तु एक दुर्घटना ने उसके इस विश्वास को बिल्कुल पलट दिया। दुर्घटना यों थी—

"प्रमोद, एक चौदहसाला बालक, सुरेन्द्र का अभिन्न मित्र था। दोनों दो-देह एक-दिल थे। सत्याग्रह करने के अपराध में काले मजिस्ट्रेट ने, जो हिन्दुस्तानी होकर भी अपनी अंग्रेज-परस्ती को हर तरह से साबित करने की चेष्टा करता, उसे तीस कोड़े की सजा सुनाई। सजा को अदालत में ही कार्यान्वित करने का आदेश दिया गया। उस दुधमुँहे बच्चे की नंगी पीठ पर जालिम ने कोड़े मारना शुरू किया। पीठ के चमड़े छिल गये, खून की धारा बह चली, लेकिन वाह रे प्रमोद! उस बच्चे ने मुँह से आह तक नहीं निकाली, और न माफी ही माँगी। अन्त में बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा; और दो दिन बाद अपने ग़रीब माँ-बाप को बिलखते छोड़ सदा के लिये चल बसा। वह भी अपने माँ-बाप का एकमात्र पुत्र था बेटा!"—कहते-कहते माँ का गला रुँध गया। आँसुओं को रोकने की लाख चेष्टा करने पर भी वे रुके नहीं। किन्तु सुमन की आँखों में आँसू नहीं आये। एक भयानक क्रोध और वितृष्णा से हृदय उसका विक्षुब्ध हो उठा। आँखों से आँसू के बदले अंगारे बरसने लगे। उसका चेहरा देख माँ डर गईं। उसे स्निग्ध स्वर में शांत करती हुई बोलीं—

"हृदय को शान्त करो बेटा ! मृत्यु से निर्भीक होना सीखो बेटा ! प्रमोद-जैसे शहीदों के बलिदान पर ही तो किसी दिन आज़ादी की आलीशान अट्टालिका खड़ी होगी। प्रमोद-जैसे शहीद ही तो आगामी पीढ़ियों को स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर हँस-हँसकर निछावर होने की प्रेरणा देंगे ! क्रोध तो निर्बल हृदय की क्षणिक अशान्तिमात्र है। लाभ उससे कुछ नहीं।"

सुमन के प्रकृतिस्थ होने पर वे फिर बोलीं—"सुरेन्द्र ने आँखों के सामने इस बर्बर कृत्य को होते देखा। प्रमोद की मृत्यु का उस पर बड़ा भयानक असर हुआ। अहिंसा पर से उसका विश्वास बिल्कुल उठ गया, यद्यपि गाँधीजी की महानता पर उसकी आस्था बनी रही। तब से उसने आतंकवाद का आश्रय लिया। अंग्रेजी नौकरशाही के उस काले कुत्ते और उस-जैसे अनेक कुत्तों को पिस्तौल का निशाना बना अन्त में स्वयं भी वहीं सिधार गया, जहाँ प्रमोद पहले जा चुका था। प्रमोद और सुरेन्द्र-जैसे शहीदों का प्रतिशोध तो... ....."

माँ आगे कह न सकीं। उफनती रुलाई के आवेग से गला उनका रुद्ध हो गया। वे कहना चाहती थीं—'इन शहीदों का प्रतिशोध तो उसी दिन पूरा होगा जिस दिन हिन्द आज़ाद होगा।' इस शहीद-वत्सला वृद्धा की आँखों से शोक और क्रोध के पवित्र आँसू मोती बनकर कपोलों पर लुढ़कते जा रहे थे, और सुमन अपलक आँखों से उन्हें देखता हुआ करुणा और वीर के लोकोत्तर रस में विभोर हो रहा था।

आँचल के छोर से आँखें पोंछकर माँ सुमन की एकाग्रता भंग करती हुई बोली—"प्रमोद एक निर्धन ब्राह्मण-दम्पति का इकलौता बेटा था सुम्मू ! अपने पुत्र की मृत्यु का उन बूढ़े माँ-बाप पर बड़ा बुरा असर हुआ। मेरा सुरेन्द्र दौड़ा हुआ उनके पास पहुँचा। उन्हें दिलासा देता, तोष-भरोसे देता। उनसे कहता, उनका पुत्र देश के लिये बलिदान हुआ है। उसकी मौत अकारथ न जायगी। पर वृद्ध-दम्पति का हृदय तो पुत्र की मृत्यु के साथ ही मर चुका था। सिर्फ रोने भर के लिये जान उसमें बाकी थी। अन्त में सुरेन्द्र ने प्रमोद के पिता के चरण छूकर प्रतिज्ञा की—'पिताजी, प्रमोद मेरे लिये सगे छोटे भाई से भी अधिक था। हम दोनों की आत्मा एक थी, शरीर दो थे। प्रमोद का शरीर मरा है, उसकी आत्मा अब भी सुरेन्द्र में मौजूद है। वह आत्मा आज अपने मृत शरीर का बदला लेने को तड़फ रही है। उस नीच हत्यारे और उस जैसे दूसरे हत्यारों को मौत के घाट उतारे बिना सुरेन्द्र को चैन कहाँ ? इस संसार में प्रमोद से बढ़कर प्यारा मेरा और कोई न था। उसकी सौगन्द खाकर कहता हूँ पिताजी, बदला लेकर रहूँगा।' वृद्ध को क्षणिक आश्वासन अवश्य मिला। सुरेन्द्र को छाती से लगा उसका मस्तक सूँघा। तब से सुरेन्द्र निरन्तर उनकी सेवा में रहता। मैं प्रमोद की माँ को समझाती, अधिक से अधिक उसके निकट रहने का चेष्टा करती। इस प्रकार कुछ शांति उन्हें अवश्य मिलती, किन्तु यह शांति मरुभूमि में जल-बिन्दु के समान होती।

"एक दिन बड़े सबेरे ही सुरेन्द्र आँखों में आँसू भरे दौड़ा हुआ मेरे पास आया। रोता हुआ बोला—'माँजी और पिताजी अब नहीं रहे माँ! वे प्रमोद के पास पहुँच चुके हैं।' मैं पागल-सी दौड़ी उनके घर गयी। देखा, दोनों दम्पति एक ही शय्या पर निष्प्राण पड़े हैं। मैं तो फूट-फूटकर रोने लगी बेटा! रोना सुन कर पड़ौसी भी आये। सबने अपने-अपने ढंग से मृतात्माओं का बखान किया। उनके शील-सदाचार को याद कर श्रद्धा के आँसू बहाये। दाह-संस्कार हुआ। श्राद्ध उनका सुरेन्द्र ने बड़ा दिल खोल कर किया चौगामे के ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर अपने घर उन्हें जिमाया।

"लेकिन दुःख भी होता है, घृणा भी होती है कहते। गाँव के कुछ भले लोग और मेरे जेठ ठा० संग्रामसिंह ने इस श्राद्ध को भंग करने में कुछ उठा न रखा। गाँव के पंडित महा-महोपाध्याय गदाधर मिश्र ने अपना फतवा दे डाला कि ब्राह्मण का श्राद्ध क्षत्रिय का बालक नहीं कर सकता। करने पर प्रायश्चित्ती होगा। उस श्राद्ध में जीमनेवाले भी प्रायश्चित्ती होंगे। किन्तु सुरेन्द्र श्राद्ध करने के निर्णय पर डटा रहा। वह अपने को उनका धर्मपुत्र समझता था। इस लोक में प्रमोद के बाद सुरेन्द्र ही अपने को उनका निकटतम सम्बन्धी समझता था। अपने धर्म-पिता की पारलौकिक क्रिया में कोई त्रुटि रखना वह नहीं चाहता था। प्रतिदिन पुरोहित को बुला दशगात्र-पिंडदान करता। नमक-तेल का परित्याग किये रहा। बारहवें दिन क्षत्रिय रीति के अनु-

सार उसने चौर-क्रिया करायी। तेरहवें और चौदहवें की क्रिया बड़ी शान-शौकत से उसने पूरी की। जात-बिरादर वालों को रोकने की संग्रामसिंह ने भरपूर चेष्टा की। लेकिन प्रमोद देश के नाम पर शहीद हुआ था, उसकी स्मृति अभी ताजी थी। उसके शोक में मरे उसके माँ-बाप का श्राद्ध उसका एक धर्म-पुत्र कर रहा है यह देख नवयुवकों में श्रद्धा की आँधी बह चली थी। वे इस श्राद्ध को अपनी चीज समझ रहे थे। युवक-दल की देख-रेख में ही श्राद्ध-कृत्य हो रहा था। सुरेन्द्र इस पुनीत यज्ञ का यजमान था। इन बूढ़े बिसखोपड़ों की इस हरकत से वे आग-बबूला हो उठे। चौगामा के युवकों ने यह घोषित किया कि जिस किसी ने इस श्राद्ध में विघ्न डालने की चेष्टा की, उसकी खैर नहीं। बूढ़े डर गये। उनकी अक्ल ठिकाने आ गयी। निमन्त्रण अस्वीकार करने तक की हिम्मत किसी को नहीं हुई। इस प्रकार यह श्राद्ध-क्रिया बड़ी शान्ति और शानदारी से सम्पन्न हुई।"

माँ अलौकिक भावावेश में आ गयी थीं। इस कहानी को अधूरा छोड़ना वे नहीं चाहती थीं। कहती गयीं— 'बेटा! सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त हुआ। 'चौराचौरी हत्याकांड' के बाद गांधी जी ने सत्याग्रह वापिस ले लिया। देश के युवकों के दिलों में सकी प्रतिक्रिया बड़ी बुरी हुई। और सुरेन्द्र की तो कुछ पूछो मत। वह तो प्रमोद की निर्मम हत्या के बाद ही अहिंसा में विश्वास खो चुका था। इस घटना से गांधीजी के व्यक्तित्व में उसका रहा-सहा विश्वास भी जाता रहा। वह गांधी और गांधीवाद का कट्टर

दुश्मन बन गया। आतंकवादियों के दल में वह शामिल हो गया। जब-तब महीनों घर से लापता रहता। मैं उसे बार-बार मना करती। उसके पिता अपने पुत्र के आवारेपन से बड़े दुःखी रहते। पढ़ना-लिखना वह छोड़ चुका था। हमें भय होने लगा कि सुरेंद्र कहीं हाथ से बेहाथ न हो जाय। हमने उसके ब्याह की बात चलायी। गाँव की ही गरीब घर की एक अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या के साथ उसकी शादी की बात तय की। सुरेन्द्र को इसका पता चला। दौड़ा हुआ आके मेरी गर्दन से लिपट गया और रुआसा होकर बोला—'सुना है तुमने अपने लिए बहू ढूँढ़ी है माँ? लेकिन माँ! क्या तुम इतनी जल्दी अपने प्रमोद को भूल गयीं? मेरी प्रतिज्ञा तुम्हें याद नहीं? प्रमोद के हत्यारों को यमपुरी भेजे बिना ब्याह और शादी? छिः माँ! तुम जैसी माँ को यह शोभा नहीं देता।' और उसी क्षण ज़रा हटकर अपने पाकेट से उसने भरी हुई एक पिस्तौल निकाली, और उसको अपनी छाती की ओर तानकर मुझ से बोला—'देखो माँ! यदि तुमने ब्याह-शादी की बात बन्द नहीं की तो इसी क्षण इस पिस्तौल से मैं अपना काम तमाम कर लूँगा।' मैं तो डर गयी बेटा! घबड़ाकर उठ खड़ी हुई और चट उसका हाथ पकड़ के बोली—'चूल्हे में जाय शादी-ब्याह की बात। हमें तेरी जरूरत है मेरे लाल, बहू की नहीं।' उसने चट झुककर मेरे पैर छुए। बोला—'मुझे तुम जैसी माँ के पेट से पैदा होने का गर्व है माँ!' फिर घुटनों के बल बैठ कर मेरा पाँव पकड़कर बोला—'स्वतन्त्रता बलि चाहती है माँ!

छाती मजबूत करो। लो, आज इसी क्षण देश के नाम मुझे निछावर कर दो माँ ! अपनी कोख को पवित्र कर लो माँ !' पहले तो मैं दहल उठी, किन्तु सुरेन्द्र की वाणी ने मुझ पर जादू कर दिया। कुछ देर मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी रही। फिर हृदय को कठोर बना उसके मस्तक पर हाथ रखके मैं बोली—'जा बेटा ! आज मैं तुझे सबकी माँ, बड़ी माँ, भारत माँ पर निछावर करती हूँ। माँ की लाज रखना मेरे लाल ! तेरे जैसे हीरे को···'आगे मैं बोल न सकी। बोला नहीं गया। सुरेन्द्र को उठाके छाती से लगा लिया। न जाने कब तक मैं आँसुओं से उसके कंधे को भिगोती रही। अपने को भूले रही। अन्त में मेरी तन्मयता को भंग करते हुए वह बोला—'देश के काम से हफ्ते भर के लिए बाहर जाना चाहता हूँ माँ ! विदा दो माँ !' कहकर उसने फिर चरण छुए और पलक मारते न जाने कहाँ अदृश्य हो गया।"

किन्तु आश्चर्य की बात तो यह थी कि सुमन के चेहरे पर हर्ष या विषाद का कोई चिन्ह नजर नहीं आ रहा था। वह अचल प्रतिमा की तरह बैठा माँ की बातें सुन रहा था। उसकी एकतानता और तन्मयता अद्भुत एवं आश्चर्यजनक थी। माँ भी अपने प्रवाह में बही जा रही थीं। उन्हें इस बात का कतई ध्यान नहीं था कि श्रोता की हालत क्या है। वह सुन भी रहा है या नहीं। वे बोलती गयीं—

"सुरेन्द्र को फाँसी के तख्ते पर झूले अभी तीन ही साल हुए हैं बेटा ! उसकी वह अल्हड़ मूर्ति, उसका व्यवहार, उसकी वाणी, उसकी गति और छवि आज भी मेरे मानस-पट पर ज्यों-की-त्यों

अंकित हैं सुम्मू ! उन्हें मैं भूली नहीं। भूलूँ भी कैसे ? यही तो मेरे जीवन का संबल है ! बुढ़ापे का सहारा ! संसार-सागर को पार करने की पवित्र तरणी !" कहते-कहते माँ का गला भर आया। कुछ देर बाद फिर बोलीं—"सुरेन्द्र का हृदय करुणा का स्रोत था। उसके रग-रग में दया-मया भरी थी। सुजनता की वह मूर्ति था। गरीबों का सच्चा बन्धु था। दुखियों को देख हृदय उसका रो पड़ता। सभी उसकी प्रशंसा करते। दुर्जन लेकिन जलते थे। पीठ-पीछे निन्दा करते। उसे आवारा और गुण्डा कहते। हमारे जन-मजदूर उसे देवता समझते। अपने जन-मजदूरों को वह बड़ा प्यार और सम्मान करता। वह अक्सर कहा करता—'ये जन-मजदूर ही तो असली मानव हैं माँ ! इन्हीं का दिया सब खाते हैं। ये अन्न-दाता हैं। नारायण हैं। माई-बाप हैं। इनका अपमान माँ-बाप का अपमान है, मानवता का अपमान है।' लेकिन उस समय उसकी बातें मुझे पागलपन और बचपन की जैसी मालूम पड़तीं। निस्तत्व प्रतीत होतीं। मैं हँसकर उन्हें उड़ा देती।

"एक दिन इसी तरह की बातें वह कर रहा था। मैं उसकी खिल्ली उड़ाती बोली—'दुन् पगले ! तू अभी बच्चा है। बच्चों जैसी बातें करता है। सबके अन्नदाता भगवान् हैं। सबके माई-बाप भी वे ही हैं। उन्हीं का दिया सब खाते हैं। वे समदर्शी हैं। जिसने जैसा कर्म किया है उसे वैसा मिलता है। 'जो जस करै सो तस फल चाखा।' अमीर-गरीब भी उन्हीं के यहाँ से बनकर आते हैं।

वह जवाब में झुँझलाकर बोला—'बुद्धि— [illegible]ों जैसी बातें करेगी। तुझे क्या पता दुनिया में क्या हो रहा है? लेकिन दुनिया की बातें छोड़ो। मैं तेरी बात से ही तुझे कायल कर दूँगा। अभी तू बता चुकी है, सबके माई-बाप भगवान् हैं। वे समदर्शी हैं। कर्मों के अनुसार सबको देते हैं। और उसके प्रमाण में तूने तुलसीदास की चौपाई भी पेश कर दी—'जो जस करे सो तस फल चाखा।' लेकिन ज़रा सोचो, और अक़्ल का पुट देकर सोचो, तो समझ जाओगी कि तुम्हारी दलीलें गलत हैं, मनगढ़ंत हैं। देखो, बाप समदर्शी होता है, खासकर जायदाद को बच्चों में बाँटते वक़्त। लायक-नालायक, सुकर्मी-कुकर्मी और ईमानदार-बेईमान का ख्याल किये बिना हर बच्चे को वह जायदाद का बराबर हिस्सा देता है। बाद में बेईमानी और तिकड़मबाज़ी से कोई लड़का किसी लड़के की जायदाद हड़प जाय यह और बात है। लेकिन पिता इसे पसन्द नहीं करता, शक्ति रहते बर्दाश्त भी नहीं करता। तो फिर यदि सारी पृथ्वी के मालिक भगवान् हैं, पृथ्वी के सब प्राणियों के पैदा करने वाले भगवान् हैं और वे सबके समदर्शी पिता हैं, तो वे क्योंकर किसी को अमीर और किसी को गरीब बनाने लगे? अपने ही बच्चों के साथ ऐसा विषम व्यवहार! फिर उन्हें कैसे समदर्शी कहा जाय?' मैं उसकी बात पर अवाक् रह गई! कोई जवाब न सूझने पर मैंने पूछा—'तो क्या हमारे शास्त्र-पुराणों में लिखी बातें झूठी हैं?' उसने जवाब दिया—'मेरी बात पर तो तुम गुस्सा हो जाओगी माँ! लेकिन कहूँगा जरूर।

यह शास्त्र-पुराण भी उसी प्रकार किन्हीं उर्वर मस्तिष्कों की कल्पना है, जिस प्रकार भगवान और उनकी समदर्शिता।' सुनकर मेरी तो छाती उबल उठी! मैं उसे फटकारते हुए बोली—'चुप! ऐसी नास्तिकपने की बात मत कर! सुनने से भी पाप लगता है। क्या भगवान कल्पित हैं? बनावटी हैं? कहाँ से तू ऐसी बातें सीख आता है? अब से मैं तुझे कहीं बाहर नहीं जाने दूँगी। चूल्हे में जाय ऐसी देश-भक्ति और तेरी भारत माता! तू जाके बिगड़ जायगा। तब तो मरने पर हमारा श्राद्ध भी नहीं करेगा? हमारे नाम से एक चुल्लू पानी भी नहीं छोड़ेगा? फिर मैंने तुझे पेट से निकाला क्यों?' मेरी बातों से वह दुःखी हो गया। बोला—'माँ! श्राद्ध-तर्पण में मेरा विश्वास नहीं। तुम्हारे श्राद्ध-तर्पण के लिये तब तक मैं जीवित रहूँगा इसमें मुझे सन्देह है। मेरा ही श्राद्ध-तर्पण शायद तुम लोगों को करना पड़े।' सुनकर मेरी तो छाती धड़क उठी। बायें हाथ से चट उसका मुँह बन्द करके दायें हाथ से उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगाके बोली—'चुप बुलक्कना! जब-तब ऐसी ही बातें तेरे मुँह से निकला करती हैं। मेरा मरा मुँह देखे जो फिर कभी ऐसी बात मुँह से निकाली!'—कहकर मैं रोने लगी। मुझे रोते देख झट मेरे पैर पकड़कर रुँधे स्वर में वह बोला—'क्या तुम इतनी जल्दी भूल गईं माँ? क्या तुम्हें याद नहीं, गये साल तुमने सब की माँ, बड़ी माँ, भारत माँ के नाम पर मुझे निछावर कर दिया था? तुम सुरेन्द्र की माँ हो! क्या इतनी जल्दी वचन से मुकर जाओगी? और देश पर मर मिटने वाले

परवानों के प्राण सदा मौत के मुँह में ही रहते हैं माँ ! और मेरी नास्तिकता से क्यों घबड़ा उठी माँ ? कपिल मुनि का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वही कपिल मुनि जिन्होंने अपने शाप से राजा सगर के साठ हज़ार पुत्रों को जलाकर राख कर दिया था। स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता में कपिल को अपना अवतार कहा है। वे कपिल मुनि भी नास्तिक थे माँ ! वे भगवान-वगवान को नहीं मानते थे। मैंने कोई नई बात तो कही नहीं, फिर नाराज क्यों हो उठी माँ ?' अपने पैरों पर पड़े सुरेन्द्र के शिर को अपनी गोद में रखके रुँधे स्वर में बोली—'मैं तो एक गँवार औरत हूँ बेटा ! क्या जानूँ शास्त्र-पुराण की बात ? बचपन से जैसा कहा गया है, जैसा सिखाया गया है, वही सब जानती हूँ, उसी पर मेरा विश्वास है। मेरा तो माँ का हृदय है बेटा ! मेरा तो दुनिया में तू ही सब कुछ है। तू ही सहारा है, जीवन का तू ही संबल है। लाख वचन देने पर भी तू इस तथ्य को क्यों भूल जाता है बेटा ?' उसने कहा—'जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। यह प्रकृति का नियम है माँ ! मरने की तिथि किसी की निश्चित नहीं। भूख, अकाल, महामारी, बीमारी, उत्पीड़न और अत्याचार के शिकार हो देश के लाखों बच्चे प्रतिदिन माताओं की गोद सूनी कर रहे हैं। घर में पड़े-पड़े कुत्ते बिल्ली की मौत मरने की अपेक्षा देश के लिये, मानवता के लिये, भूखों-नंगों के लिये मर मिटना कितना सत्य, सुन्दर और शिव है माँ ! इस तथ्य को तुम भूलती क्यों हो माँ ?' उसकी बातों ने हृदय में एक अद्भुत ज्योति जगा दी।

अज्ञान का तिमिर नष्ट होकर मानो ज्ञान के दीपक जल उठे। अपनी गोद में पड़े उसके सुन्दर मुखड़े को मैंने चूम लिया। आँखों में श्रद्धा और प्रेम के आँसू उमड़ पड़े। बेड़ियों से जकड़ी भारत माँ और भारत के करोड़ों भूखों-नंगों के चित्र चलचित्र की भाँति आँखों के आगे से मानों गुजरने लगे! श्रद्धा, प्रेम और पुलक-भरे स्वर में बोली—'जा बेटा जा! मेरे जिगर के टुकड़े जा! आज मैं पुनः तुझे भारत माँ और भारत के करोड़ों भूखों-नंगों के नाम पर निछावर करती हूँ। मनुष्य ही तो हूँ बेटा! क्षणिक दुर्बलता के वशीभूत होकर भूल गयी थी अपने वचन को और अपने आपको भी। क्षमा करना बेटा! अपनी मूरख माँ से नाराज़ न होना मेरे लाल!' वह झट उठ बैठा। मेरे पैरों को बार-बार चूमने लगा। पाँव की धूल लेकर शिर और आँखों से लगाया। फिर उस धूल को बारम्बार मुख से चूमकर बगैर कुछ बोले चलता बना। मैंने भी रोकने या टोकने की चेष्टा न की।"

सुमन अब भी निर्वाक, निस्तब्ध बैठा रहा। न जाने किस लोक में हृदय उसका विचरण कर रहा था। माँ के मुख पर अद्भुत आभा छिटक रही थी। उस आभा के आगे लालटेन का प्रकाश धीमा पड़ रहा था। माँ बोलती गई—

"सुरेन्द्र की बातों का प्रत्येक अक्षर आज चिर-सत्य बनकर मेरी आँखों के आगे नाच रहा है। उन अक्षरों में सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की अविनाशी आत्मा को आज मैं स्पष्ट देख रही हूँ। आज मुझे दिव्य-दृष्टि मिल गयी है। पर हाय! यह दिव्य-दृष्टि

मिली है सुरेन्द्र को खोकर ! बिना किसी प्रिय, महान प्रिय वस्तु का त्याग किये कोई महान् वस्तु उपलब्ध भी तो नहीं होती बेला! आज मैं उस तथ्य को समझ गई। उसकी पवित्र वाणी के सीधे-सादे अर्थ को समझ गई, जो अब तक मेरे लिये गहन-गम्भीर बना हुआ था, दुर्बोध बना हुआ था। आज मैं जान गई कि ये मजदूर, ये किसान, जो दलित हैं, पीड़ित हैं, घृणित हैं, वे ही इस विशाल मानव-परिवार के महामानव हैं। इन्हींका दिया सब खाते हैं, इन्हींका दिया सब पहनते हैं। हजारों एकड़ जमीन के रहते भी जमीन का मालिक भूखा मर जाय, यदि मजदूर उसमें अन्न पैदा न करें। अमीरों की सारी रँग-रेलियाँ हवा हो जायँ यदि मजदूर काम करने से इनकार कर दें। राजाओं के बिना, महाराजाओं के बिना; सेठों के बिना, साहूकारों के बिना; पंडितों के बिना, पुरोहितों के बिना; साधुओं के बिना और सन्तों के बिना भी संसार की व्यवस्था में कोई खास आँच नहीं आ सकती। किन्तु इन मजदूरों के बिना और इन किसानों के बिना तो सारी दुनिया की गति ही ठप्प हो जाय, मति ही नष्ट हो जाय और संसार पुनः जंगली नर-पशुओं से भरा विशाल अरण्य बन जाय। ये संसार की गति हैं, समाज की मति हैं, समाज की रीढ़ हैं, समाज के प्राण हैं, समाज के मांस हैं, समाज की मज्जा हैं और सच पूछो तो ये ही समाज हैं। इनके विकास के बिना समाज का विकास कहाँ ? इनके उत्थान के बिना समाज का उत्थान कहाँ ? जिस समाज में इनका मान नहीं, उत्थान नहीं, वह समाज

पतित है, पापी है, उसे जीने का कोई अधिकार नहीं, बचे रहने का कोई समाधान नहीं। ऐसे समाज को मिटाकर हमें उस समाज का निर्माण करना चाहिये जिसमें समता विराजे और ममता नाचे। गरीबी जिसमें अतीत की कहानी बन जाय। शैतानी जिसमें मरकर खाक बन जाय। थोथे आदर्शवादों और लेक्चर-बाजों से भगवान इस दुनिया को बचाये।"

माँ की वाणी गंगा की धारा बन गई थी। वक्तृत्वकला की छटा क्षण भर के लिये उनकी वाणी में छा गई थी। यद्यपि वक्तृता से उन्हें स्वाभाविक घृणा थी। वे काम को पसन्द करतीं और सीधे-सादे शब्दों में काम की बातें करने की आदी थीं। किन्तु आकस्मिक आवेश के कारण कुछ मिनट के लिये उन पर किसी पेशेवर व्याख्यानबाज की छाया आ पड़ी थी।

माँ फिर स्वस्थ होकर बोलीं—"बेटा! सुरेन्द्र ने कहा था कि 'ईश्वर यदि संसार का पिता है, समदर्शी है, तो उसे संसार की सम्पत्ति को अपने पुत्रों में बराबर-बराबर बाँटना चाहिये था। किसी को ज्यादा, किसी को कम और किसी को कुछ भी नहीं। इस प्रकार का अन्याय तो उसे न करना चाहिये था माँ।' उस वक्त मैंने उसका मजाक किया था, लेकिन बाद में जब अपने शिर पर पड़ी तो सब समझ गई। मेरे ससुर ठा० गुमानीसिंह ने अनेक उपायों से काफी धन-संचय किया था। अपने छोटे लड़के सुरेन्द्र के पिता को वे बड़ा प्यार करते। लेकिन बड़े लड़के ठा० संग्रामसिंह से उनकी बिल्कुल पटती नहीं थी। कारण था, संग्राम-

सिंह में दुनिया भर के ऐब थे। घर का पैसा चुराकर बुरे कामों में खर्च करते। पिता से बात-बात पर झगड़ पड़ते। अन्त में ससुर जी ने जिंदगी में ही दोनों लड़कों में जायदाद का बँटवारा कर दिया, बराबर-बराबर दो हिस्सों में। लायक-नालायक, सुकर्मी-कुकर्मी का ज़रा भी ख्याल उन्होंने नहीं किया। पिता की संपत्ति में भाइयों का बराबर हिस्सा सनातन से चला आया है।

"इसके कुछ ही दिन बाद ससुरजी स्वर्गवासी हो गये। सुरेन्द्र के पिता बड़े सीधे-सादे थे। उनके भोलेपन का संग्रामसिंह ने जी-भरकर लाभ उठाना शुरू किया। शहर में रोज दौड़-धूप करते, समाज के चोर-चाँइयों की मदद से हमारे दस्तावेज़ चुरवाते, मुन्शी-पटवारी को खिला-पिला के दाखिल-खारिज में बेईमानी करते। सुरेन्द्र के पिता को इन बातों का कोई ध्यान ही न था। एक साथ मालगुजारी दी जाती। जितना माँगा जाता, सुरेन्द्र के पिता चुपचाप उतना दे देते। मामला-मुदकमे का सारा काम बड़े भैया ही करते थे। सुरेन्द्र के पिता को क्या पता कि पीठ-पीछे गला काटा जा रहा है। सुरेन्द्र तो जन्म से ही अल्हड़ था। और मैं तो पर्दे की रानी ठहरी।

"इधर सुरेन्द्र के पीछे सरकारी जासूस लगे रहते। कई काले और गोरे सरकारी अधिकारी मौत के घाट उतारे जा चुके थे। अभियोग सुरेन्द्र पर भी था। वह छिपा रहता। प्राणों का मोह उसे न था, किन्तु देश के लिये जीना वह अवश्य चाहता था। सारी जायदाद पर हाथ साफ़ करने के लोभ में रघुवीर ने मेरे

सुरेन्द्र को पकड़वा दिया। वही रघुवीर जो हमारे गाँव तथा इस इलाके का सबसे बड़ा कांग्रेसी लीडर है। गांधीजी के नाम का खूब ढोल पीटा करता है। सदा खादी की धोती और टोपी पहना करता है। इस आश्रम पर भी वर्षों इसका कब्जा रहा। आश्रम की आड़ में न जाने उसने कितने पैसे कमाये, कितनों को बरबाद कर दिया और अन्त में मेरे जिगर के टुकड़े मेरे सुरेन्द्र को मेरी गोद से छीन कर·····"

माँ आगे बोल न सकीं। उमड़ते आँसुओं के वेग से वे सम्हल न सकीं। सिसक-सिसककर रोने लगीं।

न जाने आज सुमन को क्या हो गया था? वह मिट्टी की मूरत बनकर बैठा रहा। सान्त्वना या उत्तेजना के कोई शब्द उसके मुँह से न निकले। कुछ देर रोकर हृदय हल्का हो जाने पर माँ पुनः बोलीं :—

"सुरेन्द्र और उसके साथियों पर खुली अदालत में मुकदमा चला। सुरेन्द्र के लाख मना करने पर भी उसके पिता ने उसे बचाने के लिये कुछ उठा न रखा। वकील-मुख्तारों ने हमें जी-भरकर लूटा। पैसे पानी की तरह बहाये। लेकिन सब व्यर्थ। सुरेन्द्र और उसके अन्य तीन साथियों को फाँसी की सजा सुनायी गयी। माफी माँगकर सुरेन्द्र बच सकता था, किन्तु बड़ी घृणा और क्रोध के साथ उसने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। हँसते-हँसते वह फाँसी के तख्ते पर झूल गया। पुत्र-शोक में

कुछ दिन बाद ही सुरेन्द्र के पिता भी चल बसे। बस एक मैं अभागिन रह गयी जीवन-भर रोने को……"

इस बार पति-पुत्र दोनों की मिलित स्मृति ने उनके घाव को बड़ी क्रूरता से खरोंच दिया। कुछ देर बिलखती रहने के बाद आँचल के छोर से आँखें पोंछके बोलीं—

"सुरेन्द्र के पिता का श्राद्ध समाप्त होते-न-होते रघुवीर ने धीरे-धीरे मेरी ज़मीनों पर दखल जमाना शुरू कर दिया। उसका कहना था कि यह ज़मीन उसके कोसल की है, निजी है। सुरेन्द्र के मुकदमे में कुछ रुपये उससे भी कर्ज लिये गये थे। सुरेन्द्र के पिता से सादे कागज पर उसने अँगूठे का निशान लिया था। एक का बीस बनाकर उसने मेरे आगे कागज पेश किया। मेरे इनकार करने पर उसने अदालत में मुकदमा दायर किया और उसकी डिग्री भी हुई। गुण्डों की मदद से ज़बर्दस्ती मेरी बची-खुची ज़मीन पर कब्जा जमाने लगा मेरा मददगार कोई न था। संग्रामसिंह और उसके बेटे के डर से सारा गाँव थर-थर काँपता। इस अन्याय का खुलकर विरोध करने की किसी को हिम्मत नहीं हुई। और उधर गाँव के चौकीदार से लेकर थानेदार तक रघुवीर के अपने ही आदमी थे। मुझे सब ओर अँधेरा ही अँधेरा नज़र आ रहा था। निराश होकर घर में बैठी रो रही थी। इसी समय मेरे जन-मजदूर एकाएक मेरे आँगन में आ खड़े हुए। गंगा-तुलसी, शालिग्राम का नाम ले-लेकर शपथ खाने लगे। वे एक स्वर से बोले—'हुकुम कीजिये माँजी! अब हमसे सहा नहीं

जाता। बड़े मालिक चले गये। छोटे मालिक फाँसी पर झूल गये। हम आपके बच्चे हैं। आपका नमक खाया है। नमक का शरिअत देंगे। पापी रघुवीरा का सिर काट लेंगे। हमें अपनी जान की परवाह नहीं।' सुनकर मेरी छाती फूल उठी। आँखों में कृतज्ञता के आँसू उमड़ पड़े। पर परिणाम में होने वाले अनिष्ट की आशंका से मैं काँप उठी। मैं प्यार-भरे स्वर में उन सबों से बोली—'मेरे प्यारे बच्चो! अब सहारा तुम्हीं लोगों का है। मगर···मगर खून-खराबी से फायदा क्या?' मेरे कुछ और कहने से पहले ही मेरा कमिआ बंशीधर बोल उठा—'हम अग्गर-मग्गर कुछ नहीं जानते माँजी। फायदे-नुकसान की बात भी नहीं जानते। रघुवीर का यह जुलुम-अन्याय देखा नहीं जाता, इसी से आपके पास आये हैं। हुकुम कीजिये।' उन्हें शान्त करने के ख्याल से फिर मैं बोली—'सुरेन्द्र चले गये, सुरेन्द्र के पिता चले गये। जिन्हें भोगना था वे चल बसे। अब मैं एक अभागिन रह गई हूँ। दो दिन की जिन्दगी है। भगवान् बेड़ा पार लगा देंगे।' इस पर जद्दू नामक मजदूर शिर हिलाते हुए बड़े जोर से बोला—'भगवान का नाम न लीजिये माँजी! इतना बड़ा अन्याय! और फिर भगवान से कुछ करते नहीं बनता? यह सब झूठ है, ढकोसला है। भगवान होता, तो अब तक रघुवीर के सिर बज्जर गिर गया होता! उसका—रहा न कुल कोउ रोवन-हारा—हो गया होता!' मैं उस उत्तेजित मंडली को शान्त करते हुए इस बार अधिकारपूर्ण स्वर में बोली—'भगवान न सही, न

सही। लेकिन अगर तुम लोग मुझे प्यार करते हो, मुझे अपनी मालकिन समझते हो, तो मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम सब चुपचाप अपने-अपने घर जाओ। झगड़ा-झंटा खड़ा न करो। यह जमीन-जायदाद तो मुझे और भी काँटे की तरह चुभती रहेगी।' बड़े दुःख और निराशा से मेरी आज्ञा उन्होंने सुनी, और चुपचाप घर चले गये।

"इसके बाद गांधीजी का सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ। युवकों के हृदय में उमंगें छा गयीं। देश के लिये बलि हो जाने की भावना से अंतः उनका पूर्ण हो उठा। यह आश्रम पुनः एक बार सजग हो उठा, सप्राण हो उठा। मुझे सन् २१ का आंदोलन याद आ गया, सुरेन्द्र याद आ गया, प्रमोद की क्रूर हत्या याद आ गयी। मेरा भी दिल इसमें शामिल होने को ललच उठा। घर में पड़ा न रहा गया। मैं आश्रम में आयी। उस समय यहाँ एक सभा हो रही थी। देश के एक बड़े नेता का भाषण हो रहा था। कुछेक उत्साही युवक मुझे हठात मंच पर खींच ले गये। उन्होंने शहीद की माँ के रूप में मेरा परिचय कराया। मेरे त्याग और बलिदान की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। उस समय उन नेता के ओजस्वी भाषण ने सब के दिलों में देशभक्ति की लहर उत्पन्न कर दी थी। सबों ने मुझे एक आदर्श माँ के रूप में देखा। कितनों ने उसी क्षण मेरे चरणों की धूल ली। नेताजी कांग्रेस-आन्दोलन के एक अधिकारी व्यक्ति थे। उन्होंने स्वयं मुझसे आश्रम की अधिष्ठात्री बनने का अनुरोध किया और मैंने सहर्ष

स्वीकार कर लिया। लेकिन रघुवीर का मुँह लटक गया। वह नहीं चाहता था कि मैं आश्रम में प्रवेश करूँ। लेकिन बेचारा करे क्या, मौका उसके हाथ से निकल चुका था।

"मेरा तो संसार के किसी और वाद और व्यक्ति में विश्वास नहीं बेटा! मैं तो केवल अपने सुरेन्द्र और सुरेन्द्रवाद पर विश्वास करती हूँ, और विश्वास करती हूँ अपने देश और देश के करोड़ों भूखों-नंगों के लिये मर मिटने वाले नौजवानों पर। मैं तो इस आश्रम में आयी हूँ अपने सुरेन्द्र और सुरेन्द्रवाद से प्रेरणा लेकर। यहाँ आयी हूँ सुरेन्द्र को ढूँढ़ने और उसके पावन पद-चिन्हों पर अपने को उत्सर्ग करने। सुरेन्द्र मेरा बेटा था, मेरे जिगर का टुकड़ा था, मेरा गुरु था, मेरा सब-कुछ था। जीते-जी मेरे जीवन का सहारा था, आँखों का तारा था। और आज उसका आदर्श ही मेरा सर्वस्व है, मेरा सहारा है। उसके आदर्श में आज भी उसकी आत्मा बोलती है, अपने आदर्श के रूप में आज भी वह जीवित है। बेटा! जिस दिन मैं आश्रम में प्रविष्ट हुई, इन नौजवानों को देखा, इनमें सुरेन्द्र की आत्मा की झलक देखी, मैं तो निहाल हो गयी बेटा! एक सुरेन्द्र के बदले सैकड़ों सुरेन्द्र को पा मैं कृतकृत्य हो गयी। और सबसे अधिक प्रसन्नता तो मुझे उस दिन हुई, जिस दिन तूने इस आश्रम में प्रवेश किया। मैं तो तुझे देख आश्चर्य-चकित रह गयी! ऐसा लगा जैसे सन् २१ का सुरेन्द्र फिर सत्याग्रह में शामिल होने स्वर्गलोक से आ पहुँचा है। मैं तो अधीर हो उठी

बेटा ! मेरा दिल पागल हो उठा । चाहा कि दौड़ कर अपने प्यारे सुरेन्द्र को आँचल में छिपा लूँ । जिगर के कोने में लुका लूँ । लेकिन·····"

आगे वे बोल न सकीं । वात्सल्य के उमड़ते आवेग से गला उनका रुद्ध हो गया । अपनी ओर निर्निमेष नेत्रों से ताकते सुमन को माँ ने झट अपनी ओर खींचकर आँचल में छिपा लिया । और सुमन इस ममतामयी अंबा के अंक में अपने को छिपाये भूला-सा, विभोर-सा बहुत देर तक बैठा रहा । माँ की आँखों से मानो चिर-वियोग की संचित वेदना आज आँसू बनकर बहने लगी, मानो अपने प्यारे सुरेन्द्र के शिर को भिगोने लगी ।

इतने में आश्रम का घंटा बजा । माँ चौंक उठीं । घबड़ाकर बोलीं—"उफ ! भोर हो गया ! चार का घंटा बज गया ! मैं अपनी बकवास में सब कुछ भूल गयी । न खुद सोयी, न तुझे सोने दि । चल, तुझे सुला आऊँ····· ना ना, मेरे मुन्नू ! अब भी समय है । भोर के समय की थोड़ी नींद भी रात भर की नींद पूरी कर देती है ।"—कहकर अपनी गोद से सुमन को धीरे से उठा स्वयं उठ खड़ी हुईं और उसका हाथ पकड़ के उसके कमरे में सुला आयीं । और स्वयं हाथ-मुँह धोकर प्रार्थना-मण्डप में जा पहुँचीं ।

———

: ३ :

अन्त में चन्द्रभानुपुर-आश्रम को भी ब्रिटिश दमन का शिकार होना पड़ा। सभी स्वयंसेवक जेल में डाल दिये गये। न जाने क्यों स्वयंसेविकाओं को नजरबन्द नहीं किया गया? सुमन माँ से बिछुड़ गया। माँ को इसका बड़ा सदमा पहुँचा। आश्रम पर सरकार ने कब्जा कर लिया। सभी स्वयंसेविकाएँ रो-रोकर एक दूसरे से बिदा हो अपने-अपने घर आयीं। माँ अन्नपूर्णा सूने मन से अपने सूने घर में प्रविष्ट हुईं। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो एकाएक वे स्वर्ग से नरक में आ गयी हों। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' के अनुसार पुण्य समाप्त होने पर मानो स्वर्ग से मर्त्यलोक में धकेल दी गयी हों।

उनकी अवस्था पागलों जैसी हो गयी। खाना-पीना भूल गयीं। निद्रा आँखों से रूठ गयी। कहाँ अहर्निश चुलबुलाता वह आश्रम, और कहाँ यह सुनसान भवन? सारा घर मानो काट खाने लगा। स्वयंसेवकों द्वारा निरन्तर अमृत-विनिन्दित स्वर में 'माँ-माँ' कहकर पुकारने की आवाज आज भी उनके कानों में गूँज रही थी। अपने प्रति सुमन की भक्ति, श्रद्धा और स्नेह की यादकर उनके हृदय में एक अनोखी टीस, कसक और वेदना उमड़ आती। वह प्रेमभरी फटकार, वह प्रेमभरी पुचकार और वह प्रेमभरा उपालंभ—सब

एकाएक स्वप्न बन गये ! एक दिन सुमन ने हँसकर कहा था—'क्या ही अच्छा हो माँ, कि यह आन्दोलन सदा चालू रहे, यह आश्रम बना रहे, तुम बनी रहो और हम बने रहें।' और माँ ने हँसकर जवाब दिया था—'दुत् पगले ! आन्दोलन सदा क्यों चालू रहेगा ? आजादी मिल जाय, आन्दोलन समाप्त। लेकिन आजादी के बाद भी आश्रम बना रह सकता है, मैं बनी रह सकती हूँ और तुम सब बने रह सकते हो, लेकिन इस अभागिन को इतने बड़े सौभाग्य की आशा करने का साहस कहाँ बेटा !' आज वही उनकी आशंका सदेह बनकर उनके आगे नाच रही थी, उनके बीते सौभाग्य की खिल्ली उड़ा रही थी !

पर दुर्भाग्य अकेले नहीं आता। गाँव में हैज़े की बीमारी फैल गयी थी। सरकार का दमनचक्र भी चालू था। माँ का एकमात्र प्यारा नौकर रामधन हैजे की चपेट में पड़ गया था। वह उनकी आन पर सदा अपनी जान देने को तैयार रहता। माँ ने माँ की तरह उसकी सेवा की, पर उसे बचा न सकीं ! अपनी प्यारी मालकिन माँ को बिलखती छोड़ रामधन इहलोक से प्रयाण कर गया !

निरन्तर कै और दस्त के दौरे से रामधन की नस-नस ढीली पड़ गयी थी, नाड़ी रुक गयी थी और वह बेहोश हो गया था, किन्तु उस दशा में भी उसकी मुमूर्षु आत्मा अपने कृतज्ञ करों को माँ के चरणों पर रखना भूली नहीं। जितनी तत्परता और तन्मयता से रामधन की अन्तिम सेवा माँ ने की थी, उसका वर्णन

लेखनी क्या करे ! रामधन की उम्र तो १८ साल की थी, किन्तु देखने में वह पच्चीससाला पहलवान लगता। जात का कोइरी था। बचपन में ही माँ-बाप मर गये। माँ अन्नपूर्णा ने पुत्र की तरह पाल-पोसकर उसे बड़ा किया था। कहने भर को वह नौकर था। आज वह भी उन्हें छोड़कर चलता बना !

उधर सत्याग्रह-आन्दोलन में सक्रिय सहयोग के अभियोग में सरकार ने उनकी बची-खुची जायदाद नीलाम पर चढ़ा दी। जायदाद के रूप में उनके पास रह गया था केवल घर-घराड़ा और एक छोटा-सा कलमबाग। संग्रामसिंह से यह भी देखा नहीं गया। सारी जायदाद हड़पकर भी स्वार्थ की भूख मिटी न थी। बल्कि सारे गाँव की आधी से अधिक सम्पत्ति उनके स्वार्थ की भट्टी में पड़कर उसकी आग को और भभका दी थी। संग्रामसिंह अपने गाँव के एकछत्र भूस्वामी बनना चाहते थे। अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति के मार्गमें एक तुच्छ रोड़े को भी बर्दाश्त करना नहीं चाहते थे। घूस-रिश्वत देकर अपनी विधवा अनाथा भावज की बची जायदाद को उन्होंने नीलाम पर चढ़वाकर उसे स्वयं खरीद लिया। रघुवीर उस समय अन्य स्वयंसेवकों के साथ जेल में था। अतः पुत्र का काम पिता को ही संपादित करना पड़ा।

शाम का समय था। माँ अन्नपूर्णा रामधन के निष्प्राण मस्तक को गोदी में रखे चुपके-चुपके रो रही थीं। अपने नीरव आँसुओं के पवित्र सेक से मृतात्मा का तर्पण कर रही थीं। उसी समय संग्रामसिंह ने अपने नौकर के द्वारा उनके पास एक चिट्ठी

भेजी। चिट्ठी में लिखा था :—

"कांग्रेसी आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकार ने तुम्हारी जायदाद नीलाम पर चढ़ा दी थी। मैं किसी काम से कचहरी पहुँचा था। नीलाम की बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। सोचा, अपने बाप-दादों की जायदाद को क्यों किसी दूसरे के हाथ में जाने दूँ? लेकिन वहाँ तो डाक-पर-डाक बोला जा रहा था। पहले तो हिम्मत जवाब देने लगी। लेकिन बाद में छाती मजबूत करनी पड़ी। रुपये का मोह छोड़ना पड़ा। एक जबर्दस्त डाक बोलकर जायदाद मैंने खरीद ली। फिर कहता हूँ, घबड़ाने की जरूरत नहीं। जिन्दगी भर आराम से घर में पड़ी रहो। तुम पराई तो हो नहीं कि निकालने की जरूरत पड़े।"

चिट्ठी ने माँ के जले दिल पर नमक का काम किया। वे चीख उठीं— "हाय चांडाल! गाँव सारा मशान बना जा रहा है, फिर भी तेरी जघन्य तृष्णा शांत होना नहीं चाहती?"

रात के ग्यारह बजे थे। सारा गाँव स्तब्ध था। ग्यारह बजते-न-बजते सदा से गाँव वाले सो जाते हैं। तिस पर हैजे का आतंक, भूत-प्रेत का भय! उस जेठ की गर्मी में भी मारे डर के सब कमरे में बन्द थे। टट्टी-पेशाब लगने पर भी बाहर निकलने का किसी को साहस न होता। दो-चार आदमियों को सोते से जगा अपने आगे-पीछे खड़ा करके ही कोई बाहर निकल कर पेशाब करता। शाम की घटना ने माँ के मन को बिल्कुल तीता बना दिया था। इतना तीता कि प्राण निकलने पर आ गये

थे। घर-द्वार, गाँव-समाज—सारा संसार उन्हें तीता लगने लगा। वे मरना चाहती थीं, पर मौत भी बुलाने पर नहीं आती। अन्त में उन्होंने निर्णय किया घर में आग लगाकर उसी में जल मरने का। कुछ और समय बीतने की प्रतीक्षा करने लगीं। किन्तु यह निर्णय अन्त तक कायम न रह सका। रह-रह कर उनके हृदयाकाश में नाना विचारों की पतली रेखा दामिनी की तरह दमक उठती, और विलीन हो जाती। सहसा एक नये विचार की क्षीण रेखा उनके मानस-पट पर खिंच गयी, और उत्तरोत्तर बढ़ती पसरती गयी। उनका पहला विचार बदल गया। सोचा—"क्यों कायरों की तरह अपनी हत्या आप करूँ? क्यों न उस जघन्य व्यवस्था को ही मिटा डालने के प्रयत्न में लग पड़ूँ जिसकी गोद में यह स्वार्थमयी नीचता पनपती, फूलती और फलती है? क्यों न अपने प्यारे सुरेन्द्र के आदर्श की अनुगामिनी बनूँ? इस प्रकार शायद अपने सुरेन्द्र को पा जाऊँ, या उस वीरतामयी मृत्यु का आलिंगन करूँ।"

रात के एक बजे माँ घर से बाहर निकल कर बगीचे में आयीं। वहाँ से घास का एक बंडल उठा लायीं। दियासलाई की डिबिया से एक तीली निकाल कर अपने घर को उद्देश करके बोलीं—"जा, तू भी उसी सर्वनाश की भेंट हो जा, जिसकी भेंट मेरा पुत्र और मेरे पति हो चुके हैं और मेरा प्यारा रामधन आज हुआ है।"—और कहकर उन्होंने तीली को डिबिया से रगड़कर घास के बण्डल से धरा दिया। बण्डल धधक उठा और माँ ने

धधकते बण्डल को घर की छप्पर पर फेंक दिया।

आग जल उठी। लहमें भर में उसकी लपलपाती लपटें सब ओर छा गयीं। आँसूभरी आँखों से माँ ने हाथ जोड जलते घर को नमस्कारकर झट अदृश्य हो गईं। बगीचा पारकर कुछ दूर गईं। फिर एक बार मुड़कर अपनी हसरतभरी निगाहों से उन उठती लपटों को देखा और सदा के लिये अँधेरे की गोद में अन्तर्धान हो गयीं।

: ४ :

आग लगने के तुरन्त बाद ही ठाकुर संग्रामसिंह अपने दालान के ओसारे पर से ही लघुशंका (पेशाब) करने बैठे थे। भूत-प्रेत के डर के मारे उन्हें नीचे उतरने का साहस न हुआ। सहसा स्वर्गीय मलखानसिंह के घर की छप्पर से आग की उठती लपटों को देख वे चौंक पड़े ! बड़े जोर से 'अरे बाप रे !' चिल्लाकर धड़ाम से नीचे जमीन पर लुढ़क पड़े। उनके चिल्लाने और लुढ़कने की आवाज़ दालान पर सोये दूसरों के कानों में पड़ी। वे तड़फड़ उठकर ओसारे पर दौड़े और उन्होंने भी वही देखा जो अभी संग्रामसिंह देख चुके थे।

संग्रामसिंह को मूर्छा आ गई थी। उनके निःसंज्ञ शरीर को तड़फड़ उठाकर एक खुली जगह में रख दिया गया। उधर सारे गाँव में तहलका मच गया ! अग्नि-भय के सामने हैजे और भूत-प्रेत का भय रफूचक्कर हो गया। सर्वत्र कोलाहल ! सभी अपने सामान-असबाब और बालबच्चों को घर से बाहर निकालने लगे। कुछ लोग घड़े और बाल्टियाँ लेकर पोखर और ईनार की ओर दौड़े। अपने-अपने घर की छप्परों पर पानी उड़ेलने लगे। सौभाग्य से उस जलते घर से सटे पीछे की ओर केवल संग्रामसिंह का ही घर पड़ता था। बाकी तीन तरफ से आम

के बग़ीचे और खुला मैदान। काफी प्रयत्न के बाद आग पर काबू पाया गया। किन्तु संग्रामसिंह का सब कुछ स्वाहा हो गया! बड़ी मुश्किल से कुछ दस्तावेज और ज़ेवर बच पाये! जानी नुकसान वे बिल्कुल बच गये।

संग्रामसिंह की मूर्छा टूटी। होश में आते ही वे सिर पीट-पीट कर रोने लगे—"अरे बाप रे! सब सत्यानाश हो गया रे! हे राम जी.....!"

फिर उन्हें अन्नपूर्णा याद आ गयीं। और पुनः शिर-कपार पीट-पीटकर उसे कोसने लगे—"अरी कुलछनी! ओ अभागिन! सब सत्यानाश कर दिया! खुद गई और दूसरों को भी ले डूबी! अरे बाप रे.....!"

संग्रामसिंह को विश्वास हो गया कि अन्नपूर्णा स्वयं आग लगा के उसमें जल मरी है। अन्नपूर्णा के स्वभाव से वे पूर्णतः परिचित थे। स्वयं शाम को जो जघन्य कृत्य कर चुके थे उसे याद कर अपने आप को भी मन ही मन कोस रहे थे। वे सोच रहे थे कि भगवान् ने उन्हें उसी पाप का दण्ड दिया है। संग्रामसिंह सरीखे भी पाप को जानते हैं, किन्तु हरिनाम और रामनाम का दो-चार बार सुमरन तथा पतित-पावनी गंगा में गोते लगाके भवसागर से पार उतरने की आशा में वे पाप-कर्म से निवृत्त होने की वैसी आवश्यकता नहीं समझते।

उधर संग्रामसिंह की धर्मपत्नी भी पति से पीछे नहीं रहना चाहती थीं। अपनी दिवंगता देवरानी के उद्देश से अपने अक्षय तर-

कस से चुन-चुनके तीर निकालने लगीं, और गिन-गिन के निशाना साधने लगीं—"छुच्छी, निपुतरियाही, मरने को मरी, मगर हम लोगों को मार के ! हे भगवान ! सरग-नरक जहाँ भी गई हो, उसकी छाती को दिन रात जलाते ही रखना राम जी..... !"

उधर गाँव के लोग घरों से सामान निकाल रहे थे, छप्परों पर पानी उड़ेल रहे थे और संग्रामसिंह के उद्देश से गालियाँ निकालते जा रहे थे—"बेईमान ! पापी ! अधर्मी ! अपने निज के पाप से सारे गाँव को भस्म करना चाहता है !"

इस प्रकार गर्मी की रात देखते-देखते समाप्त हो गयी। सबेरा हो गया। गाँव के लोग भीड़ लगा के संग्रामसिंह के दरवाजे पर इकट्ठे हो गये। यद्यपि संग्रामसिंह के इस विनाश पर वे मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु ऊपर से शिष्टाचार निभा रहे थे, अपनी कृत्रिम सहानुभूति की झड़ी लगा रहे थे।

महामहोपाध्याय पं० गदाधर मिश्र जी सुंघनी की एक छींक लेकर आश्वासन देते हुए बोले—"अब सोच करना निरर्थक है बाबूजी ! भगवान् पर भरोसा रखिए।" और इसके प्रमाण में उन्होंने चट संस्कृत का एक श्लोक भी पढ़ दिया—"येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः। मयूराश्चित्रिता येन स वै वृत्तिं विधास्यति।" और कहकर पुनः अपने नासा-रन्ध्रों में सुङ्घनी घुसेड़कर बार-बार छींकने लगे।

छींक से निबटने पर पुनः हाथ-मुँह और आँखें चमकाकर बोलने लगे—"और एक बात ! कलियुग है तो क्या, पाप का

फल तो भोगना ही पड़ेगा।" सुनकर संग्रामसिंह जरा सहम गये! उन्होंने समझा कि पण्डित जी उन्हीं के पापों की ओर संकेत कर रहे हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण आश्वस्त हो गये जबकि पं० गदाधर ने कहा—"बाबूजी! मैंने बार-बार रघुवीर बाबू को मना किया कि गांधी के आन्दोलन में मत फँसो। राजद्रोह करना शास्त्र-सम्मत नहीं है और जो शास्त्र-सम्मत नहीं है वह पाप है—'महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति, बालोऽपि नावमन्तव्यः·····' किन्तु आजकल के लड़के बड़ों का कथन क्यों मानने लगे? अंग्रेजी पढ़कर सब का आचार-विचार भ्रष्ट हो गया। कहिये तो बाबूजी! कितना बड़ा अन्याय है? स्पृश्यास्पृश्य का कोई विचार नहीं। अपने गाँव के गांधी आश्रम की बात कहता हूँ आप से। ब्राह्मण-क्षत्रिय और भंगी-चमार सब एक साथ खाते थे। और आपकी यह भावज अन्नपूर्णादेवी तो सब की माँ बनी हुई थीं। और अन्त में अपना भी सत्यानाश कर गईं और आपका भी। प्रायश्चित्त कीजिये बाबूजी, प्रायश्चित्त कीजिये। बिना इसके उद्धार नहीं!"

महामहोपाध्याय जी के कहने के ढंग से सचमुच संग्रामसिंह डर गये। हाथ जोड़कर बोले—"अच्छा पंडितजी, जैसा कहें आप। मैं प्रायश्चित्त करूँगा।"

महामहोपाध्याय जी अपनी विजय से संतुष्ट होकर बोले—"क्यों नहीं, प्रायश्चित्त तो आप करेंगे ही। आप बूढ़े हैं। पुराने युग के लोग हैं। अपने धर्म-कर्म पर आस्था है। शास्त्र-पुराण पर विश्वास है। हृदय में विवेक है।"

संग्रामसिंह ने उसी प्रकार विनय-भाव से पूछा- "प्रायश्चित्त में खर्चा कितना पड़ेगा पंडितजी ?"

पंडितजी अपना दायाँ हाथ चमकाते हुए बोले—"कोई ज्यादा नहीं, यही हजार-पाँच सौ में सब पूरा हो जायगा।"

सुनते ही संग्रामसिंह का चेहरा पपीते के पत्ते की तरह मुरझा कर लटक गया। महामहोपाध्याय जी अपने यजमान की मनोदशा देख चट बोले—"उदास न होवें बाबूजी ! कम में भी हो सकता है। किन्तु पाप तो साधारण नहीं। एक तो अस्पृश्य-स्पर्श, तिस पर से राजद्रोह ! ·····ये छोकड़े जो न करें। जिस अंग्रेज बहादुर का उदय-अस्त तक राज्य है, उसको सत्याग्रह करके और ताड़ के पेड़ काटकर जीतने चले हैं ! कितनी बड़ी मूर्खता है बाबूजी ! किन्तु इन छोकड़ों की बात छोड़ दें। हम लोग तो आस्तिकजन हैं। शास्त्र में विश्वास रखते हैं। अतः हम लोगों को तो राजभक्त अवश्य बने रहना चाहिये।·····"

× × ×

उधर अन्नपूर्णा के घर की आग बुझाई जा रही थी। लोगों ने जली हड्डियों का कुछ अवशेष देखा। अब उनके दिलों में संदेह के लिए कोई जगह नहीं रह गयी कि माँ अन्नपूर्णा उसी घर में जल मरी हैं।

गाँव की औरतें जहाँ-तहाँ खड़ी हो के माँ अन्नपूर्णा के गुणों का बखान कर रही थीं, शोक में आँसू बहा रही थीं। रामप्यारी आँखों में आँसू भरके कह रही थी—"जैसा नाम वैसा ही गुन।

दरवाजे से कभी कोई निराश होके नहीं लौटा। अब गाँव से दीन-दुखियों का एक बड़ा सहारा उठ गया बहिन !"

रामप्यारी से अपनी पूरी सहमति जताते हुए ब्रजकिशोरी बोली—"हाँ बहिन, तुम्हारा कहना बिल्कुल सच है। मगर जैसा जेठ, वैसी ही जेठानी। सवेरे उठकर मुँह देखो, तो दिन भर खाना न मिले। किसी भिक्खू-भिखार को दरवाजे पर पैर भी तो नहीं रखने देती।"

उधर से अवधरानी बोलीं—"बुढ़िया के मन में विचार की जरा भी छूत नहीं। अन्नपूर्णा चाची स्वर्ग गयीं, हम सब नरक में हैं। मगर छुच्छी उनका नाम ले लेकर गरिया रही थी। कलिजुग है बहिन ! जो जितना पाप करे उसकी उतनी बढ़ती होती है।"

रामप्यारी हाथ के इशारे से आगाह करती दबी जबान से बोली—"चुप चुप ! संग्रामसिंह का बेटा जीवन इधर ही आ रहा है। बड़ा चांडाल है। कहीं सुन ले तो····· "

× × ×

उधर जद्दू चिरंजी से कह रहा था—"मेरा तो विश्वास है चिरंजी भाई, कि जरूर संग्रामसिंह ने ही आग लगवाई है। माँ जी को जलाकर उनकी बची-खुची जमीन पर हाथ फेरने के लिये।"

चिरंजी बोला—"मगर भगवान् ने पाप का फल तुरन्त दे दिया जद्दू ! देखते नहीं कि अधरमिया का सब स्वाहा हो गया ?"

जद्दू तुनक कर बोला—"तुम भी भगवान् का नाम लेने लगे चिरंजी भाई ?"

"लेने में हरज क्या है ? सभी लेते हैं, मैं भी लेता हूँ।"

"सब को लेने दो, मगर हम गरीबों को नहीं लेना चाहिये।"

"क्यों ? भगवान् ने गरीबों का क्या बिगाड़ा है ?"

"बहुत कुछ बिगाड़ा है चिरंजी भाई ! इससे बड़ा बिगाड़ना क्या है जो हम लोग गरीब हैं। दिन-रात अमीरों की लात-गाली खाते हैं, फिर भी पेट नहीं भरता। भगवान् को हमारी कोई फिकर ही नहीं ?"

"सो तो जैसा करम किया है वैसा फल मिलेगा। इसमें भगवान् का क्या कसूर ?"

"बड़ा कसूर है चिरंजी भाई। उसी का नाम लेकर अमीर लोग हमें सताते हैं। और सच पूछो तो इस करम-धरम की बात पर मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं।"

"विश्वास क्यों नहीं ?"

"इसलिये कि भगवान् अगर होता, और करम-धरम की बात सच्ची होती, संग्रामसिंह का बच्चा-बच्चा आज की आग में जल मरा होता।"

"इतना ही दंड क्या कम है ? बुड्ढा सिर पीट-पीटकर रो रहा है।"

"मन मसोस रहा है चिरंजी भाई दिल तो कर रहा है कि

अभी दौड़ा जाऊँ और बूढ़े की...में हाथ लगा के उसे अधबुझी आग में फेंक दूँ।"

एकाएक अपने दोनों हाथ कनपट्टी [illegible] जाकर बड़े जोर से गर्दन हिलाते हुए चिरंजी बोला—"अरे बाप रे! यह तू क्या बोल गया जद्दू! गाँव के सब जन-मजूर उजड़ जायेंगे।"

जवाब में जद्दू मुँह चमका कर बोला—"उजड़ जाने दो। मजूरों का क्या बिगड़ेगा? कहीं जा के मजूरी ही करनी है न। न यहाँ किसी और जगह! मगर अमीरों को तो नानी याद आ जायगी। सब भूखों मरेंगे।"

चिरंजी—"चुप, माथा तो नहीं खराब हो गया है तेरा? अमीर भी कहीं भूखों मरते हैं?"

जद्दू—"सच कह रहा हूँ चिरंजी भाई! मजूर ही नहीं रहेंगे तो इनके खेतों में काम कौन करेगा? और जब खेतों में काम ही नहीं होगा, तो उपजेगा कहाँ से? और जब कुछ उपजेगा ही नहीं तो ये खायेंगे कहाँ से?"

चिरंजी ने फटकारा—"चुप हरामजादे! कोई सुन ले तो खैर नहीं। एक बच्चे का बाप बन गया है, मगर बोलने का सहूर नहीं!"

जवाब में फिर जद्दू कुछ बोलने ही जा रहा था कि उस की धर्मपत्नी सुखिया घूँघट काढ़े आ पहुँची और दबी जबान में फटकारते हुए बोली—"इहाँ मटरगश्ती कर रहे हैं, बात बना रहे हैं

और उधर लड़के की जान जा रही है ! कै और दस्त के मारे बच्चा मेरा ठंडा होता जा रहा है !"

बेचारे जद्दू का सारा जोश ठंडा पड़ गया। उसी क्षण उदास दिल से वैद्य सचल मिश्र के दवाखाने की ओर वह दौड़ पड़ा।

: ५ :

गांधी-इरविन समझौता हो गया। गांधीजी ने 'राउंड टेबुल कांफ्रेंस' में शामिल होना स्वीकार करके सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया। युवकों का उमंगभरा दिल बैठ गया! एक गोरे पुलिस-अफसर की हत्या के अभियोग में उसी समय सरदार भगतसिंह को फाँसी पर लटकाया गया! इस घटना के प्रति गांधीजी के रुख से युवकों को बड़ी निराशा हुई। उनका रहा-सहा उत्साह भी जाता रहा। सभी राजनैतिक कैदी छोड़ दिए गये। सब अपने-अपने काम में यथापूर्व लग गये, किन्तु फीके दिल से, रोते मन से।

भुवन और सुमन दोनों भाई जेल से बाहर आ गये थे। जेल से बाहर आते ही इस बार भुवन ने अपने पिता हरिनाथ बाबू के काम में बड़े मनोयोग से हाथ बटाना शुरू किया। अन्त में उसकी योग्यता और तत्परता पर हरिनाथ बाबू इस प्रकार रीझ गये कि उसकी पहले की सारी आवारागर्दी, फिजूलखर्ची और बदचलनी को भूल गये। अक्सर सब के सामने उसकी तारीफ करते। अब उस में उन्हें आशा की झलक दीखने लगी।

छोटे-मोटे किसानों को अपने जाल में फँसाने, गरीबों को सताने और जन-मजदूरों को आतंकित करने में भुवन अपने पिता

का योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुआ; किन्तु हरिनाथ बाबू के यौवन-संयम का उत्तराधिकार उसे रंचमात्र भी न मिला। उसकी बदचलनी में ह्रास के बजाय वृद्धि ही नज़र आने लगी। अपने जन-मजदूरों की लड़कियों पर खुल्लम-खुल्ला बलात्कार उसके रोज-मर्रे का काम बन गया। भले घरों की लड़कियों को फँसाना और उनका सतीत्व नष्ट करना उसके बायें हाथ का खेल बन गया।

भुवन के दूर रिश्ते की एक विधवा चाची थीं, जिन्हें लोग धन्ना चाची कहा करते। दूती-कार्य में वे अपना सानी नहीं रखतीं। इनकी मदद से भुवन अपनी किसी भी चहेती को प्राप्त कर सकता था। चाची की उम्र यद्यपि पचास के करीब थी किन्तु इस काम के द्वारा वे अपनी भी अतृप्त वासना को तृप्त किया करतीं।

गाँव के एक बाममार्गी महात्मा की कृपा से युवकों में शराब का अच्छा-खासा प्रचार हो गया था। भुवन शराबखोरी की कला में पूर्ण दक्ष बन चुका था। बस्ती से जरा हटकर उसका निज का एक बगीचा था। बगीचे के बीच में एक कुटिया-सी बनी थी। उसी में प्रति रात्रि अपने कुछेक विश्वासपात्र पिछलगुओं के साथ भुवन की चक्रगोष्ठी जमा करती। चक्रगोष्ठी-कला की उसे पूरी शिक्षा मिल चुकी थी और चाची की कृपा से नित नयी साधिका वहाँ मौजूद रहती। रात भर यह चक्रयज्ञ निर्बाध चला करता। भुवन यौवन का आनन्द जी भरकर लूटता और लुटाता। गाँव में इस बात का सब को पता था, किन्तु क्या मजाल कि

कोई चूँ तक कर दे ! धनियों में स्वयं पोल थी, इसलिये वे बोल नहीं सकते और गरीब बेचारे गरीब थे।

× × ×

जेल में ही माँ अन्नपूर्णा की मृत्यु की खबर सुमन को मिली थी। तब से उसकी मनोदशा कुछ और ही हो गयी थी। जेल से बाहर आकर भी उसकी दशा सुधरी नहीं। स्कूल में पढ़ने जाता किन्तु दिल नहीं लगता। वह किसी से नहीं बोलता। जब-तब क्लास में बैठे-ही-बैठे रो पड़ता। घर में रात को सोने से चौंक उठता। नींद में ही 'माँ-माँ' कहकर रो पड़ता। अस्पष्ट रुदन के आँसुओं से कपोलों को भिगो देता।

सुमन की माँ अपने लाड़ले की यह दशा देख डर गयीं। सब को आशंका होने लगी कि सुमन शोक में कहीं पागल न बन जाय, क्योंकि सब को पता था कि सुमन अपनी धर्म-माता अन्नपूर्णा को कितना प्यार करता था। सुमन की माँ चन्द्रमुखीदेवी को अन्नपूर्णा के प्रति ईर्ष्या होने लगी। जब-तब वे उन्हें कोसने लगतीं—"न जाने चुड़ैल ने मेरे बच्चे को क्या खिला दिया ? कौन सा टोना कर दिया ? खुद गयी, और अब मेरे बच्चे को मुझ से छीनना चाहती है।" और सुमन उनके मुँह पर हाथ रख देता। खिसिया कर बोलता—"चुप ! फिर यदि ऐसी बात मुँह से निकाली, तो कल के बदले आज ही मर जाऊँगा।" और माँ सिटपिटा के चुप हो जातीं।

हरिनाथ बाबू सुमन की दशा देख बड़े खिन्न रहते। जब-तब धर्मपत्नी पर बरस पड़ते—"कहा था न, कि सत्याग्रह में गया कि बरबाद! पढ़ना-लिखना छोड़ चुका, अब आवारा बनेगा।" और फिर गाँधी जी के उद्देश से गिन-गिन के गालियों की बौछार करने लगते—"दगाबाज, हरामजादा, शैतान कहीं का! झूठ-मूठ सुराज का लोभ दिखाकर सब का सत्यानाश कर दिया। सन् २१ और सन् ३० के दो-दो सत्याग्रह तो देख चुके, सुराज-उराज तो मिला नहीं, बरबादी ज़रूर हुई। गाँव-गाँव में न जाने कितने ताड़ के पेड़ काट डाले गये. जिससे हजारों की आमदनी होती थी। विलायती कपड़ों की कितनी गांठें जला दी गईं, जिन्हें लाखों पर खरीदा गया था। और तिस पर से जात भी ले ली और धर्म भी ले लिया, छुआछूत का कोई विचार न रखा। हे भगवान्! कहाँ हो?" और धर्मपत्नी उन्हें फटकारती हुई बोलतीं—"जाओ यहाँ से। खड़े होके बकवास मत करो। मेरे बच्चे को और परेशान मत करो।" और—"जहन्नुम में जाय तेरा बच्चा और तू भी।" —कहकर हरिनाथ बाबू बड़बड़ाते हुए घर से बाहर हो जाते।

: ६ :

हरिहरपुर में गोवर्धन पाठक नामक एक कुलीन ब्राह्मण रहा करते थे। पाठकजी की उम्र पैंतीस के करीब थी। साँवला रंग, नाटा कद, आँखें मझोले माप की और गले में रुद्राक्ष की माला। ललाट पर सदा भस्म का तीन-धरिया तिलक जिसे कर्मकांडी भाषा में त्रिपुण्ड्र कहते हैं। और ठीक नाक की जड़ से आरंभ होकर ऊपर की ओर श्रीखंड चंदन की दो लकीरें जिसे कर्मकाण्ड की बोली में उद्ध्र्व-पुण्ड्र कहते हैं। महीन सूत की बारीक किनारीदार धोती को पाठक जी एक खास पण्डिताऊ ढंग से पहना करते। उनकी कमर से कई खानों वाला एक बड़ा बटुआ लटकता रहता। किसी खाने में चूना-तमाकू का सरंजाम भरा होता, तो किसी में सुपारी और सरौता और किसी में कुछ पैसे। पाठक जी के नंगे बदन पर सदा एक डेढ़गजा अँगोछा पड़ा रहता। बायें हाथ की हथेली पर चूना-तमाकू मिला दाहिने हाथ के अँगूठे से बार-बार मलते, दो-तीन बार ठोक-ठाक कर अपने निचले ओठ को चिआर कर उसमें भर देते, और निरंतर मुँह से पच्-पच् थूक फेंककर अपनी चतुर्दिक् जगह को परिपूत करते रहते। सुर्ती का मजा फीका पड़ने पर सुपारी की शरण गहते। सरौते से कतर-कतर कर उसे दिन भर फाँकते रहते। शौच के समय 'एका लिङ्गे गुदे तिस्रः' इस

धर्मशास्त्रीय वचन का अक्षरशः परिपालन करते। फिर गाँव के धनियों के यहाँ चक्कर लगाते। उनकी 'हा-हा ही-ही' में जी भर कर हिस्सा लेते। फिर बारह बजे दिन को स्नान-संध्या से निवृत्त हो पूजा के आसन पर पधारते। पूजा के पात्र साफ करते; फूल, अक्षत, चंदन आदि को सजाते तथा ललाटपर चन्दन-तिलक लगाते-लगाते डेढ़ बज जाते। फिर गोमुखी में हाथ घुसेड़कर अष्टोत्तर शत (१०८) गायत्री का जप करने बैठते। उस समय उनके मन की लगाम पूरी तरह ढीली पड़ जाती। दायें हाथ की अँगुलियाँ गोमुखी के अंदर होतीं और बायें हाथ की अँगुलियों से वे तलवे में वे फटी बिवाई के चमड़े को कुरेदते रहते। फिर नित्य की आदत के अनुसार 'सूर्यादि पञ्चदेवता इहागच्छत इह तिष्ठत' इत्यादि मंत्र पढ़ते, फूल-अक्षत फेंकते और विसर्जन करते कुल दस मिनट में सारा खेल खत्म। फिर भूख से व्याकुल चित्त लिये वे आँगन में पधारते। किसी पर गरजते और किसी पर बरसते। पठकाईन तैयार बैठी रहतीं। किसी प्रकार भोजन से निबटकर बैठकखाने में आते और बिछौने पर पड़ते ही दिन भर की थकावट उन्हें ले बैठती। फिर सो कर पाँच बजे शाम को उठते और पुनः सदा का क्रम जारी हो जाता। संक्षेप में यही थी पाठकजी के नित्यकर्म की तालिका।

गोवर्धन पाठक के पिता पं० धनुर्धर पाठक तीसेक बीघे (करीब बीस एकड़) जमीन छोड़ कर मरे थे। हरिहरपुर की जमीन जो सोना उगला करती, तीन-तीन फसलें देती। इतनी

जमीन से १५–१६ आदमियों के परिवार का भी गुजारा हो सकता था। लेकिन पाठकजी के परिवार में कुल पाँच थे –पति, पत्नी, एक कन्या, एक लड़का और एक नौकर। किसी समय इस परिवार में दूध-दही की नदी बहा करती लेकिन अब छाछ भी नदारद। किसी समय तीन तीन बखार अन्न से भरे रहते, लेकिन अब उन में चूहे दंड पेला करते। और कुल सात-आठ साल में ही इस सम्पन्न परिवार की यह दशा हो गयी थी। कहते हैं लक्ष्मी को आते भी देर नहीं लगती, जाते भी नहीं।

गोवर्धन पाठक ने अपने पिता का श्राद्ध जी खोलकर किया। माता के श्राद्ध में कुछ उठा न रखा। सारे मंडल को न्योता देकर अपने घर जिमाया और पुत्र चन्द्रकान्त के यज्ञोपवीत में तो मन की सारी मुराद पूरी कर ली। अपनी एकमात्र कन्या गौरी की शादी में तो कहना ही क्या!

शादी के समय गौरी की उम्र कुल आठ साल की थी। क्योंकि मनु का विधान है—'अष्टवर्षा भवेत् गौरी'। अतः पाठकजी ने अष्ट-वर्षा गौरी का विवाह पूरे गौरीरूप में ही करके मनु के वचन का अक्षरशः परिपालन कर दिखाया। किन्तु अष्ट-वर्षा गौरी के पति पं० राधारमण झा की उम्र ब्याह के समय पचास साल की थी। उनकी यह पाँचवीं शादी थी। वे मैथिल पंजी-प्रथा के अनुसार धारेझा या श्रीकांतझा पाँजी के उत्तराधिकारी थे। अतः पाठकजी ने बड़े प्रयत्न से इस भलमानुस (कुलीन) दुल्हे को अपनी एकमात्र पुत्री से शादी करने पर राजी किया। पं० गोवर्धन अपने सौभाग्य

को सराहते नहीं थकते ! क्योंकि इस भलमानुस दुल्हे का पैर घर में पड़ते ही उनकी अगली-पिछली सात पीढ़ियों तक के पितरों का उद्धार हो जायगा ! उनके वीर्य से गौरी के पेट से जो संतान पैदा होगी उसकी जलांजलि से पितर लोग बड़े ही तृप्त होंगे !

अस्तु। दो साल बाद गौरी के पति एक साथ पाँच स्त्रियों को विधवा बना परलोक सिधार गये। गौरी अब भी दुध-मुँही बच्ची थी। उसे तो अपना ब्याह भी याद न था, पतिदेव के दर्शन की बात तो दूर रही ! लेकिन एक बूढ़े के कर-स्पर्श मात्र ने सदा के लिये उसके जीवन को उजाड़ बना दिया !

इधर पिता-माता के श्राद्ध, पुत्र के यज्ञोपवीत और पुत्री के विवाह में गोवर्धन पर काफी कर्जा हो गया। यदि अभागे गोवर्धन ने उसी समय कर्जा चुका दिया होता, तो केवल पाँच-छः एकड़ में उसका सारा ऋण दूर हो गया होता। किन्तु अपने अकर्मण्य जीवन में भी उसे आशा थी कि केवल अनाज बेच कर ही वह कर्जा सधा देगा। लेकिन उसकी आशा पर पानी फिर गया। सारे संसार में एकाएक बेकारी और मंदी का जलजला आ गया। उस मंदी का हिन्दुस्तान पर भी पूरा प्रभाव पड़ा। अनाज का भाव दिन-पर-दिन गिरता गया। फलतः जमीन की कीमत भी गिरती गयी।

उधर उसकी गिरती हालत देख गाँव के धनियों ने जाल फेंकने शुरू किये। गोवर्धन जिस धनवान के दरवाजे जाता उसका बड़ा स्वागत होता। बिना त्योहार के ही उसे न्योता

दे-देकर सब अपने घर जिमाते। अन्त में सबसे अधिक सफलता मिली हरिनाथ बाबू को। मछली पूरी तरह उन्हीं के जाल में फँसी।

अब पहले के महाजनों ने गोवर्धन पर तगादा शुरू कर दिया। २५–३० रुपये सैकड़ा सालाना सूद तो गाँवों में आम बात थी। सूद-दर-सूद के साथ पहले का कर्जा चुकाते-चुकाते गोवर्धन की आधी से अधिक जायदाद खत्म हो गयी। इधर जमीन की उपज भी कम हो गयी थी। धरती माता मेहनत माँगती है, सो गोवर्धन के वश की बात न थी। पहले की शाहखर्ची की आदत उसकी दूर नहीं हुई थी। अतः कर्ज का अंबार लगना शुरू हो गया।

वह जिस किसी के पास पैसे या अनाज के लिये जाता, सभी अपने थैलों और बखारों का मुँह खोल देते। वह एक मन माँगता तो चार मन देते। कहते—"अजी पाठकजी! आप भी कमाल करते हैं। आप क्या नंगा कंगाल हैं जो एक मन लेंगे! आपकी अपनी बखारी है। जितना चाहे ले जाइये, जब चाहे दीजिये।" और पाठकजी फूलकर कुप्पा हो जाते। जी भरकर कर्जा ढो ले आते।

इस प्रकार 'एक ड्योढ़े डेढ़ और डेढ़ ड्योढ़े सवा दो' करके कुछ ही दिनों में उसकी सारी जायदाद गाँव के भले लोगों के पास पहुँच गई। अब गोवर्धन वास्तव में कंगाल बन गया!

घर में रात-दिन उपवास शुरू हो गया। अब वह किसी धनी के दरवाजे जाता तो सब मुँह घुमा लेते। पहले 'पाठकजी पाठकजी' कहते जिनका मुँह नहीं थकता वे अब बात तक नहीं करते। और जब बात करते तो उसे गोबरधन और गोबरिया कहकर पुकारते। अब वह किसी से पसेरी-आध-पसेरी माँगता तो लोग दुत्कार देते, कहते—"कहाँ से पसेरी अनाज लाऊँ? तेरे लिये अपनी बखारी खाली कर दूँ? खुद तेरे ही जैसा कंगाल बन जाऊँ?" और गोवर्धन तब भी लाज-शरम धोकर वहाँ बैठा रहता। निराश हो अन्त में घर की राह लेता।

× × ×

गौरी अब पन्द्रहवाँ पार कर सोलहवें में प्रवेश कर चुकी थी। यों तो बचपन से ही वह गुलाब की कली थी, किन्तु यौवन के वसंत में यह कली पूर्ण विकसित हो चारों ओर अपना मादक सौरभ बखेरने लगी। लोलुप भ्रमरों का समुदाय उसके चारों ओर गुंजार करने लगा। गौरी जानती थी कि वह विधवा है, किन्तु अपने उत्फुल्ल यौवन का रूप निहारने का लोभ वह संवरण नहीं कर पाती! उस गरीबी में भी साज-शृंगार करने को उसका जी ललक उठता! जब-तब अपने वैधव्य को याद कर एकान्त में जी भरकर रोती भी। उसके यौवन की छटा देख माँ-बाप की छाती पर साँप लोटने लगा। पर करते क्या? अपना-अपना भाग्य! विधाता विधवा के भाग्य को न जाने किस कलम से लिखता है!

अब भुवन की ओर से धन्ना चाची ने जाल फैलाना शुरू किया। वे गोबरधन के घर आने-जाने लगीं। उनकी गरीबी से, उनके दुख-दर्द से बड़ी सहानुभूति दिखातीं। जब-तब रुपये-पैसे से मदद भी करतीं। दो-दो दिन घर भर भूखा रहने के बाद धन्ना चाच की यह मदद उनके दिलों में कृतज्ञता के भाव भरे बिना न रहती।

इधर धन्ना चाची ने गोबरधन के लड़के चन्द्रकांत को बड़ी सिफारिश से एक रुपया माहवार पर भुवन के घर भैंस चराने पर नौकर रखा दिया। चन्द्रकांत भुवन के ही घर खाता। सस्ता समय था। रुपये का बीस-पचीस सेर अनाज मिला करता। यह एक रुपये मास की आय भी बड़ा सहारा सिद्ध होती, यदि हर महीने मिलती जाती। किन्तु गाँव के धनी अपने नौकरों का वेतन नगद और प्रतिमास देना नहीं जानते। यह आदत उनकी परम्परागत होती है। दो-दो चार-चार सेर करके कज के रूप में अनाज देंगे। साल के अन्त तक यदि यह रकम तीन मन पहुँच गयी तो सूद लगाकर तीन ड्योढ़े साढ़े चार मन होगी। फिर भाव-कट्टी करके इसका नगद बनेगा। यदि बाजार-भाव दो रुपये मन का हो, तो धनी लोग नौकरों से तीन रुपये का भाव लगायेंगे। इस प्रकार साढ़े चार मन के १३॥) नगद बने। साल भर का वेतन १०) बाद करके १॥) बकाया लाद दिया। और यह प्रतिवर्ष का बकाया सूद-दरसूद के साथ शैतान की आँत की तरह बढ़ता ही गया। मालिक के चंगुल से इस जन्म में फिर उद्धार की कोई

आशा नहीं। बेचारा चन्द्रकांत भी गाँव की इस सनातनी व्यवस्था का शिकार बनता जा रहा था। दिर-पर-दिन उसके पैरों की बेड़ियाँ मजबूत बनती जा रही थीं।

धन्ना चाची मौके-बेमौके गोबरधन की पत्नी और पुत्री के आगे भुवन की चर्चा चला देतीं। गरीबों पर उसकी दया-माया का बखान करतीं। एक दिन बातचीत के प्रसङ्ग में गोबरधन की पत्नी से वे बोलीं—"तुम्हारी तकलीफ को देख भुवन को बड़ा कष्ट होता है बहिन! आज अपनी माँ से उसने कहा था—'गौरी की अम्मा को अपने घर में कोई काम दे न दो माँ! बेचारे बड़ी तकलीफ में हैं।'—और उसकी माँ ने जवाब दिया—'किसी को जबर्दस्ती काम थोड़े ही दिया जाता है भुवन! वह कभी आती भी तो नहीं। वैसे तो काम कितना है, जैसे रसोई बनाना, बरतन माँजना, कुटावन-पिसावन करना और झाड़ू-बुहारू देना।' सो अपना हाथ-पैर हिलाके पेट भरने में बुराई क्या है बहिन?"

सुनकर गौरी की माँ की आँखों से आँसू गिरने लगे। धन्ना चाची चट अपनी आँचल के छोर से उसकी आँखें पोंछ अपनी आँखें भी जबर्दस्ती गीली बनाके बोलीं—"ना ना, रोवो मत बहिन! तुम्हारे भी दिन एक दिन जरूर फिरेंगे। लाज-शरम की बात छोड़ो। तुम्हारी तकलीफ देखकर मेरी तो छाती फटी जा रही है बहिन। बड़ी खुशामद से भुवन की माँ को राजी कर पायी हूँ।"

और पेट की आग ने बेचारी गोबरधन की पत्नी को भुवन के

घर नौकरी करने पर मजबूर कर दिया। धीरे-धीरे गौरी भी वहाँ आने-जाने लगी। और मकड़े ने जाल बुनना शुरू कर दिया।

धन्ना चाची गौरी को एकांत में पा मुँह मिचका के बड़े प्यार-भरे स्वर में कहतीं—"गौरी बिटिया! तू अपनी ओर देखती भी तो नहीं! जरा अपने रूप को तो निहार बिटिया! देखकर बड़े-बड़े जोगी-जती का भी मन डोल जाय।" और गौरी लजाकर मुँह नीचा कर लेती। फिर कभी कहतीं—"गयी जवानी फिर हाथ नहीं आती बिटिया! खाओ-पिओ, पहनो और ओढ़ो। जवानी का रस लूटो और लुटाओ।" और गौरी के लज्जावनत मुख को हाथ से जरा ऊपर अलगाकर चूम लेतीं। गौरी यह सब सुनती, निराले में बैठकर सोचती। घृणा, भय और आकांक्षा के झूले में वह झूलती रहती।

इधर केवल एक धन्ना चाची से काम बनता न देख भुवन ने अपनी पत्नी प्रतिभा से मदद माँगी। प्रतिभा एकाएक झल्लाकर बोली—"छुछुन्दर कहीं का! दिन-रात इसी के पीछे पागल रहेंगे! क्या तुम समझते हो कि औरतों के इज्जत नहीं होती? चार बच्चों के बाप बन गये, फिर भी लाज-शरम नहीं!"

और जवाब में भुवन उसकी पीठ पर कसकर एक लात जमाके बोला—"चुप रह कुतिया! फिर नाहीं की तो घर से निकाल दूँगा! दूसरी शादी कर लूँगा!"

दूसरी शादी की बात सुनते ही प्रतिभा पर मानों पानी पड़ गया। उसका सारा क्रोध हवा हो गया। इस धमकी के आगे सदा

से वह झुकती आयी थी। इस बार भी पति की नीच आकांक्षा के आगे उसे झुकना पड़ा। प्रयत्न में वह लग पड़ी।

× × ×

एक बार जहाँ पाँव फिसला, यदि सम्हल गये तो ठीक, नहीं तो·····! गौरी फिसल गयी। सम्हलने की उसने चेष्टा भी न की। वह भी तो आखिर हाड़-मांस की बनी पुतली ही थी। भुवन की कामाग्नि इस त्रिभुवन सुन्दरी को अपने भुजपाश में पा उद्दीप्त हो उठी। इस कोमल कली को जलाकर वह राख कर देना चाहती थी। गौरी ने भी काम की वेदी पर अपने को निछावर कर दिया। जी भरकर यौवन का आनन्द लूटने और लुटाने लगी। बाधा नहीं, संकोच नहीं, सारी दुनिया हरी दीखने लगी।

अब वह केवल भुवन तक ही अपने को सीमित न रख सकी। धन्ना चाचियों की मदद से दूसरे यार भी गोटी फेंक रहे थे। गौरी ने उन्हें भी संतुष्ट करना शुरू किया। भुवन भला इसे कब बर्दाश्त करता! प्रतिद्वंद्वियों से निबटने का साहस तो उसे न हुआ, किन्तु गौरी को नीचा दिखाने का अवसर वह ढूँढ़ने लगा।

अपने पाप छिपाने में समाज के अतिरिक्त प्रकृति भी पुरुषों की मदद करती है, किन्तु नारी के साथ वह न्याय नहीं कर पाती। गौरी को पेट हो गया। बेचारी दहल उठी। आखिर नारी ही तो ठहरी! गर्भ गिराने के हर तरीके अपनाये गये, पर गर्भ गिरा नहीं। विधि का विधान कुछ और ही था। माँ-बाप उसके घबड़ा उठे। गौरी के यौवन-बाजार की बदौलत कुछ दिनों से उन्हें भी चतुर्दिक

हरा-ही-हरा नजर आ रहा था। लेकिन फिर अब वही सूखा—वही रामा और वही कठोला। हाय री गरीबी! गौरव और गर्व का सत्यानाश करने वाली, तेरा सौ-सौ बार सत्यानाश!

गाँव भर में काना-फूसी शुरू हो गयी। ऐसी काना-फूसी में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक मजा आता है और धन्ना-चाची ने तो इसके फैलाने और पसारने में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया।

धन्ना चाची कुलीन घर की कन्या थीं। गाँव के सुप्रसिद्ध दिवंगत भलमानुस पं० भगवानदत्त झा की धर्मपत्नी थीं। कुलीन कन्या तथा प्रथम पत्नी होने के कारण अन्य पन्द्रह सौतों में केवल मात्र इन्हें ही ससुराल की डीह देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। किन्तु पतिदेव श्री भगवानदत्त झा सदा ससुरालों की ही सैर का आनन्द लेते रहते। एक ससुराल से दूसरी ससुराल में जा-जाकर अपनी पत्नियों के फिसले पैरों पर पर्दा डालते रहते। इस प्रक्रिया में वे इस प्रकार लीन रहते कि अपनी प्रथम पत्नी धन्ना-चाची और सम्भवतः अपनी जन्म-धरती हरिहरपुर को भी भूल गये थे। ससुरालें भी तो कम न थीं, एक दर्जन से भी अधिक! अतः धन्ना चाची सधवा होकर भी विधवा का जीवन व्यतीत करतीं, या यों कहिए कि.....लेकिन यह नाममात्र का सौभाग्य भी विधाता से बर्दाश्त न हो सका। पन्द्रह साल पहले पं भगवानदत्त ऐसी एक दर्जन धन्ना-चाचियों को एक साथ

विधवा बना परलोक सिधार गये। इन विधवाओं में कई तो उस समय दुधमुँही बच्ची ही थीं।

इधर धन्ना चाची की यौवन-गंगा में न जाने कितने यार गोते लगा चुके थे। चाची पर प्रकृति भी प्रसन्न थी। अतः उन्हें गौरी की जैसी परेशानी का मुकाबला कभी करना नहीं पड़ा था। अब लेकिन बड़ी भगतिन बन गयी थीं, वृद्धा वेश्या तपस्विनी की तरह। अपनी इष्टदेवी काली के 'क्रीं' बीज मन्त्र का एक आसन से तीन सहस्र जप कर जातीं। 'नमः शिवाय' और 'राम' नाम का जप भी निर्बाध चलता। काली और शिव के मन्त्र का जाप रुद्राक्ष की माला पर तथा राम नाम का जप तुलसी की माला पर। साल भर की शायद ही कोई एकादशी उनसे छूट पाती। बड़ी तत्परता से व्रत रखतीं, शक्ति के अनुसार ब्राह्मण जिमातीं और इस प्रकार अपनी स्वर्ग की सीढ़ी को लम्बी बनाती रहतीं। किन्तु, हायरी तृष्णा! तन भले ही बूढ़ा हो जाय, लेकिन तेरी तरुणाई सदा बनी रहेगी! अतः धन्ना चाची की तृष्णा भी इन उपरोक्त तरीकों से अपनी तृप्ति करती आ रही थीं।

× × ×

अमावस की रात! नौ बजे थे। हरिहरपुर के भले आदमियों की पंचायत बैठी थी। भले आदमी=अर्थात् धनी, क्योंकि पैसा-वादी समाज में गरीब कभी भला हो ही नहीं सकता। पंचायत का मुख्य आयोजक भुवन था। पंचों में तीस से लेकर साठ साल तक की उम्र के भले लोग थे। अभियुक्त था वही गरीब गोबरधन।

अभियोग था यही कि, उसने अपनी तरुणी विधवा कन्या पर निगरानी रखने के बजाय पाप-कर्म के लिये प्रोत्साहित किया—प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से। अब वह पाप-कर्म उसकी कन्या के पेट के रूप में प्रगट हो चुका है, सारे गाँव को कलंक के पंक में डुबा देना चाहता है। पंचों ने फैसला दिया—गोबरधन का पानी-पौनी बन्द कर दिया जाय, उसे जात से निकाल दिया जाय। हाँ, प्रायश्चित्त करके वह जात में पुनः लिया जा सकता है, यदि अपनी कलंकिनी कन्या से किसी प्रकार पिंड छुड़ा ले। और पं० पद्मानन्द मिश्र ने गर्दन हिलाते हुए पंचों के इस फैसले पर अपनी शास्त्रीय सम्मति की मुहर लगा दी।

ग़रीब गोबरधन शिर नीचा किये बैठा था। फैसला उसने सुना। आकाश-पाताल सामने आ गया। शिर चकराने लगा। दूसरे ही क्षण बेहोश होकर वहीं गिर गया।

इसी बीच बिजली-सी दमकती, सारे शील-संकोच को तिलाञ्जलि दे उस भरी पंचायत में गौरी आ खड़ी हुई। मारे क्रोध के वह काँप रही थी। बड़ी कठिनाई से अपने काँपते ओठों को उसने सम्हाला। पंचों की ओर मुड़कर हाथ जोड़ गंभीर स्वर में बोली—पंच को परमेश्वर कहते हैं। क्या पंच-परमेश्वर मुझे भी दो शब्द बोलने की अनुमति देंगे ?"

सभा में खलबली मच गई। गौरी की इस निर्भीक साहसिकता पर सभी दंग रह गये। किसे आशा थी कि एक गँवई गाँव

की ग़रीब लांछित तरुणी इतनी निर्भीक और साहससंपन्न हो सकती है !

"जो कहना हो कह जाओ।"—पंचों ने हुक्म दिया।

"पर मैं वचन चाहती हूँ कि मेरी बात अन्त तक सुनी जायगी।" गौरी ने कहा !

"हाँ ! अन्त तक कह जाओ।"—पंचों ने जवाब दिया।

अब भुवन के दिल में कँपकँपी पैदा हो गई। घटना उसकी आशा के विपरीत घटी। गौरी की निर्भीक साहसिकता ने उसे धोखा दिया। गौरी ने कहना आरम्भ किया :—

"पंचो ! मैं भी इसी गाँव की बेटी हूँ। गाँव का भी रिश्ता होता है। तो क्या उस रिश्ते से आप लोग मेरे भाई, चाचा, और दादा नहीं लगेंगे ? मगर किसी ने भी मेरी लाज को अपनी लाज नहीं समझी, मेरे अपमान को अपना अपमान नहीं समझा। भरी सभा में मुझे नंगी किया गया, किन्तु किसी के दिल में हिचक नहीं, कसक नहीं। ऐसा क्यों ? इसलिये कि हम ग़रीब हैं, अनाथ हैं। समाज की आँखों में, या यों कहिये धनियों की दृष्टि में ग़रीबों की कोई इज्जत नहीं, आबरू नहीं, चाहे वह ग़रीब उसका सगा-सम्बन्धी ही क्यों न हो। यदि मेरे पिता के आज वे दिन होते, तो आपकी आँखें अंधी हो गयी होतीं, कान बहरे हो गये होते। लेकिन....."

गौरी की बातें समाप्त होने से पहले ही बहुतेरे धनियों की त्योरियाँ चढ़ गयीं। भुवन कुछ आश्वस्त हुआ। इस स्थिति से लाभ

उठाकर वह बीच में ही गौरी को फटकारते हुए बोला -"चुप हरामजादी ! बक-बक बन्द कर।"

किन्तु गाँव के वयोवृद्ध विचारशील पंच प्रभुनाथ मिश्र ने भुवन को फटकारते हुए गौरी से आगे कहने को कहा। गौरी ने पुनः कहना आरम्भ किया :—

"इस पंचायत में गाँव के बड़े-बूढ़े प्रतिष्ठित और मुखिया हरिनाथ चाचा मौजूद हैं। उनके सपूत भुवनबाबू भी मौजूद हैं। मगर भुवन भाई ने सारी मनुष्यता, सारे विवेक और विचार को ताक पर रखकर उस ग़रीब महिला को भरी सभा में सब के सामने अपमानित और लांछित करने की चाल चली है जिसके पेट में उसी की आत्मा, उसी का खून आज शिशु बनकर मौजूद है। और यह नर-पिशाच अब तक न जाने गाँव की कितनी बहू-बेटियों की लाज लूट चुका है, लूट रहा है और लूटने की चालें चल रहा है।"—कहते-कहते गौरी की आँखों से अंगारे बरसने लगे। पंचों को सम्बोधित करती फिर वह बोली :—

"पंचो ! आज गौरी इस समाज से, इस गाँव से सदा के लिये बिदा ले रही है। जिस समाज में विवेक और विचार का लेश नहीं, दया-माया की छूत नहीं, धर्म-कर्म का संसर्ग नहीं उसे सदा के लिये नमस्कार करती है।"—और कहकर गौरी चट सभा से बाहर हो गयी।

सभा में तहलका मच गया। भुवन और हरिनाथ तो मानो मर गये। गौरी की जिह्वा पर आज साक्षात् जैसे शारदा सवार हो

गयी थीं। यह किसे आशा थी, ऐसा किसने सोचा था कि एक लांछित निरीह अबला भरी सभा में खड़ी होके सब के मुँह पर निर्धोक थूककर इतनी शान से चलती बनेगी !

दूसरी तरफ स्त्रियों की मंडली में बैठी धन्ना चाची हल्के हाथों से छाती पीट-पीटकर, आँख-मुँह चमका-चमकाकर बड़बड़ाने लगीं—"अरे बाप रे ! ऐसी बेहया ? लाज-शरम धोके पी गयी ? वेश्या की तरह पुरुषों के आगे....."

बीच में ही भुवन की बड़ी बहन पार्वती उन्हें फटकारती हुई बोली—"चुप रह चाची ! तुम्हें शरम भी नहीं आती ? यही सब करते बूढ़ी हो गई। अब भी तो चेतो ! तुम्हें इतनी भी समझ नहीं कि गौरी ने आज हम अबलाओं की लाज रख ली ?"

इस प्रकार पुरुषों और स्त्रियों दोनों की मंडली मुखरित हो उठी। भुवन लपककर उस ओर बढ़ा जिधर गौरी अभी चली थी। और 'खड़ी रह हरामजादी, भागी कहाँ जा रही है'—कहकर उसके बाल पकड़ना ही चाहता था, कि पीछे से किसी की कड़कती आवाज ने उसे स्तंभित कर दिया। सुमन सभा के किसी कोने से तीर की तरह छूटता आकर बिजली की तरह कड़ककर बोला—"खबरदार भैया, यदि तुमने गौरी के अंग में फिर से हाथ लगाने की चेष्टा की ! नीच ! निर्लज्ज ! उसकी ओर पैर बढ़ाने के बजाय तुम्हें खुद किसी सूखे तालाब में डूब मरना चाहिये था !"—और कहकर अपने मजबूत हाथ से भुवन की कलाई उसने कसकर पकड़ ली।

भुवन भौंचक्का रह गया ! जीवन की यह पहली घटना थी कि सुमन ने उसे अपमानपूर्ण शब्दों से सम्बोधित किया था। सुमन मारे क्रोध के थर-थर काँप रहा था। भुवन उसकी भयानक मूर्ति देख भीगी बिल्ली बन गया।

सुमन अब उस भीत-भौंचक्की गौरी की ओर मुड़कर बोला—"जा बहन, चली जा ! इसी वक्त चली जा ! जहाँ स्त्रियों का मान नहीं, गरीबों के लिये स्थान नहीं, ऐसे पापी, नीच और अधम समाज को सदा के लिये ठुकरा के चली जा !"

गौरी गद्‌गद हो उठी। चट झुककर सुमन के चरणों को छू वह गहन अंधेरे में आँधी की तरह सदा के लिये विलीन हो गयी।

: ७ :

सुमन का मन तीता हो गया था। यों तो जेल में माँ की मृत्यु की खबर पाने के बाद से ही संसार के प्रति उसे विरक्ति हो चली थी, किन्तु गौरी-कांड ने तो उसके दिल को बिल्कुल विषाक्त बना दिया। जेल से छूटकर आने के बाद यह प्रथम अवसर था कि लोगों ने उसकी वाणी सुनी, किन्तु यह वह वाणी थी, जो केलि-निरत क्रौंच-वध के कारण करुणा और क्रोध के रूप में आदि कवि के मुख से कविता बनकर निकली थी। बाद में वही वाणी आदि काव्य के रूप में सहस्र-धार होकर फूट पड़ी और उस करुणा के स्रोत में गोते लगा आज भी सहृदयों का हृदय पावन और पुनीत बनकर सुनीति के पथ पर चलने की चेष्टा करता है।

अस्तु, सबके दिलों से यह भ्रांत धारणा दूर हो गयी कि सुमन पागल या अध-पागल है। गौरी-कांड के अन्तिम अङ्क के अकृत्रिम अभिनय ने गाँव के पीड़ितों और बहुतेरे युवकों के हृदय में सुमन के प्रति श्रद्धा की आँधी बहा दी। वे अब सुमन को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। भुवन तो अब सुमन के सामने आने से भी लजाता। संयोग से कभी देखा-देखी होने पर बरबस उसका शिर झुक जाता और पार्वती तो सदा से ही अपने इस अल्हड़ अनुज

को प्यार करती, किंतु अब सुमन के व्यक्तित्व के प्रति प्यार के अतिरिक्त पूजा की भी भावना उसके दिल में उत्पन्न हुई।

लेकिन सुमन ने पुनः चुप्पी साध ली। वह किसी से नहीं बोलता, यहाँ तक कि माँ से भी नहीं। सामने जो कुछ परोसकर आ जाता, चुपचाप खा के अपनी कोठरी में बन्द हो जाता, या बाहर किसी निर्जन-निराले में चला जाता। वहाँ घंटों विचारों में डूबा रहता। कभी-कभी काफी रात हो जाती। सारा घर घबड़ा उठता, खासकर बहन और माँ। दोनों माँ-बेटी नौकर को साथ ले लालटेन के साथ उसे ढूँढने निकलतीं, और देर तक इधर-उधर भटकने के बाद पोखर की भींड पर किसी झाड़ी में उसे बैठा पातीं।

कहते हैं एक अकेले हरिहरपुर में ही बहत्तर पुराने पोखरे मौजूद हैं। सतजुग के जमाने में दैत्य दानवों ने इन्हें खोदा था और सो भी सिर्फ एक रात में ही, और इन पुराने बहत्तर के अतिरिक्त पुण्य लोलुप भले लोगों द्वारा जब-तब नये भी खुदवाये जाते। इस प्रकार गाँव की आधी से अधिक जमीन तो दैत्यों के खुदे इन पोखरों की दानवी कुक्षि में ही समा गयी थी।

पोखरे पुराने थे, इनकी भींड़ें पुरानी थीं, और इन पर उगे पेड़-पौधे भी पुराने थे। वृक्षों और झाड़ियों की घनी पंक्तियाँ दिन में ही रात का प्रतिभान करतीं और रात तो भला रात ही ठहरी! पाप-पंकिल समाज से दूर हो इन्हीं स्थानों में आकर सुमन के उद्विग्न-चित्त को कुछ शान्ति मिलती।

सुमन की यह दशा देख माँ-बाप घबड़ा गये। उन्हें भय होने लगा कि सुमन कहीं साधू न बन जाय। उन्होंने उसकी शादी की बात चलायी, उसके पैरों को मजबूत बंधन में बाँधने की बात सोची। एक दिन यह शुभ संवाद लेकर उसकी भाभी प्रतिमा उसके कमरे में पहुँची, और मुस्कुराती हुई बोली—"अब मुझे इनाम मिलना चाहिये छोटे बाबू! मेरी देवरानी आने ही वाली है, नन्हीं-सी, चाँद-सी।" और कहकर सुमन की ठोडी में एक हल्का-सा ठुनका लगा दिया।

सुनते ही सुमन की आँखें लाल हो उठीं। उसने आँखें तरेर कर भाभी को देखा और गुस्साभरे स्वर में बोला—"खबरदार भौजी, अगर फिर कभी ऐसी बात कहने आयीं तो! और माँ से कह दो कि अगर उसने शादी-वादी की बात चलायी तो मैं आज ही घर से निकल पड़ूँगा।"

भाभी बेचारी को अच्छा इनाम मिला। चौबाईन चलीं थीं छब्बाईन बनने, और बन गयीं दुब्बाईन! बेचारी भाभी भागी सास के पास पहुँची और घटी घटना सुना दी। सुमन की माँ घबड़ा उठीं। दौड़ी हुई सुमन के पास पहुँचीं और मीठे फटकार के स्वर में बोलीं—"क्यों रे पगला, तू प्रतिमा से क्या बोल रहा था?"

सुमन ने वैसे ही कठोर स्वर में जवाब दिया—"अगर शादी-बादी की बात चलायी तो आज ही घर से भाग निकलूँगा?"

माँ डर गयीं। सुमन के मुँह पर एक हल्की चपत लगा के

बोलीं—"चुप ! भाग क्यों निकलेगा ? क्या दुनिया में लोग शादी-ब्याह नहीं करते ? यह कौनसी नयी बात हुई जो तू घर से भाग निकलेगा ?"

"तुम लोग नहीं न मानोगे ? अच्छा तो मैं चला।"—कहकर सुमन उठ खड़ा हुआ।

माँ झट उसका हाथ पकड़ के बोलीं—"ठहर पगला ! चला कहाँ ? अब कभी ब्याह की बात न चलाऊँगी।"

सुमन ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"हाँ, सो ही? अच्छा तो मेरी सौगन्द खाओ।"

"अरे कुलछना ! तेरे मुँह में जब जो आता है वही बोल देता है। मेरा मरा मुँह देख जो फिर कभी ऐसी बात मुँह से निकाल।" और कहकर माँ रोने लगीं।

माँ की आँसू ने सुमन को स्तंभित कर दिया। वह बोला—"अच्छा जाओ, मैं घर से नहीं निकलूँगा। लेकिन शादी की बात कभी मत चलाना ! कहे देता हूँ।"

माँ आँसू पोंछती हुई भर्राये स्वर में बोलीं—"जा ! कैसी तेरी मत हो गयी ? न जाने किस छुच्छी ने इसकी मत फेर दी है ?" और फिर हाथ जोड़कर अपनी कुलदेवी को उद्देश करके बोलीं—"हे काली-माई ! जिस दिन मेरे सुम्मू का मन फिर जायगा, मैं आपको जोड़ा खसी चढ़ाऊँगी।" कहकर माँ काली के उद्देश से बार-बार नमस्कार करके कमरे से बाहर हो गयीं।

× × ×

सुमन को अपने एकांत जीवन में जब-तब माँ अन्नपूर्णा याद आ जातीं, उनका वह सदा हँसता चेहरा याद आ जाता। माँ अब संसार में नहीं रहीं यह याद आते ही सुमन का हृदय रो पड़ता। वह रोने लगता। चन्द्रभानुपुर के आश्रम के साथ माँ की वाणी भी साकार बनकर मानो सामने खड़ी हो जाती।

एक दिन माँ ने सुमन से कहा था—"बेटा सुमन, सुरेन्द्र ने एक दिन बताया था कि, 'यह दुनिया तब तक नरक बनी रहेगी, जब तक व्यक्तिगत स्वार्थ या व्यक्तिगत सम्पत्ति की सत्ता बनी रहेगी।' मुझे बड़ी बेतुकी मालूम पड़ी उसकी यह बात। समझने की चेष्टा करती, पर समझ न पाती। भला मनुष्य अपने स्वार्थ को भूल कैसे सकता है ? यह तो किसी भी सूरत में संभव नहीं। बड़े-बड़े त्यागी और विरक्त महात्माओं तक में स्वार्थ की मात्रा बनी रहती है, तो एक संसारी मनुष्य के लिये यह कैसे सम्भव है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थ को भूल जाय ? और व्यक्तिगत स्वार्थ ही तो व्यक्तिगत सम्पत्ति का कारण है ? लेकिन सुरेन्द्र की उस वाणी का तात्पर्य आज मैं सोलह आने समझ रही हूँ। चन्द्रभानुपुर-आश्रम के इस सामूहिक जीवन में उस तात्पर्य को अक्षरशः प्रतिफलित होते देख रही हूँ। सामूहिक स्वार्थ पर व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि दे देने में ही इस पवित्र वाणी की सार्थकता है बेटा !"

और सुमन ने इसके जवाब में कहा था—"लेकिन तुम इस

तथ्य को क्यों भूले जा रही हो माँ, कि इसका सारा श्रेय तुम्हारे निष्कलुष और निःस्वार्थ जीवन को है ?"

और माँ ने कहा था—"इसका सारा श्रेय समता के सच्चे सिद्धांत पर आश्रित इस सामूहिक जीवन को है बेटा! इस जीवन से अलग रहकर इसके मंगलमय तात्पर्य को समझ लेना विद्वानों के लिये भी कठिन है सुम्मू !"

× × ×

सुरेन्द्र की भाँति सुमन का दिल भी ग़रीबों की दशा से दुखी रहता। वह भी धनियों के अन्याय-अत्याचार को मिटा के नये समाज के निर्माण के सपने देखा करता। जब-तब निराश हो जाता। आत्महत्या तक करने को सोचता। किन्तु पुनः अंतस् के किसी कोने से मानो किसी की फटकार भरी आवाज सुनाई देती—'छिः! आत्महत्या! यह कायरों का काम है, भागने का एक बहाना! भागो नहीं, दुनिया को अपने विचारों के अनुसार बदलने की चेष्टा करो और उस चेष्टा में अपने आपको बलिदान कर दो।' सहसा सुमन का चेहरा खिल उठता। सारी निराशा दूर होकर हृदय में साहस और स्फूर्ति के भाव भर जाते। और वह पुनः नये संसार का सपना लेने लगता।

: ८ :

सन् १६३३ के जून का महीना था। उस जेठ की कड़ी धूप में, उस भयावनी गर्मी में हरिहरपुर के हर कोने में एक अजीब सजीवता नजर आ रही थी। हर ठौर और ठिकाने में चहल और पहल! हर चेहरे पर उत्सुकता! हर घर में चर्चा। और ये सब बातें इसलिये हो रही थीं कि उस इलाके के सब से बड़े जमीन-दार राजा राघवेन्द्र सिंहजू हरिहरपुर में पधार रहे थे।

राजा साहेब का खानदान बहुत पुराना और प्रतिष्ठित था। इसी कारण केवल दो लाख सालाना आय पर ही उन्हें वंश-परम्परा से 'राजा' की उपाधि मिली थी। और अपनी जमींदारी में इनका रोब-दाब भी बहुत था। इनके नाम से लोग थर-थर काँपते। यदि एक बकरी भी किसी के खेत में पैर रख दे, और राजा साहेब के यहाँ फरियाद पहुँच जाय, तो समझ लीजिये कि बेचारे बकरी वाले की मौत! २५ रु० से कम जुर्माना करना तो उन्हें आता ही न था। और वह जुर्माने की रकम खेत वाले को न मिलकर स्वयं राजा साहेब के पाकेट में इकट्ठी होती। इस प्रकार उन्हें ऊपर से भी अच्छी-खासी आमदनी थी।

हरिहरपुर में महीना भर पहले से ही उनकी अगवानी की तैयारी शुरू थी। गाँव के एक बहुत बड़े पुराने बगीचे में कई

छोटे-बड़े शामियाने तन चुके थे, तंबू-कनात का प्रबन्ध हो चुका था। स्कूल के लड़कों ने राजा साहेब के अभिनंदन का रिहर्सल (पूर्वाभिनय) आरम्भ कर दिया था। गाँव के बड़े-बूढ़े राजा साहेब के पुश्त-दरपुश्त की नमक-मिर्चभरी कहानियाँ कहने लग पड़े थे। गाँव के धनी-मानी भक्त प्रजाजन नजराने की तैयारियों में जुट पड़े थे। और छोटे बच्चे बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन·····लेकिन मजदूरों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा था। पेट बाँधकर उनसे काम कराया जाता, डंडे के जोर बेगार लिया जाता।

और उधर गाँव की संस्कृत पाठशाला के अध्यापक पं० धरणीधर पाठक महीना भर पहले से ही संस्कृत पद्यों की रचना में पिल पड़े थे। क्योंकि वे भी अपनी पाठशाला की ओर से राजा साहेब का अभिनंदन करना चाहते थे। और अभिनन्दन-पत्र के लिये स्वरचित संस्कृत पद्यों की अनिवार्य आवश्यकता थी।

पं० धरणीधर जी दस साल पहले हरिहरपुर के खाते-पीते लोगों में गिने जाते थे। इन्हें अपने पुश्तैनी पांडित्य का बड़ा अभिमान था। कहते हैं इनके किसी लकड़दादे को पांडित्य के जोर पर तीन खून माफ थे। पं० धरणीधर का सारा परिवार अपने अतीत की गौरव-गाथा गा-गाकर झूमता रहता। यद्यपि स्वयं धरणीधर में वह पांडित्य-परंपरा नाममात्र को रह गयी थी।

इस परिवार का प्रत्येक उपनीत व्यक्ति त्रिकाल संध्या अवश्य करता। शूद्रों से जरासी छूत हो जाने, या दाहिने कान पर बिना

जनेऊ डाले पेशाब करने, या पेशाब के बाद जनेन्द्रिय को धोना भूल जाने पर 'गच्छ सूत्रं यथासुखम्' कहकर पुराने यज्ञोपवीत का परित्याग और नये का परिधान एक दैनिक नियम सा बन गया था। घर की औरतें बेचारी परेशान रहतीं, क्योंकि जनेऊ तो उन्हें ही बनाना पड़ता था। उस प्रांत के ब्राह्मण बाजारू जनेऊ नहीं पहनते। इस पवित्र परिवार में अहर्निश शास्त्र-पुराण और पारलौकिक बातों की चर्चा छिड़ी रहती। किन्तु परिवार की वृद्धि के अनुसार जायदाद में वृद्धि नहीं हुई। वर्तमान राजा साहेब के किसी लकड़दादे ने पं० धरणीधर के लकड़दादे को ब्रह्मोत्तर के रूप में पर्याप्त जमीन दी थी। वह जमीन पुश्त-दर-पुश्त बँटते-बँटते धरणीधर तक पहुँच कर स्वल्पकाय बन गयी थी। दान-दक्षिणा की मात्रा भी कम हो गयी थी, लोगों की श्रद्धा-भक्ति भी कम होती जा रही थी। अतः पं० धरणीधर की स्वल्प-काया धरित्री निरन्तर बढ़ते कर्ज-भार से लचकती और दबती गयी, और अन्त में उनके परिवार को त्याग कर प्रसिद्ध तिकड़म-बाज हरिनाथ की सहचरी बन गई। देखते-ही-देखते यह स्वाभि-मानी परिवार गरीबी के निर्मम पैरों के तले पिसने और घिसने लगा।

'सतां माने म्लाने मरणमथवा दूर-गमनम्'— किन्तु पं० धरणीधर न मर सके, न दूर जा सके। क्योंकि मरा उनसे गया नहीं, और घर से दूर जाकर पैसे पैदा करने की विद्या से वे बिल्कुल अनभिज्ञ थे। पंडितजी की गरीबी पर तरस खाकर गाँव के कुछ

उदारचेता व्यक्तियों ने उनकी मदद की। गाँव की संस्कृत पाठ-शाला में उन्हें अध्यापक रखा दिया। पंडितजी बंगाल की 'काव्यतीर्थ' परीक्षा पास थे, अतः उन्हें १२ रु० मासिक बोर्ड से मिलने लगा। मरते-जीते दिन कटने लगे।

इसी बीच पंडितजी के शिर पर एक नई हवस सवार हुई। शास्त्रों में मंदिर-प्रतिष्ठा के पुण्य-फलों को देख उनका जी ललक उठा। कुछेक भक्तों की टिटकारी पर हरिमंदिर-निर्माण का दृढ़ संकल्प वे कर बैठे। इस पुण्य-कार्य में राजा साहेब की सहायता की उन्होंने कामना की। अतः महीना भर पहले से ही उनकी स्तुति में अभिनन्दन-पत्र के निर्माण में लवलीन थे। क्योंकि प्राचीन राजाओं की उदारता और दानशीलता की कथा वे सुन चुके थे। और राजा भोज की 'प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ' वाली बात तो सदा उनकी जिह्वा पर विराजती रहती।

नियत दिन को शाम के समय राजा राघवेन्द्रसिंहजू हरिहरपुर पधारे। उनके चरण-रज पड़ते ही सारा ग्राम मुखरित हो उठा! हलचल मच गई। राजा साहेब की जय-ध्वनि से वहाँ का आकाश गूँज उठा। राजा साहेब जोड़ी पर सवार थे। कमर से तलवार लटकाये दो घुड़सवार उनके आगे-पीछे चल रहे थे। जोड़ी कैम्प की ओर जा रही थी, उसके पीछे-पीछे गाँव के बच्चे दौड़े जा रहे थे। अपने घरों की खिड़की या दरवाजे से झाँक-झाँक कर राजा साहेब के दर्शन से स्त्रियाँ अपने नेत्रों को कृतार्थ कर रही थीं। इस प्रकार दसेक मिनट बाद राजा साहेब की

सवारी उस पुराने बड़े बगीचे के कैम्प में आ पहुँची, और साथ ही भक्त प्रजाजनों द्वारा एक बार फिर 'राजा साहेब की जय' की समवेत स्वरलहरी से वह सारा बगीचा और वहाँ का सारा आकाश ध्वनित और प्रतिध्वनित हो उठा।

दरबार सजा था, बड़ी शान-शौकत के साथ। उस बड़े शामियाने के बीच में एक बिल्कुल राजसिंहासन-सा बना था। हाई स्कूल के ड्राइङ्ग मास्टर मुन्शी गुलजारीलाल जी ने अपनी सारी शिल्प-चातुरी इसके निर्माण में लगा दी थी। शायद राजा साहेब की अपनी पुश्तैनी गद्दी भी इसके सामने फीकी लगती। शायद भारत-सम्राट् पंचम जार्ज के सिंहासन की नकल थी। और राजा राघवेन्द्रसिंह जी थे भी तो हरिहरपुर के लिये जार्ज पंचम ही। बल्कि उनसे भी बढ़कर। क्योंकि राजा साहेब के रोब-दाब के आगे किसी निरंकुश सम्राट् की तानाशाही भी तुच्छ मालूम पड़ती। अस्तु राजा राघवेन्द्र एक सम्राट् की शान के साथ उस सिंहासन पर जा बिराजे। पंडितों ने मंगल-मंत्र और शान्तिमंत्र पढ़कर आपको आशीर्वाद दिया और उसके जवाब में राजा साहेब ने शिर हिलाकर जरा मुस्कुरा दिया।

अब नजराने की वर्षा शुरू हुई। श्रीहरिनाथ झा गाँव के जेठ-रैयत थे, अतः सबसे पहले उन्होंने नजराना दाखिल किया, और उनके बाद दूसरों ने। देखते-ही-देखते राजा साहेब के सामने रुपये और अन्य चीजों का अंबार लग गया। प्राइवेट सेक्रेटरी

के इशारे पर फिर कुठारी या भंडारी जी ने उन सब चीजों को उठवाने और रखवाने का प्रबन्ध कर लिया।

इसके बाद सारी भद्रमंडली उस विशाल वर्गाकार शामियाने के नीचे धनुषाकार होकर सिंहासन के सामने बैठ गई। मुजफ्फरपुर की प्रसिद्ध रूपसी रूपाबाई और उस प्रांत के प्रसिद्ध नर्तक मिश्रीलाल के मुजरे का इन्तजाम था। मिश्रीलाल का नाच-गान शुरू हुआ। कुछ देर होता रहा। पर जमा नहीं। सारी मंडली रूपाबाई के मुजरे के लिये उत्सुक थी।

रूपा आई। एकाएक सबकी दृष्टि उसपर जाकर जम गई। मुजरा शुरू हुआ। अब तक संगीत-नृत्य की अपनी सारी संचित चतुराई को वह अदा करने लगी। दर्शकवृन्द झूमने लगा, उसके संगीत पर नहीं, उसके अंग-प्रत्यंग की भंगी पर। राजा-प्रजा सब की दशा एक-जैसी थी। 'मुनिहुन के मन मन्मथ जागा' वाली बात चरितार्थ हो रही थी। काफी रात बीते तक यह रंगरेली चलती रहकर फिर विसर्जित हुई। राजा साहेब अपने शयन-तंबू में पधारे। प्रजाजन अपने-अपने घर गये और कुछेक रसिक युवक रूपा की रूपमदिरा से मत्त होकर रातभर उसके कैम्प के आस-पास चक्कर लगाते रहे।

दूसरे दिन शाम के पाँच बजे दरबार ठाठ के साथ सजा था। गाँव के सभी भले लोग उपस्थित थे। गरीब लोग भी। केवल पं० धरणीधर अब तक हाजिर न हो सके थे। प्रथम दिन के

दरबार में भी अनुपस्थित ही रहे। इसका कारण था। एक तो शुभ लग्न नहीं था, दूसरे उनका हाथ खाली था। खाली हाथ राजा का दर्शन वर्जित जो है। शास्त्र ने कहा है, 'रिक्त-हस्तो न पश्येद् वै राजानं दैवतं गुरुम्'। एक नारियल, दो पत्ते पान के और पाँच सुपारियों का जोगाड़ तो वे कर चुके थे, किन्तु दो रुपये नगद का प्रबन्ध किसी भी भाँति नहीं हो रहा था। केवल नारियल, पान, सुपारी से भी उनका काम चल सकता था, शास्त्र-वचन के उल्लङ्घन के दोष से बच सकते थे, किन्तु पण्डितजी तो 'एक लगावे और क्या-क्या पावे' के चक्कर में पड़े थे। अतः इन दो रुपयों के प्रबन्ध के पीछे वे पागल बन गये थे। काफी परेशानी के बाद वे सफल हुए और हृदय उनका आशा के सब्ज़-बाग में सैर करने लगा।

आज प्रातःकाल पाठक जी, राजपण्डित राजगुरु पं० श्री त्रिलोकनाथ झा से मिलकर अपना अभिप्राय जता चुके थे। दोनों बाल-बन्धु थे, एक ही गुरु के शिष्य। पं० त्रिलोकनाथझा ने पूरे आश्वासन के साथ अपने बाल-सखा को विदा किया था।

अतः पं० धरणीधर अपनी मनोरथ की माला गूँथते नारियल, पान, सुपारी और दो रुपये के साथ पाँच बजे शाम को उस भरे दरबार में उपस्थित हुए। रूपा अपना मुजरा खत्म करके अभी बैठी ही थी। अब पण्डित जी का मुजरा शुरू हुआ।

पण्डित जी पण्डिताऊ ढङ्ग से धोती पहने थे। बदन में

घुटनों के नीचे तक बाबा आदम के वक्त की एक अचकन लटक रही थी और तिस पर से गले से लिपटा हुआ एक मैला दुपट्टा। शिर पर पुराने ढङ्ग की पगड़ी और ललाट पर भस्म का तिन-धरिया तिलक।

उन्होंने पहले एक प्राचीन श्लोक पढ़कर राजा साहेब के सामने नारियल, पान, सुपारी और अतिकष्ट-सञ्चित दो रुपये का नजराना पेश कर दिया। राजा साहेब ने उसे हाथ से छू दिया, अर्थात् पण्डित जी का नजराना स्वीकार कर लिया गया। फिर पण्डित जी ने अपने गर्दभ स्वर को जरा और सुरीला बनाकर अति परिश्रम से अपने विरचित पद्यों को विशेष भाव-भंगी के साथ पढ़ना आरम्भ किया। शान्त सभा सजीव हो उठी! सबसे पहले रूपा के चेहरे पर मुस्कान की गहरी रेखा खिंचने लगी और उसकी नकल करने में रसिक जनों में होड़-सी लग गयी और अन्त में वह नीरव मुस्कान सरव हो उठी। किन्तु पण्डित जी फिर भी तन्मय होकर पद्य-पाठ करते रहे।

उनके पद्य-पाठ समाप्त होने से पहले ही राजा साहेब ने पुरस्कार देने का निर्णय कर लिया। आँख का इशारा हुआ। उसी क्षण पीछे से आकर एक भेंड़े ने पण्डित जी की चूतड़ पर अपने शृंगिल शिर का टक्कर दे मारा। पण्डित जी मुँह के बल गिर पड़े। सम्भल कर उठे। भेंड़े ने फिर टक्कर मारी और फिर गिरे। यह गिरने और उठने का क्रम तीन-चार मिनट तक जारी रहा। भेंड़े के गले में लोहे की पतली सी जंजीर बंधी थी। राजा

का नौकर उस जंजीर को पकड़े था। ऐसा अभिनय कर रहा था मानो वह भागते हुए भेंड़े को सम्हाल नहीं पा रहा।

सारी सभा हँसी के कहकहे से गूँज रही थी। राजा साहब को खूब मजा आ रहा था। राजा-सहित सारी प्रजा इस अनोखे मनोरञ्जन में लवलीन थी। सभा के किसी कोने में आज सुमन भी बैठा था। इस दृश्य को देख खून उसका खौल उठा! तीर की तरह दौड़कर राजा राघवेन्द्रजू के सिंहासन के निकट पहुँच ही तो गया और उन मनोरञ्जन-विभोर राजा साहेब के मुख पर कसकर एक मुक्का जमा ही तो दिया। एक ही मुक्के में राजा साहेब को नानी याद आ गयी! अर्ध-मूर्छित होकर मुँह के बल नीचे लुढ़क पड़े। सम्हलने से पहले ही उनकी पीठ पर सुमन ने फिर कसकर एक लात जमा दी; और पलक मारते वहाँ से नौ-दो-ग्यारह!

सभा में हलचल मच गयी। लहमे भर में सारी घटना घट गयी! राजा साहेब को अपनी मूर्खता और नीचता का ऐसा करारा दण्ड कभी नहीं मिला था। मिलने की सम्भावना भी न थी। राजा जो ठहरे! समरथ को नहिं दोष गुसाईं। राजा साहेब को होश आया, किन्तु मुँह पर उनके कालिख पुत चुकी थी। अपनी प्रजा की भरी सभा में ऐसा अपमान! सो भी एक अपनी ही प्रजा के द्वारा! ऐसी अनहोनी घटना! सभी आश्चर्य-चकित थे, भयभीत थे!

इधर हरिनाथ बाबू की तो कुछ पूछिये मत। उन्हें तो सारी दुनिया दिखायी देने लगी, सारा आकाश-पाताल दिखायी देने

लगा। नीचे से धरती खिसकने लगी, शिर चकराने लगा। दौड़-कर बेचारे राजा साहेब के चरणों पर गिर पड़े। रो-रोकर, गिड़-गिड़ाकर क्षमा की भीख माँगने लगे। राजा साहेब या सभा में बैठे बहुतेरों को पता भी न चला कि हमला करने वाला कौन था, किन्तु हरिनाथ बाबू अपना अपराध आप ही प्रगट कर रहे थे। कह रहे थे—"वह पागल है सरकार! जेल में उसका माथा खराब हो गया सरकार! माफ कर दीजिये सरकार! हुजूर का लड़का है सरकार!" और अपने हाथ के दोनों अँगूठे में जनेऊ लपेट कर राजा के सामने एक टाँग पर खड़े हो गये।

राजा साहेब की अक्ल ठिकाने आ गयी थी। उन्होंने इस बात को बढ़ाना ठीक नहीं समझा। इसमें उन्हें अपनी ही तौहीनी दीख रही थी और हरिनाथ झा की दीनतापूर्ण गिड़गिड़ाहट ने उनके अपमान की कालिमा को बहुत कुछ धो भी डाला था। अतः राजा साहेब बड़े ही चतुरतापूर्ण स्वर में बोले—"देखो हरिनाथ, तुम मेरे बड़े खैरख्वाह रैयत हो। इसलिये तुम्हारे लड़के का यह पहला कसूर माफ किया जाता है। लेकिन, अगर पागल है तो उसके पैरों में बेड़ी डाल दो। यह तो अपने घर की बात थी, नहीं इस बुढ़ापे में तुम्हें जेल की चक्की पीसनी पड़ेगी, या फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ेगा।"

हरिनाथ बाबू को अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था! उन्हें कतई आशा न थी कि राजा साहेब इतनी जल्दी और इतनी आसानी से माफ कर देंगे। राजा साहेब की

उदारता और दयालुता पर वे मुग्ध हो गये। सारी सभा मुग्ध हो गयी। हरिनाथ चट उनके चरणों को बारम्बार छूने और बिचली तीन अँगुलियों को अपने शिर, आँख, नाक और मुँह से लगाने लगे। उनका यह अभिनय देख स्वयं राजा साहेब के ओठों पर मुस्कान दौड़ गई।

इस प्रकार राजभक्त जेठ-रैयत बूढ़े हरिनाथ को अपने प्रजा-वत्सल राजा से माफी मिल गयी। किन्तु यह इतनी सस्ती और आसान माफी गाँव के दूसरे धनियों को पसन्द न आयी। वे तो मन-ही-मन खुश हो रहे थे कि हरिनाथ का सर्वनाश अब करीब है। किन्तु राजा ने एकाएक उनकी आशा पर पानी फेर दिया।

रात के नौ बजे हरिनाथ और भुवन घर पर आये। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो उनका पुनर्जन्म हुआ हो। किन्तु सुमन के प्रति हृदय उनका जल रहा था। इस दुर्घटना की खबर सारे गाँव में बिजली की तरह फैल गयी। काना-फूसी शुरू हो गयी। अपने सपूत की करतूत पर आज सुमन की माँ भी क्रोध में जल रही थीं। मन-ही-मन प्रसन्नता केवल सुमन की बड़ी बहन पार्वती को थी।

हरिनाथ और भुवन—दोनों पिता-पुत्र घर पर पहुँचते ही भूखे भेड़िये की भाँति सुमन पर टूट पड़े। सुमन अपने सुनसान कमरे में बैठा था। शायद किन्हीं विचारों में लीन था। एकाएक उसकी पीठ पर लात, मुक्के और जूते की वर्षा होने लगी, लेकिन उसने चूँ तक न किया। अटल गिरि-शिखर की भाँति इन सारे आघातों

को सहता रहा और अब साथ साथ वाणी की वृष्टि भी शुरू हुई, बारिश के साथ ओले की तरह। पिता-पुत्र के मुख से एक साथ कड़कती आवाजें निकलने लगीं—

"निकल हरामजादे घर से ! बेईमान ! साले ! राजा साहब को पीटकर शान के साथ कोठो में बैठे हैं ! बगुला भगत की तरह ! बड़े परोपकारी बनने चले हैं। उस दिन भरी पंचायत में इस हरामजादे ने हमारी इज्जत ले ली। नाक में कौड़ी बाँध दी। भाग साले ! निकल साले घर से !"—और फिर लात, घूसे और थपेड़ों की वारिस शुरू हो गयी। भुवन अपने जी का मलाल जी-भर कर निकाल रहा था। हरिनाथ बाबू दिन-दिन के इकट्ठे क्रोध को एक साथ झाड़ रहे थे।

यह सारा अन्याय-अत्याचार अब सुमन की माँ से न देखा गया। वे सह न सकीं। चिंग्घाड़ मार कर रो पड़ीं—"अरे मेरे बच्चे को मार डाला रे !"—और चीखकर मूर्छित हो धड़ाम से नीचे गिर पड़ीं।

पार्वती की आँखों से आँसू के बदले अंगारे बरसने लगे। वह बिजली की भाँति कड़कती हुई भुवन की ओर बढ़ी—"नीच ! बेशरम ! सुमन पर हाथ छोड़ने से पहले तुम लोग चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरे ? अभागे ! तुम से तो पशु लाख दर्जे अच्छे हैं। भरी सभा में एक विद्वान् ब्राह्मण पर अत्याचार हो रहा था, और तुम लोग सारी लाज-शरम धोकर, मनुष्यता को तिलाञ्जलि देकर हँसी के कहकहे उड़ा रहे थे !"—कहकर झट

भूमि पर पड़ी अपनी मूर्छिता माँ की ओर बढ़ी, और बैठकर उनके निःसंज्ञ मस्तक को उठा के गोद में रख लिया।

पार्वती की धिक्कारभरी फटकार और माँ की मूर्छा ने भुवन और हरिनाथ को एकाएक ठंडा कर दिया। मूर्छा का उपचार होने लगा। मुख पर पानी के छींटे डाले गये, नाक दबायी गयी, किंतु सब व्यर्थ! मूर्छा क्षणिकत्व को पार कर शाश्वत-भाव को प्राप्त हो चुकी थी। माँ के प्राण, तंग परिधि से निकल कर अनन्त में विलीन हो चुके थे!

रोना-धोना शुरू हो गया। मार-पीट की आवाज सुनकर पड़ोसियों की भीड़ पहले से ही जम चुकी थी कलह शान्त हो गया था। मृत्यु ने उस पर विजय प्राप्त कर ली थी। हरिनाथ रो रहे थे, भुवन रो रहा था, पार्वती रो रही थी, सारा घर रो रहा था, किन्तु सुमन तब भी निर्वाक्, निस्तब्ध और निश्चल भाव से बैठा इस मर्मंतुद दृश्य को देख रहा था!

अरथी सजायी गयी। श्मशान को चली, जहाँ हर मानव को एक दिन जाना होता है। अरथी के साथ सारा गाँव उमड़ पड़ा था। गाँव के सब से बड़े धनी हरिनाथ झा की धर्मपत्नी की अरथी जो थी। भुवन ज्येष्ठ पुत्र था। अतः दाह-क्रिया की आरम्भिक विधि उसे ही पूरी करनी पड़ी। अमावस की रात थी! गहन निशीथ की अंधेरी गोद चिता की निर्धूम लपटों में आलोकित हो उठी। उस जन-समुद्र में सब का चेहरा स्पष्ट दीखने लगा।

जलती चिता से कुछ दूर पर सुमन बैठा था। अपलक आँखों

से उठती लपटों को वह देख रहा था। चेहरे पर विचारों के चढ़ाव-उतार स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे। किन्तु आँखों में आँसू न थे। आँसू के चिन्ह भी न थे।

घंटे-डेढ़-घंटे में उस भौतिक शरीर को जलाकर चिता शांत हुई। पुनः अपनी सारी भयानकता लिये अमावस का निशीथ झाँकने लगा। सब ने स्नान किया। मृतात्मा के उद्देश से जलांजलि दी। घर लौटे। लेकिन घर आने पर हरिनाथ बाबू ने देखा कि सुमन वापस नहीं आया। हाँ, चलते समय लोगों ने चिता की प्रदक्षिणा करते उसे अवश्य देखा था। हरिनाथ बाबू घबड़ा गये। उसी वक्त उसकी खोज में लालटेन के साथ कई आदमियों को श्मशान की ओर और जहाँ-तहाँ भेजा भी, किन्तु सुमन का किसी को पता न चला।

: ६ :

बस्ती से पूरब आध मील पर एक देवी का स्थान है। नंदबाड़ा और हरिहरपुर इन दो गाँवों की सीमा यहीं पर मिलती है। अतः इस देवी पर दोनों गाँवों का समान रूप से अधिकार है। देवी का नाम घोड़ही देवी है। कहते हैं लोग अक्सर रात को देवी के घोड़े को देवी-स्थान के आस-पास के खेतों में चरते हुए देखते हैं। हर अमावस की ठीक आधी रात को देवी अपने घोड़े पर सवार हो हाथ में जलता खप्पर लेकर निकलती है, और क्रमशः सपही देवी, गदही देवी और चमर देवी को साथ ले हरिहरपुर से पश्चिम तीन मील पर बहती पुण्यतोया कमला में जा के नहाती हैं और पुनः तीन बजे रात तक अपनी जगह वापस आ जाती हैं। गाँव के बड़े-बूढ़ों के मुख से बड़ी अदा और छटा के साथ इसका सजीव वर्णन आप सुन सकते हैं।

उस रात गाँव की भरी पंचायत में अपमानित और लांछित होकर गौरी इसी देवी के स्थान पर आकर रुकी। उस समय वह बिल्कुल अपने आपे में नहीं थी। समाज के क्रूर अपमान से आहत होकर चेतना उसकी लुप्त हो चुकी थी। देवी-देवता, भूत-प्रेत, चोर-डाकू किसी का भी भय उसे नहीं हो रहा था। किंतु यह दशा उसकी देर तक नहीं रही। क्रोध और क्षोभ का आवेग कम

हुआ। वह क्रमशः प्रकृतिस्थ होने लगी। अब उसने समझा कि वह देवी के स्थान में है। यहीं पर उसके गाँव की सीमा समाप्त होगी! और वह सदा के लिये अपनी जन्म-धरती की गोद से अलग-हो जायगी! सोचते ही उसकी छाती धकड़ने लगी। दिल में सहसा ममता और करुणा का तूफान उठ गया!

गौरी बाल-विधवा थी। ससुराल का मुँह उसने कभी देखा न था। अतः ससुराल के लिये लड़कियों की प्रथम विदा के वक्त का विलाप उसे बनावटी प्रतीत होता। वह जब-तब इसकी मखौल भी उड़ाती। किंतु आज समाज से बहिष्कृता, तिरस्कृता और लांछिता गौरी उस मर्मन्तुद विलाप की वास्तविकता को अपने सामने साकार खड़ी देख रही थी। वह कितनी बड़ी भूल थी उसकी! समाज ने उसे सदा के लिये जननी-जन्मभूमि की गोद से बड़ी क्रूरता के साथ उठाकर फेंक दिया है यह याद आते ही हृदय उसका शतशः विच्छिन्न होने लगा। वेदना के उमड़ते आँसुओं को वह रोक न सकी। उफनती रुलाई के आवेग को वह दबा न सकी। फफक-फफक कर रोने लगी।

उसके उस रुदन का साक्षी आज भी देवी-मण्डप का विशाल पीपल-वृक्ष मौजूद है, और उस रात को उस पथ से गुजरने वाले नंदवाड़ा के दो राही भी, जो उसकी रुलाई को चुड़ैल का विलाप समझ कर मारे डर के वहीं बेहोश होकर गिर पड़े थे।

हृदय की घनीभूत ग्लानि आँसू बनकर बहुत कुछ निकल गयी। गौरी का दिल अब कुछ हल्का हुआ। गाँव का दरवाजा उसके

लिये बंद हो चुका था ! बड़ी व्यथा के साथ गले में आँचल डाल, दोनों हाथ जोड़कर ग्राम और ग्राम-देवी को नमस्कार कर रेलवे-स्टेशन की ओर वह चल पड़ी। अपने नौ-मासे गर्भ का बोझ वहन करती दो घंटे में वह स्टेशन पहुँची। रास्ते भर वह यही सोचती जा रही थी कि कहाँ जाय, क्या करे ? अपनी परिस्थिति की भयानकता याद आते ही आँखों से अश्रु की पुनः वृष्टि होने लगती। जब वह रेलवे लाइन पकड़ कर स्टेशन की ओर धीरे-धीरे जा रही थी, उसके मनमें बार बार यह विचार आने लगा कि क्यों न वह रेल की पटरी पर लेट जाय ? क्यों न गाड़ी के पहियों के नीचे इस लाञ्छित जीवन-लीला का अन्त कर दे ? किन्तु हाय रे मानवजीवन ! जीने का बहाना तू ढूँढ़ ही तो लेता है ! चाहे तू किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो ! कथा-पुराण में गौरी सुन चुकी थी कि आत्म-हत्या से नरक मिलता है ! बेचारी डर गयी ! आत्म-हत्या का विचार उसे स्थगित करना पड़ा।

हृदय उसका नाना विचारों की लहरों पर डूबता और उतराता रहा। अचानक आशा की एक धुँधली रेखा उसे दिखाई दी, और वह उत्तरोत्तर सीधी और साफ होने लगी। अशरण-शरण विश्वनाथ की नगरी काशी उसे याद आ गयी। 'यस्य क्वापि गतिर्नास्ति तस्य वाराणसी गतिः'।

अपने मामा के गाँव की मनभरन दादी उसे याद आ गयीं। वे दूर के रिश्ते में गौरी की नानी लगती थीं। पिछले साल गौरी मामा के घर गयी थी। तब मनभरन दादी भी अपने बारहमासी

काशी-वास को त्याग कर कुछ दिन के लिये अपने गाँव रामनगर आयी थीं। वहीं पर गौरी से उनकी प्रथम देखादेखी हुई थी। गौरी के शील-स्वभाव और सबसे अधिक उसके रूप को देखकर वे रीझ गयी थीं। उन्हें यह भी पता चल गया था कि गौरी के घर की हालत आंजकल बड़ी खराब है। दो जून खाना भी नहीं जुटता।

उस समय दादी ने गौरी से कहा था—"बिटिया, चलो काशी। जनम तर जायगा। गङ्गा स्नान, विश्वनाथ-अन्नपूर्णा का दर्शन! खाने-कपड़े का टोटा नहीं। दड़िभङ्गा (दरभङ्गा) की महारानी खर्चा देती हैं। और भी बहुतेरे दाता हैं। जबतक जिओ सुख से जिओ, और मरने पर सीधे शिव की पुरी कैलाश!"

गौरी का दिल ललक उठा था। किन्तु माँ-बाप के मोह और धन्ना चाची के जाल में फँस जाने के कारण वह जा न सकी थी। लेकिन अब डूबते को तिनके का सहारा! गौरी निराशा के सागर में डूब रही थी। मनभरन दादी की उन बातों से इस समय उसे बड़ा बल मिला। एक नयी आशा और विश्वास से हृदय उसका भर उठा। काशी-वास, गङ्गा-स्नान, विश्वनाथ-अन्नपूर्णा का नित्य दर्शन! इतने बड़े सौभाग्य को इस दशा में वह क्योंकर ठुकराये? लेकिन सबसे बड़ी बला थी उसका पेट। इसका वह क्या करेगी? कैसे इस भरे पेट को लेकर अपने समाज की विधवाओं में वह उठेगी और बैठेगी? इस पापीयसी विधवा को कोई क्योंकर खर्चा देगा? क्योंकर आश्रय देगा? इस प्रकार की आशङ्काओं से वह भयभीत भी हो रही थी। किन्तु अन्त में छाती मजबूत करके उसने निर्णय किया—'चलो देखा जायगा। जब ओखल में शिर रखा है तो मूसल की चोट से डरना क्या?'

: १० :

"क्या यही वह स्थान है जिसके बारे में अखबारों में मैं इतना पढ़ा करता था ? क्या यही वह प्रतिष्ठान है जिसके सम्बन्ध में मेरी धारणा इतनी ऊँची थी ? क्या यही वह संस्थान है जो विश्व-संस्कृति का केन्द्र होने का दावा करता है ? क्या उस विश्व-विश्रुत महामानव का यही वह आवास है जहाँ एक अनाथ को वास न मिल सका ?"

कलकत्ते की भागीरथी के तट पर बैठा एक सत्रहसाला नव-युवा अपने-आप से इस प्रकार के अनेक प्रश्न पूछ रहा था। परन्तु ठीक उत्तर उसे नहीं मिल रहा था। उसके चेहरे को देख कोई भी बड़ी आसानी से आँक सकता था कि वह कम से कम दो दिन का भूखा अवश्य है। उस भूखे मुरझाये चेहरे पर भी सुंद-रता और उच्चाशयता के चिह्न मौजूद थे।

यह नवयुवा सुमनचन्द्र के सिवा और कोई नहीं। हाँ, यह सुमनचन्द्र ही था, वही विशालचेता सुमन जो उस दिन अमावस के गहरे निशीथ में अपनी जननी की जलती चिता की प्रदक्षिणा कर मन-ही-मन जन्मभूमि से भी बिदा ले अन्त की ओर प्रस्थान कर चुका था। अपने घरवालों द्वारा पता लगा कर पकड़े जाने के भय से सुमनचन्द्र अब नरेन्द्रनाथ बन चुका था।

देवघर स्टेशन पर उतरते ही पंडों ने उसे घेर लिया। उधर से दो तीन काले कलूटे संथाल पैरों में नूपुर पहने ढोल बजाते सुमन के सामने थेई थेई कर नाचने लगे, और रह रह कर अपना एकताला ध्रुपद दुहराने लगे — 'झाड़ीखंड में बिराजे बैजूनाथ'—और फिर हाथ पसार कर पैसा माँगने लगे। उधर से महेश पंडा उन संथालों को 'भाग रे हरामजादे ! बाबू जी को ज्यादा तंग न कर।' — कहकर फटकारते हुए स्वयं आगे बढ़ा ; और नरेंद्र से बोला—"कहां घर है बाबू साहेब ?"

नरेंद्र ने इस प्रश्न पर कोई ध्यान न देकर उन संथालों को दो चार पैसे देकर विदा किया और स्वयं आगे बढ़ा।

महेश पंडा यों ही हार मानने वाला जीव नहीं था। झट नरेंद्र को आगे से घेर कर हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए बोला– "बाबू साहेब का घर कहां है ?"

नरेंद्र ने उदासीनता से जवाब दिया —"कहीं नहीं।"

महेश पंडा तब भी जिद करते हुए बोला—"चलिये बाबू साहेब। बाबा का दर्शन करा दूं। जो मर्जी हो दे देना।"

दूसरी तरफ से सुखलाल पंडा लपका हुआ पहुंचा, और कड़क कर बोला—"क्यों रे महेशा ! फिर तू हमारे जजमान को फुटाने लगा ?" फिर नरेंद्र की ओर मुड़ कर वह बोला — "आइये बाबू साहेब ! मैं आपका पंडा हूँ। चलिये, बाबा का दर्शन करा दूं।"

नरेंद्र इन पंडों के झमेले में नहीं पड़ना चाहता था। झुंझला कर बोला—"भई, मेरा पंडा कोई नहीं। तुम लोग जाते जाओ।"

पर जाता कौन है ? महेश फिर नरेंद्र का रास्ता रोक कर खड़ा हो गया, और गिड़गिड़ाते हुए बोला–"बाबू साहेब ! दर्शन

तो आप करेंगे ही ! फिर पहले मैं ने आप को रोका है। इसलिये मेरे जजमान हुए।"

नरेंद्र ने उसी प्रकार झुंझला कर जवाब दिया—"भाई, दान-दक्षिणा के लिये मेरे पास पैसे नहीं। मेरा पिंड छोड़ो।"

इस पर सुखलाल महेश को धक्का देते हुए बोला—"हट रे ! बाबू साहेब को तंग करता है !" और स्वयं नरेंद्र से बोला—"चलिये बाबू साहेब आप मेरे जजमान हैं।"

धक्का खा कर महेश पंडा अग्निशर्मा बन गया। वह भी अखाड़ों में जाकर मिट्टी लगाया करता। एक धक्के के बदले उसने सुखलाल को दो घूंसे लगाये, और दोनों में महाभारत मच गया। दोनों को लड़ता छोड़ नरेंद्र वहाँ से खिसक गया। अपने पंडे द्वारा पहचाने जाने के भय से बाबा वैद्यनाथ के दर्शन तक न करके वह सीधे अरुणाचल की ओर चल पड़ा।

देवघर से दसेक मील उत्तर हट कर अरुणाचल की उपत्यका में बड़ी प्रसिद्ध संस्था बसी थी। शायद अब भी बसी हुई हो। उसका नाम था उन दिनों विश्व-संस्कृति-सदन ! भारत के एक ख्यातनामा, दार्शनिक और महात्मा ने इस संस्था की नींव डाली थी। १०-१२ वर्ग मील में तो इस की परिधि थी। उस प्रान्त के एक बड़े जमीनदार ने महात्मा जी के व्यक्तित्व और शुभ उद्देश्य से प्रभावित होकर इतना बड़ा भूखंड इस संस्था के नाम दान कर दिया था। कहते हैं इस संस्था के बसाने में चार पांच गाँव उजाड़े गये थे। महात्मा जी एक अक्राँतदर्शी महामानव थे ; सदा स्वप्नों के संसार में विचरने वाले। अपने विचारों के आधार पर एक नयी संस्कृति और

मूर्त रूप देने के लिये ही इस संस्था की उन्होंने स्थापना की।

महात्मा जी की इस संस्था के विज्ञापन में अखबारों ने जी खोल कर मदद की। महात्मा जी स्वयं सारे विश्व का परिभ्रमण कर चुके थे। उनकी लिखी पुस्तकें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। देश विदेश सर्वत्र उनके नाम की धूम थी। इस संस्कृति-सदन के ज्ञानालोक से सैंकड़ों छात्र-छात्राएँ वहाँ रहकर अपने अज्ञान-तिमिर का नाश कर रहे थे। अध्ययन से अपने को कृतकृत्य कर रहे थे। सुमन भी पत्र-पत्रिकाओं में इस सदन के विज्ञापन, इसके संबन्ध में लम्बे चौड़े लेख पढ़ा करता। उसका हृदय भी उस आदर्श संस्था में प्रवेश पाने के लिये लालायित हो उठता। पर बेचारा करे क्या? था परतन्त्र। माँ बाप उतनी दूर जाने की अनुमति क्यों देने लगे। लेकिन अब वह निर्द्वन्द्व हो चुका था। घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार सब से विरक्ति हो चुकी थी। अब सीधे इस संस्था में प्रविष्ट हो अपने जीवन को सार्थक बनाने का संकल्प उसने कर लिया था।

जिस समय सुमन संस्कृति-सदन में पहुंचा, संध्या का समय था। पूछता पाछता सीधे महात्मा जी की कुटिया पर जा पहुंचा। कुटिया का नाम था रमन्ती। आधुनिक ढंग की थी। आधुनिक साज-सामान से सजी थी। प्राच्य, पाश्चात्य, उदीच्य और दाक्षिणात्य, अर्थात् विश्व की समस्त कलाओं का यह कुटिया मानो संगम- निकुञ्ज थी। और विश्व कला के आधार पर ही इस नन्हीं सलोनी कुटिया का निर्माण हुआ था। इस के एक कमरे का नाम विचार-कुञ्ज, एक का आचार-कुञ्ज, एक का प्रचार-कुञ्ज और एक का कला-कुञ्ज था। कुटिया के सामने एक विशाल बारहदरी भी खड़ी थी जो लता-निकुञ्जों से घिरी थी।

इसका नाम था महोपस्थानिका। यहां प्रति सन्ध्या को संस्कृति-सदन के छात्र छात्राएं तथा अध्यापक वृन्द एकत्र होते। मध्य में बनी वेदिका पर महात्मा जी स्वयं विराजते और उन्हें तीन ओर से घेर लेते दूसरे लोग। महात्मा जी स्वयं सिद्धासन लगाये अपनी नाक की नोक को एकाग्रभाव से देखते हुए बैठे रहते। संस्कृति-सदन के प्रधानाचार्य उस अगम अगोचर मंगलमय जगदीश्वर के उद्देश्य से प्रार्थना प्रारम्भ करते और एकाएक सारी मण्डली के समवेत स्वर से महोपस्थानिका ध्वनित और प्रतिध्वनित हो उठती। पन्द्रह मिनट तक यह क्रम जारी रहता। इस सामूहिक प्रार्थना के समाप्त होने के पूर्व क्षण में उस कलाकुञ्ज से नूपुरों की झंकार के साथ सुरीली स्वरों का एक मनोहर समारम्भ सुनाई पड़ता और दूसरे ही क्षण एक दर्जन सुकुमारियां हाथों में आरती लिये अनुबद्ध पदविन्यास के साथ वहाँ आ पहुंचतीं, जहाँ महात्मा जी नासाग्र-समाधि में लीन हो बैठे रहते। और आते ही मध्य-वेदिका की प्रदक्षिणा करती वे थिरकने लगतीं, महात्मा जी की आरती उतारने लगतीं, और अपने कोकिल-विनिंदित स्वर में भाव-भरित पदों से रस की सरिता बहाने लगतीं। देखते ही देखते सारी मण्डली उस रस-सरिता में डूबने और उतराने लगती। आध घण्टे तक नृत्य-गीत का यह समारंभ चलता रहकर एकाएक समाप्त हो जाता। फिर एक-एक कर सभी महात्माजी को नमस्कार कर अपने अपने निवास को जाते। यही था उस विश्व-संस्कृति-सदन की दैनिक महोपस्थानिका का क्रम।

सुमन भी इस महोपस्थानिका में शामिल हुआ। औरों ने जैसा किया उसने भी किया। सब के चले जाने पर उसने महात्मा जी से मिलने की चेष्टा की, किन्तु सफल न हो सका।

नवागंतुकों से मिलने का उनका वह समय नहीं था। बेचारा बच्चा ही तो था! कभी घर से निकला नहीं था। सभ्यता के संस्पर्श से बहुत दूर था। बड़े असमंजस में पड़ा–कहां जाय, क्या करे? किसी से पूछ कर अतिथिशाला में पहुंचा। अतिथिशाला पहले से ही भरी पड़ी थी। और उस में वह रहने देने के योग्य था भी तो नहीं। इधर-उधर भटक रहा था। इतने में उस रास्ते से एक सज्जन को जाते देख सुमन ने बड़े विनय से पूछा–"महाशयजी! कहीं रात भर ठहरने की जगह मिलेगी?"

सज्जन ने मुड़कर एक बार सुमन को ऊपर से नीचे तक निहारने के बाद पूछा–"कौन हो? कैसे आये? कहाँ से आये?"

सुमन–"ब्राह्मण हूँ पढ़ने के विचार से आया हूँ।"

सज्जन ने और कुछ न पूछ कर दयापूर्ण स्वर में कहा–"तो चलो मेरे पास। रात में वहीं टिक जाना।"

सुमन चुप चाप उनके पीछे चला। उनका नाम था पं० लंबोदर मिश्र। संस्कृति सदन के संस्कृताध्यापक थे। बासे पर पहुंचते ही उन्हों ने सुमन से पूछा–"तुम्हारा नाम क्या है?"

सुमन ने जवाब दिया—"नरेन्द्र नाथ।"

"अहा! नाम तो बड़ा अच्छा है!" फिर अपने बासे के एक कोने में पड़ी चारपाई की ओर संकेत करते हुए पंडित जी बोले–"अच्छा भाई नरेन! तुम्हारे सोने की जगह वह है। उस पर मेरी दरी बिछा लेना! और जाओ, पाकशाला में जाके भोजन कर लो। कह देना, पंडित जी के मेहमान हैं। बगैर किसी के मेहमान बने वे खाना नहीं देते। पैसे जो माँगें दे देना।"

इस प्रकार मेहमान बन कर तीन दिन तक सुमन संस्कृति-सदन की पाकशाला में खाता रहा। मेहमानों से खाने का चार्ज

दूना था। अतः तीन दिन में ही सुमन का दिवाला निकल गया। पास में सिर्फ चार आने के पैसे उसके बच रहे। उसे पता चल गया कि इस संस्कृति-सदन में बिन पैसे वालों का क्षण भर भी गुज़ारा नहीं। मुरझाये मन से पंडित जी के बासे पर बैठा सोच रहा था क्या करे, कहां जाय ? पंडित जी पढ़ा कर आये। नित्य की भांति आज भी उन्हों ने जिज्ञासा की—"कहो नरेन बाबू, हुआ कुछ इंतज़ाम ?"

नरेन्द्र ने निराशा भरे स्वर में जवाब दिया—"नहीं पंडित जी ! गरीबों के लिये यहां जगह नहीं।"

पंडित जी ज़रा हंस कर बोले—"संसार में गरीबों के लिये जगह है ही कहां भाई ?"

नरेन्द्र कुछेक क्षण चुप रह कर बोला—"मुझे संसार का क्या पता पंडित जी ! पहले पहल तो घर से निकला हूँ। लेकिन मूंड-मुंडाते ओले पड़े। संस्कृति-सदन की बड़ी तारीफ सुनी थी। आप के महात्मा जी की लिखी कई किताबें भी पढ़ चुका हूँ। बड़ी आशा और आस्था से यहाँ आया था। लेकिन अब भ्रम-भंग हो गया। इस कहावत पर विश्वास हो गया कि "दूर का ढोल सुहावना।"

नरेन्द्र की बात पर पंडित जी मुस्कुराये। मुस्कुराते हुए बोले—"बिना कष्ट उठाये, धोखा खाये कोई बुद्धिमान नहीं बनता, नरेन बाबू।" फिर पंडित जी नरेन्द्र के बिल्कुल निकट आकर बैठ गये और चुपके से बोले—"मगर यह बात किसी से कहना मत नरेन बाबू ! नहीं तो मेरी खैर नहीं। जीविका से हाथ धोना पड़ेगा।"

नरेन्द्र ने कहा—"मुझे किसी से कहने की क्या गरज पड़ी है पंडित जी ! मैं तो अभी यहाँ से जाने को सोच रहा हूँ।"

पंडित जी धीरे धीरे गर्दन हिलाते, आंख मुँह चमकाते हुए बोले—"हां हां, जाना तो चाहिये ही। मगर आज मेरे यहां भोजन करके तब जाना। क्या करूं भाई? स्वयं हाथ जलाना पड़ता है। एक ही शाम बनाता हूँ, मगर सब दशा हो जाती है। रसोई का काम तो स्त्रियों से ही सम्हलता है।

"सपरिवार क्यों नहीं रहते? या किच्चन (पाकशाला) में क्यों नहीं खाते?"

"क्या करूं भाई! परिवार भारी है। दस आदमी खाने वाले हैं। वेतन थोड़ा है। कुल पैंतीस पाता हूँ। और यदि किच्चन में खाऊं दिवाला निकल जाय। अपने हाथ से बनाता हूँ पाँच छे में गुजारा हो जाता है। और किच्चन में देने पड़ेंगे बीस। इसके अतिरिक्त वहां का भोजन भी तो हम लोगों के लायक नहीं होता। मुर्गा-मुर्गी का मांस, अंडा, और न जाने क्या क्या..... बड़ी घृणा लगती है।"

क्षण भर रुक कर फिर पण्डित जी आहिस्ते से बोले—"यह विश्व-संस्कृति-सदन नहीं, यह तो विश्व-आवारा-सदन है भाई! देखते नहीं यहाँ के छात्र छात्राओं को? सब तितली तितली हैं। न लज्जा, न संकोच। न खाने का ठिकाना, न पीने का ठिकाना। अमीरों के बच्चे हैं। घर से मुंह मांगा खर्च मिलता है खूब मौज उड़ाते हैं। अरे भाई, अध्यापकों के वेतन से तो इन विद्यार्थियों का मासिक खर्च कहीं अधिक है।"

"लेकिन यहां अंग्रेजी पढ़े लिखों का वेतन तो बहुत ज्यादा है, फिर आप क्यों पैंतीस पाते हैं?"

"संस्कृत के विद्वान के लिये यह लोग इतना भी अधिक समझते हैं भाई! इस में से भी कम करने की ताक में हैं।"

"क्यों, ? कम करने की ताक में क्यों हैं? आप भी तो अचार्य हैं! जैसा एम. ए. वैसा अचार्य!"

"आचार्य अपने घर की चीज़ हुई, एम. ए. विदेशी चीज़ हुई। अपने घर की चीज़ की वैसी इज्जत नहीं न होती नरेन बाबू।"

"लेकिन आपके महात्मा जी तो इतने बड़े विचारक और विद्वान हैं, अपने देश की संस्कृति और सभ्यता के महान पुजारी हैं। फिर इनके यहाँ यह भेद-भाव कैसा ?"

पंडित जी सूखी हंसी हंस कर बोले—"अभी बच्चे हो तुम ! अभी तुमने दुनिया नहीं देखी। अरे भाई, विचारक और विद्वान विचार और विद्या के क्षेत्र में विचरते समय कुछ और ही रहता है, और व्यवहार-जगत में पैर रखते ही कुछ और। वह महान विचारक, वह महान विद्वान, संस्कृति और सभ्यता का महान पुजारी एक निरा बाजारू बन कर तुम्हारे सामने आयेगा और अपनी बाजारू आंखों से ही तुम्हारा मूल्य आँकेगा। पर उस समय वह अपने बाजारू व्यवहार पर घना पर्दा डालने की चेष्टा करता रहेगा। चूंकि आज बाजार में स्वदेशी वस्तुओं का मूल्य विदेशी वस्तुओं के मुकाबले में कम है, और बहुत कम है, अतः हम स्वदेशी विद्या के विद्वानों की कीमत विदेशी विद्या के विद्वानों की तुलना में कम होनी ही चाहिये। इस में आश्चर्य की बात क्या है ?"

"तो फिर इस विश्व-संस्कृति-सदन में और अन्य बाजारू संस्थाओं में अन्तर क्या रहा ?"

"अन्तर वंतर कुछ नहीं, अन्तर केवल साईन बोर्ड का है।"

"इसके मानी ?"

"मानी यही कि अपने बाजारूपन पर सभ्यता और संस्कृति के नाम का मोहक मुलम्मा चढ़ा कर अन्य बाजारू संस्थाओं से अपना भेद दिखाने की चतुर चेष्टा की जाती है।"

"तो क्या यह सब कुछ दिखावा ही दिखावा है ? भीतर और बाहर का कोई मेल नहीं ?"

"हाथी के दाँत खाने के और व दिखाने के और होते हैं !"

"तो सब कुछ पाखंड ही है ?"

"रहना ही चाहिये ! जहां बड़प्पन है वहां पाखंड भी है। बगैर पाखंड के बड़प्पन कैसा ? मन, वचन और व्यवहार में समन्वय न होना ही पाखंड है, और जिन में इन सबका समन्वय है उन्हें मूर्ख कहते हैं। मूर्ख कभी बड़ा बन नहीं सकता।"

पंडित जीआवेश में आ कर चुपके से बोलने लगे-"तुम भी तो इस संस्कृति सदन में तीन दिन बिता चुके हो, बहुत सी बातें देख चुके हो ! दर्जा दस तक पढ़े हो। सुबोध मालूम पड़ते हो। तुम्हीं बताओ, इस संस्कृति और सभ्यता से मानव-समाज को क्या लाभ, जहाँ केवल मुट्ठी भर अमीरों के बच्चों की ही पहुंच हो ? वृक्षों के नीचे, खुले मैदान में जमीन पर बैठा के सब को पढ़ाया जाता है, देश के प्राचीन गुरुकुलों की सादगी की नकल की जाती है, लेकिन जरा इनकी साज-सज्जा तो देखो ! अप्सराएं भी लजा जाएं ! क्या इसी संस्कृति और सभ्यता से विश्व का कल्याण होगा ? मानवता का उद्धार होगा ? कुछेक सिनेमा के अभिनेता और अभिनेत्रियों के तैयार कर देने से ही क्या हमारे देश और समाज का उत्थान होगा ? संस्कृत में एक कहावत है- विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम् — अर्थात् किसी ने गणेश की मूर्ति बनाते बनाते बन्दर की मूर्ति बना डाली। वही हाल इस संस्कृति सदन का भी है। यदि तुम्हें भी नर से वानर बनना हो तो यहां रहो। लेकिन सौभाग्य समझो कि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं। नहीं तो तुम भी....." वाक्य को पूरा किये बिना ही पंडित जी ठठा कर हंस पड़े और उनके साथ नरेंद्र भी हंस पड़ा।

इस के बाद पंडित जी रसोई के काम में लग पड़े। रसोई बनी। बड़े प्रेम से नरेंद्र को खिला-पिला कर उन्हों ने विदा किया। अपनी छोटी आय में से चलते समय नरेंद्र को उन्हों ने एक रुपया भी भेंट किया, किन्तु नरेंद्र ने बड़े विनय के साथ उसे अस्वीकार कर दिया।

वहां से विदा हो नरेंद्र फिर देवघर स्टेशन आया, और बिना टिकट गाड़ी पर सवार हो सीधे कलकत्ता पहुंचा। वहाँ पहुंच कर नौकरी की पूरी तलाश की परन्तु असफल रहा। बेकारी हर जगह मुंह फैलाये खड़ी थी। चार पैसे के चने पर उस ने दो दिन गुज़ारे। तीसरे दिन चने की भी उमीद जाती रही।

इस प्रकार तीन दिन का भूखा किंकर्तव्य-विमूढ़ नरेंद्र जगन्नाथ घाट पर बैठा विक्षुब्ध चित्त से मन-ही-मन संस्कृति-सदन की आलोचना में लगा था। इसी समय एक सन्यासी को उस ने अपनी ओर आते देखा।

सन्यासी की उम्र चालीस साल के करीब थी। रंग साँवला था, आँखें छोटी छोटी थीं, जिन से सहृदयता की आभा छिटक रही थी। नाक नुकीली थी। ललाट चौड़ा और बाल बड़े बड़े थे। गेरू रंग की दो-गजी लुंगी और दो गजा उत्तरीय, और हाथ में दंड के बदले अपने बराबर की लाठी थी।

स्वामी जी की आँखें बरबस नरेंद्र की ओर खिंच गयीं। उस के उदास और निराश चेहरे को देख स्वामी जी के दिल में जिज्ञासा जग उठी। स्वामी सर्वज्ञानन्द मस्त-मौला जीव थे। स्वयं सदा खुश रहते और दूसरों को भी खुश देखना चाहते। इसी लिये किसी को चिंतित देख चिंता का कारण पूछते, दुखी देख दुख का कारण पूछते। उस की चिंता और दुख दूर करने की चेष्टा करते।

वे नरेन्द्र के निकट जा कर अत्यंत स्निग्ध स्वर में बोले "तुम्हें क्या तकलीफ है बेटा ?"

नरेन्द्र चुप रहा।

"बोलते क्यों नहीं बेटा ?"

नरेन्द्र फिर भी चुप रहा।

स्वामी जी हार मानने वाले जीव नहीं थे। डट गये। बोले—"मैं बगैर जाने हटता नहीं। तुम्हें क्या कष्ट है बताना ही पड़ेगा। मुंह तुम्हारा सूखा है। लगता है जैसे कई दिन के भूखे हो।"

नरेन्द्र की आँखों से एकाएक आँसू के दो बड़े बूंद लुढ़क पड़े। स्वामी जी समझ गये। उनके नेत्र भी गीले हो उठे। वे चट नरेन्द्र का बायाँ हाथ पकड़ के उसे जबरदस्ती उठाते हुए बोले—"चल बेटा ! इसी लिये ! अब मैं बगैर खिलाये तुझे छोड़ता नहीं।" यह कहकर उसे खींचते हुए ले चले।

दोनों जने एक हलवाई की दुकान पर पहुंचे।

"हां भई सेठ जी, इस बच्चे को प्रेम से भोजन तो कराओ।" स्वामी जी ने हलवाई से कहा।

"आइये स्वामी जी, ब्राजिये, (विराजिये) प्रभु !" जरा तोंद को अलगा कर अपनी मोटी आवाज़ में हलवाई ने दोनों का स्वागत किया।

"बैठ जा बेटा ! खूब प्रेम से जी भर कर जीम" ! स्वामी जी ने नरेन्द्र से कहा।

नरेन्द्र चुप रहा।

"खड़ा क्यों है ? शरम लग रही है ? अच्छा तो मैं भी तेरा साथ दूं ?" कहकर स्वामी जी ने नरेन्द्र का हाथ पकड़ कर बैंच पर बिठा दिया और वे स्वयं भी बैठ गये।

जी भर कर भोजन कर लेने के बाद हाथ-मु'ह धो स्वामी जी हलवाई के पैसे चुका नरेंद्र को साथ ले एक मन्दिर में पहुंचे। इसी मन्दिर में दो दिन से स्वामी जी का आसन लगा था। गर्मी का दिन था। एक चबूतरे की ओर इशारा करते हुए वे फिर नरेन्द्र से बोले—"जा बेटा, सो जा। बड़ी मीठी हवा आ रही है। खूब कसकर नींद आयेगी।"

दूसरे दिन सवेरे शौचादि से निवृत्त होकर अपना आसन गोल करते हुए स्वामी जी नरेन्द्र से बोले—"मैं हूँ रमता-राम। दो या तीन दिन से अधिक एक जगह टिकता नहीं। मैं अब चलता हूँ। तू किसी बड़े घर का लड़का है बेटा! रूठ कर भाग आया है। माँ-बाप रो रहे होंगे। लौट कर घर चला जा। परदेस में बड़ा कष्ट होगा।"

नरेन्द्र के नेत्र गीले हो उठे। झुक कर उस ने स्वामी जी के चरण छुए। और स्वामी जी भी उस के सिर पर हाथ रख कर 'नारायण' कहकर चलते बने।

: ११ :

गौरी पूछती, पता लगाती और ढूंढती हुई मनभरन दादी के बासे पर पहुंच गई। दादी वहां न थीं। सवेरे का समय था। बिश्वनाथ-अन्नपूर्णा के दर्शन को गयी थीं। गौरी थकी थी। दादी के घर के चबूतरे पर उदास दिल से बैठ गयी।

इतने में दादी आ गयीं। अपने चबूतरे पर एक अज्ञान गर्भिणी ग्रामतरुणी को बैठी देख पहले तो वे ज़रा चौंकीं। फिर गौर से गौरी की ओर देखने लगीं। गौरी इस एक साल में काफी बदल चुकी थी। मनभरन दादी ने उसे यौवन के छलकते विलासों से भरी एक षोड़शी के रूप में देखा था। परन्तु अब

शारीरिक और मानसिक कष्ट से चेहरा उसका विवर्ण हो गया था। किन्तु क्षण भर बाद ही गौरी को पहचान कर मनभरन दादी एकाएक बोल उठी—"ऐं! तू गौरी? यहां कैसे? तेरी ऐसी सूरत क्यों हो गयी?" जवाब में गौरी रो पड़ी। रोती हुई दादी के पैर छूकर बोली—"मुसीबत की मारी आई हूँ नानी! तुम्हें सब कुछ बताऊंगी, सब खोल कर बताऊंगी, मगर पहिले मुझे एक गिलास पानी तो पिलाओ।"

दादी का रंग गेंहुआ था। उम्र थी पचास के करीब। आंखें गोल और बड़ी थीं। विधवा होने के कारण शिर घुटा हुआ था। ललाट पर गङ्गा-माटी की एक बिंदी विराज रही थी। हाथ में कमण्डलु था। चट अन्दर जाकर लोटे में भर कर पानी ले आयीं। एक गुड़ की डली गौरी के हाथ में थमाती हुई बोलीं- "ले इसे खा के पानी पी ले! फिर रसोई बनेगी, तो दाल-भात खाना।

पानी पी ले के बाद गौरी के मुख से संक्षेप में सारी बातें सुनकर मनभरन दादी ढारस बँधाती हुई बोलीं—"सोच काहेकी बिटिया! यह कैलासपुरी है। बाबा बिस्सनाथ-अन्नपूर्णा की नगरी है। यहाँ भूखा-नंगा कोई नहीं रहता। सब का हीला लग जाता है। गंगा नहाओ, बिस्सनाथ-अन्नपूर्णा का दर्शन करो। सब पाप-पुन्न खतम! जो मन में आवे करती रहो।"—कहकर वे गौरी को स्नान कराने ले चलीं। गौरी के कोई दूसरा वस्त्र न था। दादी चट एक धुली सफेद शान्तिपुरी धोती अन्दर से निकाल ले आयीं। गौरी अपनी दूर के रिश्ते की इस नानी की सहृदयता से बड़ी प्रभावित हुई। कृतज्ञता से हृदय उसका भर उठा।

धीरे २ विधवाओं की मण्डली में गौरी और गौरी का पेट दिन-रात की आलोचना का विषय बन गया। नन्दरानी जनफरानी से बोली—"बहिन, सुना है तुमने? मनभरन बुढ़िया फिर कहीं से एक को फंसा लायी है।"

जवाब में जनकरानी हाथ-मुंह चमका के चुपके से बोलीं—"कहती है, मेरी नतिनी है। नेहर-सासुर में कोई नहीं रहा। अभी महीना भर पहले उसका घर-वाला मरा है।"

नंदरानी ने फिर चुपके से कहा—"जो कोई भी आवे, सबको नतिनी बना लेती है या मतीजी। मगर वह औरत भी वैसी ही है। कहीं से ढींढ़ कर लायी है, और अब कहती है कि घर-वाले को मरे एक ही महीना हुआ है।"

× × ×

दस दिन के बाद गौरी के पेट से एक मरा बच्चा निकला। गौरी चाहती भी यही थी। उसे इस बात का बड़ा क्षोभ था कि उस नीच पुरुष का पाप आज भी उसके पेट में मौजूद है जिसे वह संसार में सब से अधिक घृणा करती थी। आज उस पाप के ध्वंसावशेष से अपने को मुक्त पाकर उसे बड़ी खुशी हुई।

मनभरन दादी ने उसकी बड़ी सेवा की। पथ्य-पानी में कोई त्रुटि उठा न रखी। गौरी बहुत जल्द स्वस्थ होगई। उसका चेहरा फिर द्वितीया के चांदकी तरह उत्तरोत्तर खिलने लगा। पुनः उसके अंग २ से मादक सौंदर्य की छटा छिटकने लगी। वह नित्य ब्राह्म-मुहूरत में उठती। गङ्गा नहाकर विश्वनाथ-अन्नपूर्णा को जल चढ़ाती। काशी के दर्जनों अन्य देवी-देवताओं के दर्शन करती। अपने संचित पाप के निराद के लिये उनसे प्रार्थना करती। बड़ी लगन और श्रद्धा के साथ वह इस धर्माचरण में जुट पड़ी। कुछ दिन पहले के अपना जीवन याद आते ही वह पश्चात्ताप की आग में जलने लगती। अब वह पतित-पावनी गङ्गा और औढरदानी बाबा विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा की शरण में आ चुकी थी। इन्हीं के सहारे अपने शेष जीवन की नैया को भवसागर से पार लगाने की वह सोच रही थी।

इधर मनभरन दादी उस महारानी दरभंगा की ड्योढ़ी पर ले गयीं। महारानी साहेबा की ओर से कुछ अनाथ विधवाओं

को काशी-वास के निमित्त कुछ खर्चा मिल जाता था। मैनेजर साहेब की दया और मनभरन दादी की सिफारिश से चट गौरी को दो रुपये मासिक की मंजूरी मिल गई। दादी गौरी को ऐसी दो-तीन अन्य संस्थाओं में भी ले गयीं। सफलता हर जगह मिली. किंतु इस सफलता में मनभरन दादी के प्रयत्न की अपेक्षा गौरीके छलकते यौवन और रूप का अधिक श्रेय था। इस प्रकार गौरी को ६-१० रुपये माहवार की आय नियत हो गई। सस्ता समय था। जिंदगी बड़े आराम से कटने लगी।

मनभरन दादी जब-तब सुन्दर सलोनी साड़ियाँ ले आतीं, गौरी के आगे रख देतीं, और बड़े प्रेम और पुचकार के साथ उससे पहनने का आग्रह करतीं। किंतु गौरी इन चीज़ों से घृणा करती। उसे याद आ जाता, वह विधवा है। विधाता ने सौभाग्य उससे छीन लिया है। और इस से पहले अपने गांव में सुन्दर साड़ियों के जाल में फंस कर नतीजा भुगत चुकी थी। लेकिन अब वह अपने को अधिक से अधिक सादगी में बांध रखना चाहती थी। उसके इनकार करने पर दादी तुनक कर बोलतीं—"यही तो उमर है पहिनने-ओढ़ने की। विधाता ने सुहाग छीन लिया, तो क्या पहिनने-ओढ़ने से भी गयी? हंसने-खेलने से भी गयी? आखिर मेरी भी तो कुछ लालसा है? मेरी खातिर भी तो पहना-ओढ़ा करो।" और दादी के कृत्रिम प्रेम भरे उपालम्भ से पसीज कर जब वह साड़ी पहन लेती, दादी हंस कर बोलतीं—"ऐसा रूप! मगर दर्पन में देखेगी नहीं। सच कहती हूँ गौरी रानी, इस रूप को देखकर तो तीनों तिरलोक के देवता भी मोहित हो जायें!"

इस प्रकार के नखरों से गौरी सहमने लगी। धन्नाचाची की ऐसी चाटूक्तियों का शिकार बनकर फल पा चुकी थी। अतः मनभरन दादी की चाटूक्तियों से प्रसन्नता या लज्जा के बदले उसके चेहरे पर घृणा की गहरी रेखा अंकित हो जाती। दादी

घुटी-घण्टाल टहरी। गौरीके मनोभाव भांपते उन्हें देर नहीं लगती। वे चुप हो जातीं, किन्तु उचित अवसर की ताक में लगी रहतीं।

गौरी अपने नित्य-नियम के अनुसार शाम को भी मन्दिरों में जाती। अक्सर विश्वनाथ-अन्नपूर्णा की अंतिम आरती देख के आती। बाबा विश्वनाथ की आरती मशहूर है। उनकी तीन तीन आरतियां होती हैं। जिस समय पंडों की तोंदीली मण्डली जलढरी को घेर कर बैठी झूम २ कर विश्वनाथ की आरती उतारने लगती है, बाहर खड़े भक्तों की भीड़ भी भक्ति की मस्ती में अपने-आप झूमने लगती है। उस समय वहां साक्षात् कैलाश का नज़ारा नज़र आने लगता है। जब-तब गौरी भी उस भीड़ में खड़ी दीखती। उसकी आँखों से भी श्रद्धा-भक्ति के आंसू बहते दीखते। वह अत्यन्त करुणा-पूर्ति भाव से मन-ह-मन विश्वनाथ से कहती—"हे भोलेनाथ! अबला की लाज बचाना शंभो! जिस नरक से अभी निकली हूँ, फिर उसी में धकेल मत देना प्रभु!" पता नहीं विश्वनाथ तक उसकी वाणी पहुंच पाती या नहीं, किन्तु उसकी वाणी आस्था और आशा से भरी अवश्य होती।

एक दिन शाम को काली मन्दिर में वह दर्शन को गई। मां काली को नमस्कार कर प्रदक्षिणा करती मन्दिर के पीछे पहुंची। किसी एक अनोखे दृश्य को देख एकाएक चौंक कर वह पीछे मुड़ गई। उसके मुंह से बरबस निकल पड़ा—"छिः! मन्दिर में ऐसा कर्म!" दूसरे दिन तड़के ही विश्वनाथके मन्दिर में दर्शन को गई। निहुर कर कमण्डलु का जल 'नमः शिवाय, नमः शिवाय' कहते बाबा विश्वनाथ पर उड़ेल रही थी। अबला की लाज बचाने की प्रार्थना कर रही थी। इसी बीच भीड़ में से कोई एक हाथ उसकी छाती पर पहुंचके चिपक गया। वह

चौंककर बैठ गई ! किसी तरह उस हाथ से पिंड छुड़ाती हुई बोली—'छिः ! यहां भी नरक !'

तब से बाबा विश्वनाथ के प्रति उसकी श्रद्धा-भक्ति में कमी आने लगी। वह सोचती, क्या संसार का कोई भी भाग इस नरक से खाली नहीं ? तो यह सब कुछ दिखावा ही दिखावा है क्या ? पर्दे के भीतर सब बराबर। क्या विश्वनाथ में इतनी भी शक्ति नहीं, कि अपने बिल्कुल निकट होते पाप को भी रोक सकें ? यह क्या पहेली है कुछ समझ में नहीं आती !

इस प्रकार के नाना विचार उसके हृदय में उठने लगे, और साथ २ काशी-विश्वनाथ पर से उसका विश्वास भी उठने लगा।

गौरी को दस रुपये माहवार यों ही नहीं मिल रहे थे। देने और दिलाने वाले सभी अपने पुरस्कार की आशा में मनभरन दादी के घर मंडराने लगे थे। दादी सबको दिलासा देतीं। अलग अकेले में लेजा कर चुपके से कहतीं — "अभी गंवार है। शहर की हवा नहीं लगी। कुछ दिन धीरज धरो और कुछ दिल खोलो। केवल साढ़ी-वाढ़ी से मानने की नहीं, कुछ और भी...."

इस प्रकार यारों को विदा करने के बाद जाके गौरी से कृत्रिम प्रेम का प्याला उड़ेलती हुई बोलतीं—"मेरी रानी ! सब दिन पगली ही बनी रहेगी तू ? ऐसी जवानी, ऐसा रूप, सबको यों ही बरबाद हो जाने देगी ? डर काहे का, संकोच काहे का ? यह तो कैलासपुरी है, गंगा बहती है। पाप काहे का ? रात भर जो करो, सवेरे गंगा जी में धो आओ ! यहां पाप-पुन्न कुछ नहीं होता बिटिया ! जाग तू एक बार हां कर दे रानी ! फिर तेरा अंग २ गहनों से सजा दिया जाये। अभी जवानी है। दोनों हाथ से लूटो और लुटाओ। और फिर बची जिंदगी चैन से बिताओ।"

गौरी को अब समझते देर नहीं लगती कि वह किस नारकीय जाल में आ फंसी है। भाड़की जली भट्टी में आ गिरी है।

एक दिन रात को इसी तरह की बातों से झल्ला कर जवाब में गौरी बोली—"मुझे क्यों नरक में धकेल रही हो नानी ?" और नानी ने दोनों हाथ चमका कर जवाब दिया—"बड़ी भगतिन बनी है ! सात घाट का पानी पी चुकी, अब माला जपने चली है ! न जाने किससे पेट....."

दादी के धीरज की बाँध टूट चुकी थी। वह कुछ और कहने ही लगी थी कि उसी क्षण एक काशिकर यार पान चबाते- जूता मचमचाते, कंधे पर सिल्क की चादर डाले वहाँ आ पहुंचा। दादी ने उठकर बड़े आदर से उसका स्वागत किया। उसे उसी कोठरी में खाट पर बिठाया, और किसी बहाने कोठरी से निकल कर बाहर से साँकल चढ़ा दी।

गौरी को अब वास्तविक स्थिति का पता चल गया। काशिकर ने उसकी बांह पकड़ ली, और खींचकर खाट पर ले आना चाहा। गौरी के अंतः से एक अद्भुत शक्ति का स्रोत फूट पड़ा। वह बिजली की तरह चमकती उठ खड़ी हुई। विश्वनाथ से उसका विश्वास उठ चुका था। सारी दुनिया का भरोसा वह खो चुकी थी। आत्म-विश्वास की निराली भावना से वह सराबोर हो गयी। कड़क कर बोली—"अगर तुझे अपनी जान प्यारी हो, तो अभी यहाँ से निकल जा ! भाग जा नरक के कीड़े ! नहीं तो....." कहकर उस आश्चर्य चकित भयभीत काशिकर गुण्डे को सम्हलने का मौका दिये बिना ही उस पर टूट पड़ी। वहाँ पर पड़ी पीतल की बड़ी कलछी उठाकर उसपर दे मारी।

चोट खा कर गुण्डा भी गुस्से में लाल हो उठा। गौरी को दोनों भुजाओं से कसकर बाँधने की कोशिश की। दोनों में गुत्थम गुत्था मच गया। गौरी ने सारी शक्ति लगा दी। भरकौर से उसकी नाक पकड़ कर अपने तेज और मजबूत दांत गड़ाने लगी। गुण्डा चिल्ला उठा। 'किवाड़ खोलो, किवाड़ खोलो' का

शोर मचाने लगा। दादी ने कुण्डी हटा दी। किवाड़ खुल गया। तब तक गुण्डे की नाक साफ हो चुकी थी। गौरी साक्षात् काली के रूप में परिणत हो चुकी थी। गुण्डे की कटी नाक उसके दाँत से सटी थी। क्रोध में उसकी जिह्वा बाहर निकल आयी थी, और उससे खून की अविरल धारा बह रही थी। इस गुत्थम-गुत्थे में वस्त्र उसका खिसक चुका था। वह बिल्कुल दिगंबरा बनकर अपनी जान लेकर भागते उस गुण्डे के पीछे दौड़ पड़ी। बाहर दाल की हांडी पड़ी थी। बड़ी तेज़ी से उसे उठा कर गुण्डे के शिर पर उसने दे मारी। उसकी कीमती रेशमी पोशाक बरबाद हो गई। नाक से सदा के लिये हाथ धो चुका था। अब उस हांडी को फूटी कनखी को गले में डाले गली में बेतहाशा वह भागा जा रहा था। उसके पीछे गौरी बेतहाशा दौड़ी जा रही थी। उसे इतना भी ज्ञान न रह गया था कि वह नंगी है। फिर एकाएक पत्थर से ठेस लग कर वह गिड़ पड़ी। गौरी को अब होश आया। अपने को नंगा देख चौंक पड़ी। हाँफ रही थी। क्रोध के अङ्गारे आंखों से निकल रहे थे। उसी दशा में दौड़ी वह कमरे में पहुंची। कपड़ा पहना, किन्तु दादी ला-पता थीं। डर कर न जाने कहां भाग निकलीं थीं।

अब गौरीकी एका एक उभरी हुई वह आत्म-शक्ति पुनः तिरोहित हो गयी। अब वह काली न रहकर गौरी बन गई—वही एक अनाथ, लंछिता, पराश्रिता अबला! अभी घण्टे भर पहले की घटी घटना ने उसकी आंखें खोल दीं। वास्तविकता पूरी भयानकता के साथ आंखों के आगे नाचती दीखी। क्या संसार में उसके लिये कहीं भी निरापद जगह नहीं? क्या समाज में एक अनाथा विधवा को सम्मानपूर्ण जीवन बिताने को कोई गुञ्जाइश नहीं? उसका रूप और यौवन ही क्या इन सारे खुराफातों की जड़ है, या मौजूदा समाज का रूप?

इस प्रकार के अनेक विचारों के अथाह सागर में डूबती-उतराती वह बही जा रही थी। सारी दुनिया खट्टी लग रही थी। मन तीता हो गया था। इसी समय सहसा एक विचार बिजली की भांति उसके दिल में उठा, और उसका चेहरा चमकने लगा। उसने सोचा, जब संसार में मेरे लिये आदर और सम्मान का स्थान नहीं, पग-पग पर अपमान और कलंक के गहरे गढ़े मौजूद हैं, तो इन गंदे गढ़ों में डूब मरने की बजाय क्यों न मां गङ्गा की पवित्र गोदी में सदा के लिये समा जाऊ ? क्यों न इस अपमानपूर्ण परिस्थिति का अंत कर दूं ? कौन है मेरे लिये रोने वाला जिसकी चिन्ता करूं ?

इतने में रात के तीन का घण्टा बजा। नींद तो दादी की ही तरह डर कर ला-पता हो गयी थी। वह बिछौने पर लेटी भी नहीं। दीवाल के सहारे पीठ के बल बैठी इन्हीं विचारों की उधेड़-बुन में लगी थी। घण्टा बजने की आवाज़ कान में पड़ते ही तड़फड़ वह उठ खड़ी हुई। क्षण भर कुछ सोचती रही। फिर उस पाप-पंकिल बासे को घृणा के साथ नमस्कार कर सीधे मणिकर्णिका घाट की ओर चल दी।

घाट पर पहुंची। सीढ़ियां उतर कर गङ्गा में पैठी। छाती भर पानी में पहुंचने पर पत्थर के एक विशाल टीले से वह टकरा गई। किसी ज़माने का एक बड़ा गुम्बज ढहकर गङ्गा में जा गिरा था। वही अब बड़ा टीला बन गया था। टीले का ऊपरी भाग पानी से ऊपर था और टीले के बाद अगम अथाह पानी। गौरीको इसका पता था। वह टीले पर चढ़ गई। खड़ी हो हाथ जोड़ कर आंसू-भरे स्वर में बोली—"माँ गङ्गा ! इस अबला को अपनी गोद में जगह दो !" — कह कर उस अगम अथाह जल में कूद पड़ी।

: १२ :

स्वामी सर्वज्ञानन्द चले गये। उनके निष्कपट और करुणा-पूर्ण व्यवहार ने साधुओं के प्रति नरेंद्र के दिल में बड़ी श्रद्धा पैदा कर दी। मन्दिर के दालान में एक ओर बैठ कर वह सोचने लगा—"स्वामी जी भी तो उसी साधु-समाज के हैं न, जिस के अनाचार और दुराचार की कहानियाँ अब तक मैं अखबारों में पढ़ता रहा हूँ! और उस संस्था को भी अपनी आंखों देख आया हूँ जिसकी प्रशंसा अखबारों के कालम के कालम भरे रहते हैं। तो क्या अखबारों का यही पेशा है कि सच को झूट और झूट को सच के रूप में दिखाया जाय? इन आधुनिक सुधारक सभ्यों की अपेक्षा यह साधु-संत कितने अच्छे हैं? किसी दीन-दुखी के लिये केवल घड़ियाली आंसू न बहा कर उसकी मदद करते हैं। दिखावे और पाखण्ड से दूर रहते हैं।" किन्तु अबोध नरेंद्र को क्या पता कि सर्वज्ञानंद जैसे साधु हैं ही कितने? अभी उसने संसार का देखा ही क्या था?

जो भी हो, सर्वज्ञानन्द के सद्व्यवहार ने साधु-जीवन के प्रति उसे आकृष्ट कर दिया। अपनी भारतीय सभ्यता के प्रति हृदय उसका श्रद्धान्वित हो उठा। अब वह स्वयं सर्वज्ञानंद के पथ का पथिक बनने को ललक उठा। उनके दयापूर्ण निष्कपट जीवन को अपनाने का निर्णय उसने कर लिया।

उन दिनों कई दिनों से कलकत्ता में किन्हीं महामण्डलेश्वर प्रतिवादिभयंकर १००८ श्री चन्द्रेश्वरानन्द जी महाराज की कथा जारी थी। कथा गीता की थी। बड़े बाजार के किसी सार्व-जनिक स्थान में हो रही थी। कथा के साथ कथा-वाचक के नाम की धूम मच गयी थी। जगह २ दीवालों पर विज्ञापन चिपक रहे थे। कहते थे, मण्डलेश्वर जो को स्वयं भगवान

कृष्ण ने दर्शन दिया था, और उनके हाथ में गीता की पुस्तक देकर संसार में गीता धर्म का प्रचार करने का आदेश दिया था। मण्डलेश्वर जी अब उसी ईश्वरीय आदेश का परिपालन कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त, प्रतिवादि-भयंकर जी ने एक महायज्ञ रचाने का संकल्प किया था। इस में पांच लाख रुपये ख़र्च का अन्दाज़ा था। इस प्रकार वे कलियुग में सत्ययुग का दृश्य दिखाना चाहते थे। धर्म-विमुख समाज को पुनः धर्म की ओर मोड़ना चाहते थे। इसी प्रसंग में वे कलकत्ता पधारे थे।

एक तो यों ही नरेंद्र के दिल में धार्मिकता की उफान उठ रही थी। तिसपर साक्षात् कृष्ण भगवान का दर्शन पाया हुआ महात्मा भगवान की आज्ञा से कथा कर रहा है, सुनते ही वह अधीर हो उठा। महात्मा के दर्शन से अपना जन्म सफल करने को उतावला हो पड़ा। बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ नियत समय से कुछ पहले ही कथा-पण्डाल में पहुंचा।

क्रमशः जनता इकट्ठी हो रही थी। नियत समय पर बड़े ठाठ के साथ हाथ में दंड लिये महामंडलेश्वर जी पंडाल में पधारे। कार से उतरते ही परिचारकों ने भगवे रंग का एक बड़ा छाता उनपर तान दिया। यद्यपि समय था शाम का। न धूप थी न बारिस। किन्तु आचार का परिपालन तो आवश्यक था। दोनों बगल में दो परिचारक चामर झलते आ रहे थे, यद्यपि प्रकृति स्वयं शीतल समीर बहा रही थी। धीरे धीरे मंडलेश्वर जी व्यास गद्दी पर पधारे। व्यास गद्दी की जगह चाँदी का सिंहासन धरा था। उसी पर जा विराजे।

अब भक्तों में चरण छूने की होड़ लग गयी। भक्तों में अधिकतर नगर के बड़े लोग थे. यानीं—जज, कलकटर, बैरिस्टर, सेठ और साहूकार लोग। इसके बाद संभ्रांत महिलाओं की बारी आयी। हाथों में मालाएँ लिये वे आगे बढ़ीं। एक-एक कर

महात्मा जी की पूजा कर सब ने अपना जन्म सफल बनाया। और मंडलेश्वर जी ने कृपा-कटाक्ष से सब को कृत-कृत्य किया। कथा आरम्भ होने से पहले माइक्रोफ़ोन के आगे खड़े होकर दो सुन्दर लड़कों ने सुरीले स्वर में मीरा के भजन गाकर भक्तों को भक्ति रस में डुबो दिया।

इस बीच स्वामी चन्द्रेश्वरानन्द जी महाराज सिंहासन लगाये 'ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा' सिंहासन पर बैठे थे। गेरू रंग में रंगे बहुमूल्य वस्त्रों से सजे थे। उम्र पचपन के करीब लग रही थी। चौड़े ललाट पर भस्म का तिन धरिया तिलक किलक रहा था। गोल और भरे चेहरे में उनकी बड़ी बड़ी गोल आँखें सुनहले फ्रेम के चश्मे के भीतर से झाँक रही थीं। झांकने की अदा निराली थी, जिस पर भक्तगण निछावर होने को ललक रहे थे। शिर के बाल घुटे थे। दाढ़ी मूंछें साफ थीं।

कथा आरम्भ हुई। ग्यारहवें अध्याय की कथा थी। भगवान के विराट् रूप का वर्णन था। महाराज के कथा कहने का ढंग अनोखा था। एक-एक श्लोक पर सारी दुनिया की बात कह डालते। आवाज़ उनकी बड़ी साफ़ थी, अचूक असर करने वाली। उनके चुभते चुटकुले और सटीक दृष्टाँत श्रोताओं के दिलों को आंदोलित कर देते। उनकी कथा सुनकर सारा श्रोता-मंडल एक समान रस में सराबोर हो गया था। आस्तिक, नास्तिक, सब पर उनकी वाणी ने जादू कर दिया था। कितनों-की आँखों से भक्ति के आँसू बह रहे थे।

कथा समाप्त हुई। नरेन्द्र भीड़ में से चट उठकर व्यास-गद्दी के निकट जा पहुंचा, और महाराज के चरणों पर गिर कर रोने लगा। महाराज ने चौंक कर नज़र फेरी। मैले कपड़ों में लिपटे एक मनुष्य को अपने पैरों पर गिरा देख पहले तो उनकी नाक और भौंहें कुछ सिकुड़ी सी मालूम पड़ीं, किन्तु ज्यों ही इस

सतरह-साला कमनीय किशोर के चेहरे पर उनकी नज़र पड़ी, उनका दिल पसीज गया।

"क्यों रो रहे हो बेटा ?"—नरेन्द्र का हाथ पकड़ के उठाते हुए बड़े प्रेम से वे बोले।

नरेन्द्र कुछ न बोला।

"बोलते क्यों नहीं ? डरो मत बेटा। जो कहना हो कहो।"

नरेन्द्र बोला—"मैं अनाथ हूँ। संसार में मेरा कोई नहीं। अपने चरणों का दास बना लें। इस दीन पर दया करें।" और कहकर अपने आंसू पोंछने लगा।

"यह मार्ग बड़ा कठिन है बेटा। तू अभी दुध-मुंहा बच्चा है। कैसे इस मार्ग पर टिकेगा ?"

"मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ। आग तक में कूदने को तैयार हूँ।"

"यह पंथ आग में कूदने ही जैसा है बेटा ! अच्छा अभी तुम आश्रम में चलो।" कहकर नरेन्द्र को एक चेले के सुपुर्द करके स्वयं वहां से उठ खड़े हुए और अपनी प्रतीक्षा में खड़ी कार में जा विराजे।

: १३ :

स्वामी चन्द्रेश्वरानन्द जी महाराज कलकत्ता से चलकर कई शहरों से होते हुए तीनेक महीने बाद बम्बई पहुंचे। स्वामी जी ने नरेन्द्र का नाम प्रज्ञानानन्द ब्रह्मचारी रखा था, और उसे प्रज्ञान कहकर पुकारते। प्रज्ञान यौवन में प्रविष्ट हो चुका था। किसी चीज की अब कमी थी नहीं। अच्छा खाता, अच्छा पहनता। धनी घर का लड़का हो कर भी यह देव-दुर्लभ खाद्य-सामग्री उसने कभी देखी न थी। खाने की तो बात ही क्या ? उसके अंग २ से यौवन छिटकने लगा। सौंदर्य मानो फूट पड़ना चाहता था। उसके सौंदर्य-मण्डित मुख की ओर किसी की भी आंखें बरबस खिच जातीं। बड़े लाड-प्यार के साथ वह पलने लगा।

अपने गुरु स्वामी चन्द्रेश्वरानन्द की वह बड़ी भक्ति करता। रात को एकाँत कोठरी में घण्टों उनके पैर दबाता। जब-तब स्वामी जी का मनचला व्यवहार देख वह घबड़ा भी जाता, और स्वामी जी उसके अशाँत चेहरे को देख चुपके से कहते—"यह तुम्हारी परीक्षा है प्रज्ञान ! परीक्षा में सफल हुए बिना कैसे इस गहन पथ के अधिकारी बनोगे ?" और प्रज्ञान भी समझता, कि गुरु जी मेरी परीक्षा ही लेना चाहते हैं। किन्तु परीक्षा में एकाएक पास होने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

एक रात उनके मनचलेपन को सीमा पार करते देख प्रज्ञान साहस करके घड़कते दिल से बोला—"यह काम तो मुझ से न होगा गुरु जी !"

इस पर गुरु जी की सोयी वेदाँत-चेतना एकाएक जग उठी। वे बोलने लगे—"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"—अर्थात् ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या है, और जीव ब्रह्म ही है। अविद्या (अज्ञान) के कारण मनुष्य असत्य को सत्य मान बैठता है। और जबतक इस अविद्या से रहित नहीं होता, ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। तेरा शरीर भी मिथ्या, मेरा शरीर भी मिथ्या, मेरे और तेरे का यह भेद भी मिथ्या, शरीर से शरीर का संयोग भी मिथ्या, और इस मिथ्या के प्रति यह मोह भी मिथ्या। और इस मिथ्या को त्यागे बिना मुक्ति कहां ? और विज्ञान कहां ?"

प्रज्ञान गुरु की बातें अवाक होकर सुनता रहा। उसे सन्देह होने लगा कि गुरु जी नशे में पागल तो नहीं हो गये ? उस शाम को विजया की बूटी उन्हों ने खूब चढ़ाई थी। फिर ज़रा डरते हुए बोला—"गुरु जी ! आप ही तो सभाओं में संयम-नियम का उपदेश देते हैं। ब्रह्मचर्य पर ज़ोर देते हैं।"

उत्तर में गुरुदेव बोले—"वह उपदेश भी मिथ्या, वह सभा भी मिथ्या।" और इतना कहकर प्रज्ञान का हाथ उन्हों ने

कसकर पकड़ लिया। प्रज्ञान उनके हाथ को झटका दे कर चुपचाप कमरे से बाहर हो गया।

× × ×

अब तक तीन लाख रुपये इकट्ठे हो चुके थे। बाकी दो लाख बम्बई के भरोसे पर था। उसी को वसूल करने के निमित्त 'माधव बाग' मे स्वामी चन्द्रेश्वरानन्द जी की कथा जारी थी। कथा समाप्त होते ही भक्तों की समालोचना शुरू हो जाती। कोई कहता, जीवन में कभी ऐसी कथा नहीं सुनी भाई! कोई कहता, स्वामी जी क्या ऐसे-वैसे हैं? साक्षात् भगवान ने दर्शन दे कर कथा-प्रचार का आदेश दिया है। फिर यह कथा ऐसी क्यों न हो? कोई स्वामी जी के त्याग और तपोबल की प्रशसा करता, तो कोई उनके ब्रह्मचर्य और महानता की। हर श्रोता स्वामी जी के प्रति दिल में श्रद्धा के भाव भरे घर को जाता।

प्रज्ञान लेकिन संदेह में पड़ा रहा, उसकी समझ में कुछ आ नहीं रहा था। वह अपने तईं सोचता, सारी दुनिया गुरु जी को पूज रही है, मान रही है, क्यों? उन में कुछ है तभी तो! और उनके मनचलेपन को याद कर कहता, "शायद गुरु जी मेरी परीक्षा ले रहे हैं। उनके दिल में कोई बुरा भाव नहीं।' इस प्रकार शंका-संदेह के झूले में प्रज्ञान झूल रहा था। उसकी दशा सांप-छुछुन्दर सी हो रही थी।

स्वामी चंद्रेश्वरानन्द के एक दूसरे शिष्य का नाम विज्ञानानंद था। केरल का रहने वाला था। सन्यासियों के शिरोमणि स्वामी शङ्कराचार्य का वंशधर था। उसका पहला नाम था नीलकण्ठम् निंबूदीरी। दक्षिण मालाबार जिले के कोलंगोड नामक एक छोटे से नगर में पैदा हुआ था। भवसागर से पार उतरने की अभिलाषा में मण्डलेश्वर चन्द्रेश्वरानन्द का शिष्य बना था।

नीलकण्ठम् का रंग सांवला होते हुए भी चेहरा आकर्षक था। आंखें बड़ी २ और नाक नुकीली थी। उम्र में प्रज्ञान से दो साल बड़ा था, और शिष्य बने भी उसे दो साल हुए थे। संस्कृत का ज्ञान उसका पहले से ही अच्छा था। इस बीच हिन्दी भी सीख गया था।

विज्ञान और प्रज्ञान दोनों ही प्रतिभाशाली थे। दोनों में बड़ा स्नेह था। दोनों का हृदय विशाल था। गुरु का झुकाव भी इन दोनों पर अधिक था। इससे दूसरे चेले मन-ही-मन जला करते विज्ञान प्रज्ञान को संस्कृत पढ़ाता, और प्रज्ञान विज्ञान को हिंदी। इस प्रकार दोनों गुरु-भाई अपनी पारस्परिक त्रुटियां दूर कर रहे थे।

एक दिन शाम को दोनों गुरु-भाई कथा में शामिल न हो कर सैर को निकले। घूमते-घामते समुद्र के किनारे चौपाटी की रेतीली भूमि पर आ बैठे। समुद्र की निरन्तर उठती लहरों को देखने लगे। डूबते सूर्य की बहुरंगी किरणें अविराम उछलती लहरों पर खेल रही थीं। डूबती और उतराती मानो किसी झूले में झूल रही थीं। सूर्य सागर की गोद को छूना ही चाहता था, और सागर अपनी बाहें उछाल २ कर भगवान भास्कर को अदने अतल अंक में छिपा लेना चाहता था! दोनों बन्धु तन्मय होकर इस स्वर्गीय सुषमा को देखने में लवलीन थे। इसी समय प्रज्ञान के कानों में पीछे से 'नारायण' की परिचित-सी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी।

उसने मुड़कर पीछे देखा, तो आश्चर्य की सीमा न रही। स्वामी सर्वज्ञानन्द खड़े अस्तोन्मुख अंशुमाली को देख रहे हैं। प्रज्ञान ने तड़फड़ उठ उनके चरण छुए, और उसकी देखा देखी विज्ञान ने भी वही किया।

'नारायण!'—कह कर स्वामी जी ने आशीर्वाद दिया, और फिर प्रज्ञान की ओर गाढ़ी दृष्टि से देखने लगे। फिर एकाएक

बोल उठे—"अरे ! तुम हो नरेन्द्र ! यहाँ कसे आ गये बेटा ? यह तुमने कौनसा वेश अपना लिया बेटा ? किसके तिकड़न में जा फंसे ? घर नहीं गये ? मां रो रही होंगी, पिता रो रहे होंगे।"

'मां रो रही होंगी' इस वाक्य ने भूली व्यथा को उकसा दिया। नरेन्द्र के नेत्र सजल हो उटे। वह रो पड़ा। रोते स्वर मे बोला—"माँ मेरी नहीं रहीं स्वामी जी ! दो माताएं थीं, दोनों बड़ा प्यार करतीं, और दोनों ही चल बसीं। इस संसार में अब मेरा अपना कोई नहीं रहा स्वामी जी !" — कहकर वह सिसकने लगा।

सर्वज्ञानन्दका हृदय आर्द्र हो उठा। वे धीरज बधाते बोले—"चुप रहो बेटा ! जन्म लेना और मरना प्रकृति का धर्म है। इसके लिये रोना व्यर्थ है। तुम्हारी मां मर गयीं, किन्तु उनकी आत्मा अब भी सब की मां, बड़ी मां भारत मां में मौजूद है। वह कभी मरने वाली नहीं। अपनी भारत मां को प्यार करना सीखो बेटा। गुलामी की क्रूर जंजीरों में जकड़ी भारत माँ को देखने की चेष्टा करो बेटा ! इस जंजीर को तोड़ने की कोशिश करो बेटा ! भारत के करोड़ों भूखों-नंगों के पैरों में पड़ी बेड़ियों के काटने के उपाय सीखो बेटा ! इसी में मुक्ति है, और यही है संसार-सागर से पार उतरने का सत्य, शिव और सुन्दर साधन !"

स्वामी जी उस मातृहीन बिलखते शिशु को आश्वासन देने के आवेश में एक साँस में ही सारी बातें कह गये। प्रज्ञान को चन्द्रभानुपुर आश्रम की मां अन्नपूर्णा याद आ गयीं। वे भी आवेश में आकर जब-तब ऐसी बातें कहने लगतीं, मानो उसी अन्नपूर्णा की आत्मा आज सर्वज्ञानन्द में बोल रही थी। बहुत दिन बाद ऐसी बातें उसे सुनने को मिली थीं। सारा शोक और क्षोभ क्षण मात्र में धुल कर हृदय उसका निर्मल बन गया।

अब प्रज्ञान अपनी चादर के छोर से आंखें पोंछते हुए बोला—"लेकिन स्वामी जी ! मेरे गुरु जी तो, कहते हैं, कि माँ

भी झूठी; बाप भी झूठा। भारत मां भी झूठी और देश भी झूठा। सारीदुनिया झूठी; केवल ब्रह्म सच्चा है; और उसी के लिए प्रयत्न करना चाहिए। उस शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त किए बिना मोक्ष कहां, कल्याण कहाँ, ज्ञान कहां और विज्ञान कहां ?"

"तुम्हारे गुरु जी का क्या नाम है, बेटा ?"

"श्री १००८ महामंडलेश्वर प्रतिवादि भयंकर श्री स्वामी चंद्रेश्वरानन्द जी महाराज।"

"तुम इसके जाल में कैसे फंस गए, बेटा ? यह तो महा-मक्कारों का सरताज है।"

प्रज्ञान ने चौंक कर दोनों हाथ से दोनों कान मुंह ढक लिए।

"चौंक क्यों पड़े बेटा ? इसलिये कि गुरु की निन्दा हो रही है? मगर तुमने शायद अभी तक अपने गुरु को पहिचाना नहीं ! इसका शुरु से आखिर तक सब मिथ्या ही मिथ्या है नरेंद्र! यह लोगों से झूठ-मूठ कहता-फिरता है, कि भगवान ने इसे दर्शन दिया है ! गीता के प्रचार का आदेश दिया है, और इसके वेतन-भोगी एजैंट भी इन्हीं बातों का प्रचार करते फिरते हैं। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि इसने अब तक क्या २ किये हैं। यह कितनों को लूट चुका और कितनों को बरबाद कर चुका है। कितनी बहू-बेटियों की इज्जत बिगाड़ चुका है, और कितने इसके नाम को रो रहे हैं, और अब यज्ञ का नाम लेकर रुपये वसूल कर रहा है। लोगों की आंखों में धूल झोंक रहा है। क्या क्या बताऊं तुम से ?"

सर्वज्ञानन्द की लच्छेदार बातें सुन कर प्रज्ञान तो भौंचक्का रह गया, लेकिन आंखें उसकी खुलने लगीं। उसने पूछा—"लेकिन इतने लोग इनके पीछे क्यों चलते हैं ? ये बड़े २ जज-कलक्टर और सेठ-साहुकार इनके पैरों की धूल क्यों छानते हैं ?

इन्हें इतना देते क्यों हैं ? दूसरों को क्यों नहीं देते ?" प्रज्ञान ने एक साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

सर्वज्ञानन्द ज़रा हंसकर बोले—"इसका कारण अशिक्षा, अज्ञान और स्वार्थ है बेटा !

सुनकर प्रज्ञान को बड़ा आश्चर्य हुआ। चुपचाप विस्मित आंखों से स्वामी जी की ओर ताकने लगा।

स्वामी जी उसकी मनोदशा भांप गये। मुस्कराते हुए बोले—"आश्चर्य होने की तो बात ही ठहरी। जज और कलक्टर नाम बड़ा भयानक है। लेकिन इतनी बात याद रखो बेटे, कि ऊंचा ओहदा ऊंची शिक्षा की कसौटी कदापि नहीं। इन में भी बड़े बड़े दुर्बोध होते हैं। जीवन के हर पहलू में इनका परिचय होता कहां है ? कानूनी लकड़-पेंचकी सीमित परिधि में इनकी प्रतिभा भी सीमित हो जाती है। और जो कुछेक थोड़े उडंतू हैं वे कभी इस मक्कारी के चक्कर मे नहीं फंसते।

"और रह गई सेठ-साहूकारों की बात। सो इनके भी दो वर्ग हैं, एक मूर्खों का, दूसरा मक्कारों का ! जो मूर्ख हैं, वे वास्तव में श्रद्धा भक्ति के साथ कथा सुनते हैं। पैसे पैदा करने में अपने किये पापों को याद कर कुंभी पाक का भय इन्हें सताने लगता है, अतः साधु संतों की शरण गहते हैं। सतसंग, कथा-पुराण और यज्ञ-जाप में अपनी कमाई का कुछ अंश देकर अपने पाप धोते हैं। ये पाखंडी नहीं होते, सच्चे विश्वास के साथ धार्मिक कामों में योग देते हैं। और यही दशा हमारे देश के बहुतेरे पढ़े लिखे दुर्बोधों की भी है।

"दूसरा वर्ग है धनी मक्कारों का। ये वैसे ही मक्कार होते हैं जैसे तुम्हारे गुरु मंडलेश्वर चंद्रेश्वरानन्द जी। इनका धार्मिक विश्वास दिखावा मात्र है ! इससे वे अपना उल्लू सीधा करते हैं। इस धार्मिक विश्वास के नकली पर्दे के पीछे बड़े बड़े

क्रूर नाटक खेलते हैं। वर्ग संघर्ष का भय इन्हें दिन रात सताने लगा है। शोषित वर्ग की सोयी चेतना अंगड़ाई लेने लगी है। गांव या शहर हर जगह भोग की सामग्री पैदा करने वाले मजदूर हैं, किंतु वह उसके अपभोग से वंचित रहते हैं। इनके पैदा किये धन पर गुलछर्रे उड़ाने वाला है मुट्ठी भर धनियों का वर्ग। तुम्हीं सोचो, इस जागृत विशाल शोषित वर्ग के सामने मुट्ठी भर धनियों का यह वर्ग कब तक टिका रह सकेगा ? अतः ये लोग चन्द्रेश्वरानन्द जैसे मक्कारों का आश्रय लेते हैं। उसे धन देकर सहायता करते हैं। उसकी झूठी महानता का विज्ञापन करते हैं।"

स्वामी सर्वज्ञानन्द की वाणी उत्तरोत्तर जोशीली और गर्मीली बनती जा रही थी। अब वे आवेश में अपने हृदय का उद्गार उगलने लगे, और ये दोनों नवयुवा बड़ी रुचि और लगन से उन्हें निगलने लगे। स्वामी जी बोले—"और जानते हो, यह यज्ञ का जाल क्यों रचा जा रहा है ? इसके पीछे एक महान, एक अतिमहान मतलब छिपा हुआ है। अभी शायद तुम लोग नहीं समझोगे, लेकिन सर्वज्ञानन्द की यह बात गाँठ बाँध रखो, कि गरीबों की चेतना पर धूल और राख डालने का सब से बड़ा और जबर्दस्त साधन धर्म और धार्मिक जमात है। न जाने इह-लोक और परलोक की कितनी कहानियां गढ़ ली गयीं, इस जन्म और पूर्व जन्म के कितने पोथे तैयार किये गये, प्रारब्ध और भाग्य की कितनी अद्भुत कल्पनाएं की गयीं और इन सारी कल्पनाओं का आधार है धर्म और धार्मिक जमात। इन वाहियात कल्पनाओं के द्वारा, मन गढ़ंत कहानियों के द्वारा गरीबों के दिलों में यह विश्वास जमा दिया गया है कि—'तुम्हारी यह मौजूदा गरीबी, तुम्हारी यह वर्तमान दुर्दशा, तुम्हारे पूर्व जन्म के किये कर्मों का फल है। तुमने ईश्वर की आराधना नहीं की, साधु-सन्तों का सत्सङ्ग नहीं किया, तीर्थों में जाकर दान और पुण्य नहीं किये।' वे अनपढ़ भोले भाले गरीब इस बात पर

विश्वास कर लेते हैं और अपनी सारी दुर्दशा का दोष भाग्य और प्रारब्ध के मत्थे थोप कर निराश हो बैठ जाते हैं। अपनी दुर्दशा के मूल कारण उस दुश्मन को पहचानने से विरत हो जाते हैं ।

"यह यज्ञ होगा। पाप और तिकड़मबाजो की लाखों-करोड़ों की कमाई में से चन्द्रेश्वरानन्द को आगे करके दो-चार लाख रुपये खर्च किये जायेंगे । संस्कृत पढ़े-लिखे कुछेक गरीब ब्राह्मणों को थोड़ी–बहुत दान-दक्षिणा मिल जायेगी। कुछेक संस्कृत के पण्डितों को सादर बुलाकर गिन्नीअशर्फियों की बिदाई दी जायगी। धर्मभीरु जनता के सामने इस कलियुग में भी सत्य-युग का दृश्य उपस्थित किया जायगा। दान देने वाले सेठों के नाम अखबारों में छपेंगे । जनता पढ़ेगी और पढ़कर इन्हें दानवीर और धर्मवीर के रूप में याद करेगी। बताओ जनमत को अपने पक्ष में करने का इस से सुन्दर और सस्ता तरीका और क्या होगा ?

"इतना ही नहीं, इन सेठों के और भी अनेक हथकण्डे हैं। अखबारों में तुम लीडरों के नाम पढ़ते हो, उनके कल्पित त्याग और बलिदान की कहानियों से अखबारों के कालम भरे पाते हो। लेकिन इन तथाकथित लीडरों और नेताओं में बहुतेरे ऐसे हैं, जो गुप्त रूप से बड़े २ सेठों के पैसों पर पलते हैं, जनता के आगे गुप्त या प्रकट रूप से सेठों का गुणगान करते हैं। और इन भाड़े के टट्टुओं को अखबारों और सभा-मंचों के जरिये नेता के रूप में जनता के सामने पेश किया जाता है। भोली जनता बेचारी को क्या पता ? वह बड़ी आसानी से विश्वास कर लेती है ।"

अब प्रज्ञान से न रहा गया, वह बोला—"स्वामी जी ! अभी आप ने बताया है कि कुछ लोग अशिक्षा या अर्धशिक्षा के कारण साधुओं के पीछे लगे रहते हैं, और कुछ लोग अपने

स्वार्थ साधन के लिये। लेकिन सर जी० डी० मेहता आई० सी० एस० को तो आप जानते होंगे। वे कमिश्नर के पद तक पहुंच चुके हैं। पेंसन लिये साल भर हो गया है। अब वे दिन-रात हमारे गुरुजी के पीछे लगे फिरते हैं। अध्यात्म-चर्चा में लीन रहते हैं। कहते हैं, आई० सी० एस० वाले बड़ी ऊंची अक्ल के होते हैं। इनका मस्तिष्क, इनका दिमाग़ बड़े ऊंचे दर्जे का होता है। अध्ययन भी विशाल होता है। फिर मेहता जैसे आदमी क्यों गुरुजी के चरणों पर शिर रगड़ते हैं ? उनमें कुछ है तभी तो ?"

प्रज्ञान का लच्छेदार प्रश्न सुन कर स्वामी जी बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हंस पड़े। उनके हंसने का अद्भुत ढंग देख विज्ञान और प्रज्ञान दोनों अवाक रह गये। हंसी रुकने के बाद स्वामी जी मुस्कराते हुए बोले—"मेरा हंसना देख तुम लोग विस्मित हो गये ? विस्मित होने की बात ही ठहरी। आई० सी० एस० वालों की अक्ल, दिमाग और लियाकत का इतना बड़ा हौवा सबके सामने खड़ा कर दिया गया है, कि सोच कर हंसी आए बिना नहीं रहती। बेटा ! दूर का ढोल सुहावना होता है। यदि नज़दीक से इन्हें देखा जाए तो इनकी अक्ल की सारी पोल खुल जाये, लेकिन नज़दीक से देखने का मौका नहीं दिया जाता। जनता पर इनका दबदबा कायम रखने के लिये इन्हें दूर हटा कर रखा जाता है, जहां जनता की पहुंच नहीं। यह तो अंग्रेज़ों की एक बड़ी धूर्तता-पूर्ण चाल है बेटा ! कालों द्वारा ही कालों पर शासन करने का एक बड़ा कुटिल तरीका ! इन से बहुत अच्छी अक्ल और दिमाग़ के बहुतेरे पुतले ग़रीबी की क्रूर गोदी में पैदा होकर वहीं नष्ट हो जाते हैं। और बेटा, किताबों का रट्टा लगा कर और घोड़े दौड़ाने में बहादुरी दिखा कर आई० सी० ऐस० बन जाने से ही उसे अतिमानव और महामानव समझने की भूल करना महामूर्खता है। ये भी तुम्हीं लोगों से

हैं बेटा ! लेकिन इन्हें तुम से बहुत दूर हटा कर रखा जाता है। क्योंकि, यदि तुम इनकी पोल समझ लो, तो इस आई० सी० ऐस० नौकरशाही का निरंकुश शासन कैसे चले ?

"लेकिन मैं बहकता जा रहा हूँ। सर मेहता की बात तुमने कही है। यह मेहता वही है जिसने सन २१ के सत्याग्रह में हजारों भारतीयों पर गोलियां चलवायी थीं। उस समय यह एक जिले का डिप्टी कमिश्नर था। सन ३१ के आंदोलन में भी इसने कम कारनामें नहीं दिखाये। उसीके फलस्वरूप उसके नाम के पीछे यह सर की पूंछ लटक रही है। बेचारा मानव से पशु बन गया !"—कहकर स्वामी जी ठठा कर हंस पड़े। हंसते हुए बोले—"सर मेहता अब रिटायर हुआ है। अपने अतीत के पाप तो उसे अवश्य याद आते होंगे। आखिर मनुष्य ही तो है। और अब तो नौकरी का काम भी शिर से उतर चुका है। बैठा बैठा क्या करे ? अपने पापों को सोचता होगा, उन्हीं के प्रायश्चित्त के लिये अब साधु-सन्तों का पल्ला पकड़ रहा है। दुनिया में जितने भी कुकर्म करलो, साधुओं के पास जाते रहो, सुकर्मीपन का सर्टिफिकेट मिल जायगा। इहलोक-परलोक दोनों का रास्ता तुम्हारे लिये साफ !"—कहकर फिर स्वामी सर्वज्ञानन्द जी बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हंस पड़े। विज्ञान और प्रज्ञान ने केवल मुस्करा कर उनका साथ दिया।

स्वामी जी फिर बोले—"हां, आई० सी० ऐस० वाले की चर्चा छिड़ जाने से एक और बात याद आ गई। एक कोई आई० सी० ऐस० अपने जीवन की महत्वाकांक्षा में असफल होकर अध्यात्मवाद की ओर मुड़ा। पता नहीं, अध्यात्म-मार्ग में वह स्वयं कहां तक सफल हुआ, किन्तु अध्यात्मवाद की एक सुन्दर दुकान खोलने में सफलता उसे अवश्य मिली। इस दुकान का अखबारों, पुस्तकों और पैम्फलटों के ज़रिये विज्ञापन खूब हुआ। एक तो अध्यात्मवाद, तिस पर आई० सी० ऐस०

की दुकान ! कुछ पूछो मत बेटा ! अध्यात्मवाद की सेल (बिक्री) खूब होने लगी। देश-विदेश के युवा नर-नारी दुकान में आने लगे। ऐम० ए०, बी० ए० पास की। बेकारी का जलजला, लड़की की नौकरी भी दुर्लभ। बेकार रहने से समाज में बदनामी। चट इस अध्यात्मवादी दुकान में बैठ गये। कइयों ने अपनी पूंजी ही दुकान में लगा दी। बाद में वही कहावत—मूंड़ लिया, मांग खाओ। अपनी नाक कटी, दूसरों की भी कटनी चाहिये। प्रोपेगण्डा चल पड़ा। अध्यात्मवाद के आचार्य और इस दुकान के मुख्य मालिक अपनी सहयोगिनी के साथ पार्वती और परमेश्वर के रूप में प्रख्यात हुए। क्या कहा जाये बेटा ! आई० सी० ऐस० का पाखण्ड भी तो आई सी० ऐस० जैसा ही विशाल होगा न !

"तुम सोच रहे होगे बेटा, कि स्वामी जी ने दूसरों को बदनाम करने का ठेका ले रखा है, लेकिन सर्वज्ञानन्द यह नहीं चाहता, कि तुम लोग बग़ैर सोचे-समझे और बग़ैर देखे-सुने उसकी बातों पर विश्वास करलो। सर्वज्ञानन्द ने तो वही सब कुछ संक्षेप में तुम्हारे सामने रख दिया है, जो कि बीस साल की अपनी फक्कड़पंथी में उसने अपनी आँखों देखा है। यह उसके कानों सुनी और दिमाग़ की उपज नहीं है बेटा। सर्वज्ञानन्द स्वयं ऐसी संस्थाओं में रह चुका है, ऐसे आदमियों को नजदीक से देख चुका है। तुमने साधु-जीवन में प्रवेश करके बुरा नहीं किया। इसके गुण-दोष से तो परिचित हो गये ! लेकिन एक बात ! इस जीवन के गंदे तहखाने में बंद न रहकर बाहर निकलो। कुछ दिन रमते-राम बनकर दुनिया को देखो। खूब पढ़ो और खूब घूमो। केवल किताबी कीड़ा बन कर ही विद्वान नहीं बनते बेटा। वस्तुवादी बनो। बिना इसके वास्तविकता को परख नहीं पाओगे। रहस्य के पर्दे को अच्छी तरह उलट-पुलट कर नंगा करके देखने के प्रयत्न में लग जाओ। किसी की सुनो-

सुनाई बातों पर ही विश्वास मत कर बैठो, जो मैं स्वयं कह रहा हूँ उस पर भी नहीं।"—कह कर स्वामी जी चुप हो गये।

स्वामी जी को चुप होते देख विज्ञान ने पूछा—"स्वामी जी आपने बताया है कि मजदूरों की सोयी चेतना जगने लगी है; थे अंगड़ाई लेने लगे हैं। लेकिन ये मजदूर जगकर ही क्या करेंगे? अमीरों का ये क्या बिगाड़ लेंगे? नहन्नी कितनी भी तेज बन जाय, वह वृक्ष को थोड़े ही काट सकती है?"

मजदूरों की उपमा नहन्नी के साथ देते देखर स्वामी जी को गुस्सा हो आया। फटकार भरे स्वर में बोले —"गन्दे वातावरण में रहकर अक्ल भी गंदी हो जाती है। तुमने मजदूरों की उपमा नहन्नी से तो दी, लेकिन यह क्यों भूल जाते हो कि वृक्ष जिस धातु से काटा जाता है वह नहन्नी की ही धातु है। जब तक ये गरीब अज्ञान की नींद सोये रहेंगे, और दबकर भी बिखरे रहेंगे, तब तक कोई भी इन्हें जूते लगाता रहेगा, अपनी गुलामी की कड़ीं में जकड़े रखेगा। किन्तु इन जागृत् गरीबों की संगठित शक्ति का मुकाबला करने की हिम्मत सर्वशक्तिमान भगवान में भी नहीं, फिर भगवान के उन मुट्ठी भर एजेंटों की तो बात ही क्या?"

विज्ञान ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा—"तो स्वामी जी! क्या आप भगवान को भी नहीं मानते?"

स्वामी जी ने उसी जोश के साथ जवाब दिया—"नहीं बेटा! भगवान भी उर्वर मस्तिष्क की कल्पना के सिवा और कुछ नहीं। अभी तुम हँसोगे, सर्वज्ञानन्द को नास्तिक समझकर उस से घृणा भी करोगे। लेकिन बेटा! जब सर्वज्ञानन्द की ही भाँति गंदे और तंग तहखाने से निकल कर इस विशाल दुनिया को, इस विशाल मानव समाज को अपनी आँखों से देखोगे, देखने के आदी बनोगे और मनन करोगे, तो स्वयं किसी दिन समझ जाओगे, और तब सर्वज्ञानन्द की इस वाचालता को बड़े आदर और सम्मान के साथ याद करोगे।"

प्रज्ञान की आँखों में आँसू आ गये। माँ अन्नपूर्णा और सुरेंद्र की स्मृति ताज़ी हो उठी। उसकी सोयी वेदना पुनः जाग पड़ी। किन्तु स्वामी जी इस श्रोता की ओर दृष्टिपात तक न करके आवेश में कहते गये—"हिंदू जाति को धर्म-प्राण होने का बड़ा गर्व है। और भगवान को तो दुनिया का हर हिस्सा मानता है, किन्तु हिंदू-धर्म ने तो बंदर-भालुओं तक को देवी देवता के पद पर बिठा दिया है। बड़ा उदार धर्म है; पर इतनी उदारता होते हुए भी इस ने अपने ही एक बड़े अंग को अछूत और घृणित बना रखा है। और जब हिंदू-फ़िलासफ़ी (दर्शनशास्त्र) को ज़रा गौर से पढ़ो, तो पता चल जायगा कि भगवान का अब तक पता किसी को न लगा। सभी अँधेरे में टटोल रहे हैं। लाख प्रयत्न करने पर भी भगवान प्रत्यक्ष-गोचर न हो सका, अनुमानादि प्रमाणों का ही विषय बना रहा। लाखों वर्ष का प्रयत्न अब तक रहस्य ही बना रहा। अंत में हारकर भगवान का भक्त भगवान की ओर से कहता है—"मैं तो तेरे पास हूँ, मुझ को कहां ढूँढता है?" लेकिन वास्तव में नहीं, एक मृगतृष्णा के सिवा कुछ नहीं। अतः उस मृगतृष्णा से विरत होकर नर में नारायण को ढूंढने की चेष्टा करो। बेटा! यह सारा मानव-समाज ही नारायण है, भगवान है। जिस ने मानवता की पहचानने की चेष्टा नहीं की; जिसने मानवता को ऊपर उठाने का प्रयत्न नहीं किया, उसे भला भगवान कहाँ मिलेंगे? क्या जंगलों में, गुफाओं में, मन्दिरों में, या मस्जिदों में? नहीं, कदापि नहीं, हरगिज़ नहीं। इन स्थानों में सिवा अंधकार के तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, कुछ नहीं पल्ले पड़ेगा। और....."

इतने में रात के दस बजने का घण्टा बजा। स्वामी जी एकाएक रुक गये। बोले—"आवेश में समय का ध्यान नहीं रहा बेटा! बहुत समय होगया। तुम लोग भी भूखे होगे, तुम्हारी खोज हो रही होगी। और मुझे इसी बारह बजे की गाड़ी से जाना है।"

फिर विज्ञान की ओर मुड़ कर उन्हों ने पूछा — "तुम्हारा नाम क्या ह बेटा ?"

"विज्ञान।"—और प्रज्ञान की ओर अंगुली का संकेत करके उसने कहा — "इनका नाम नरेन्द्र नहीं, प्रज्ञान है स्वामी जी !"

"अहा ! कैसी अच्छी जोड़ी है ! — विज्ञान और प्रज्ञान। और शक्ल-सूरत भी तुम दोनों की राम--लक्ष्मण जैसी ही है। बड़ी अच्छी जोड़ी है। अच्छा बेटा विज्ञान, तुम भी तो चंद्रेश्वरानन्द के ही चेले हो न ?"

"जी !"—विज्ञान ने शरमाते हुए जवाब दिया।

"तुम्हें चेला बने कितने दिन हुए बेटा ?"

"दो साल।"

"अपने गुरु के बारे में मेरी कही बातों से बुरा तो नहीं मान गये ?"

स्वामी सर्वज्ञानन्द के व्यक्तित्व ने दोनों पर जादू कर दिया था। अब विज्ञान के दिल से सारी बाधा, सारी हिचक दूर हो गयी थी। उसने बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया — "बुरा क्यों मानूंगा स्वामी जी ? साँच में आँच कैसा ? गुरु जी के बारे में आपने जो कुछ भी कहा है उसमें रंचमात्र भी मिथ्या नहीं।"

प्रज्ञान को विज्ञान की बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह विस्मय और तुनक-भरे स्वर में बोला—"रंचमात्र भी मिथ्या नहीं ! तो तुम ने मुझ से अब तक बताया क्यों नहीं ?"

विज्ञान जरा शरमाते हुए बोला —"भैया प्रज्ञान ! मनुष्य की दुर्बलता सत्य बोलने में बाधक बन जाती है। और वह यह भी चाहता है कि अपनी नाक कटी, तो दूसरों की भी कटनी चाहिये। लेकिन मैं तुम्हें बड़ा प्यार करता हूँ, सगे भाई की भाँति। चाहता था कि प्रगट कर दूँ। और कुछेक दिनों से तुम्हारे उदास चेहरे और तुम्हारे प्रति गुरु जी के रुख में परिवर्तन को देख मैं भाँप गया कि तुम गुरुदेव की पकड़ में नहीं

आ रहे हो। सचेत करने के ख्याल से ही आज कथा में न जाकर तुम्हें समुद्र तट पर खींच ले आया। हम दोनों के भाग्य से स्वामी जी के दर्शन हो गये। शायद इतनी सफाई के साथ मैं न बता सकता।" फिर स्वामी जी की ओर मुड़ कर वह बोला—"और आज से मैं आपको गुरु मानता हूँ स्वामी जी!"

"और मैं तो पहले से ही इनका शिष्य हूँ।" प्रज्ञान ने कहा।

सर्वज्ञानन्द जी मुस्कराते हुए बोले —"लेकिन मैं तो मण्डलेश्वर या मठाधीश नहीं हूँ कि चेलों की जरूरत पड़े! मैं तो रमता-राम हूँ बेटा!"

प्रज्ञान ने कहा—"हम आपके गले का घेघा नहीं बनेंगे गुरु जी। कलकत्ता में एक भूखे अनाथ शिशु पर अकारण दया दिखा कर आपने ही तो मुझे साधु-जीवन की ओर आकृष्ट किया था; और फिर आपने ही तो इस प्रच्छन्न पाखंड का पर्दाफाश करके आज हमारी आँखें खोल दी हैं?"

सर्वज्ञानन्द जी बोले —"अच्छा ही हुआ बेटा, कि तुमने स्वयं इस जीवन में प्रविष्ट होकर इसकी पोल समझ ली, नहीं तो समझाने से भी न समझते। लेकिन देखो, यही उम्र है ज्ञानोपार्जन करने की। इस उम्र का एक-एक क्षण अमूल्य है। इसका एक क्षण भी नष्ट करना आत्म-हत्या के तुल्य है। मेरी बहुत-सी बातों का सच्चा तात्पर्य शायद अभी न मालूम होकर भविष्य में ज्ञात होगा, जब कि तुम लोग स्वयं अध्ययन-शील और विचार-शील बन जाओगे। मुझे अभी लाहौर जाना है। अच्छा, 'नमो नारायण'।" —कह कर पैर छूने का मौका दिये बिना लंबे डेग बढ़ाते स्वामी सर्वज्ञानन्द चलते बने।

: १४ :

"ओ बिटिया, ओ गौरी बिटिया!" अपने बैठकखाने में पैर रखते ही बाबू गौरीशंकर ने आवाज लगाई।

"आयी चाचा !" रसोई घर से ही गौरी ने आवाज दी, और एक मिनट बाद स्वयं बैठकखाने में आ खड़ी हुई।

"ले बिटिया, इसे ले जा। तेरे लिये लाया हूँ।" —कहते हुए बाबू गौरीशंकर ने मिठाई और फलों की एक पोटली गौरी के आगे बढ़ा दी।

अब गौरी जरा तुनक कर बोली—"नहीं चाचा, अब तुम्हें कभी बाजार जाने न दूंगी। जहां बाजार गये, कि मेरे लिये कुछ-न-कुछ जरूर चाहिये, जैसे मैं दुध-मुंही बच्ची हूं।"

"मेरे लिये तो तू दुध-मुंही बच्ची ही रहेगी, बिटिया ! तू तो मेरी वही सुनन्दा है जो आठ साल पहले मेरी गोद सूनी कर गयी थी।" गौरीशंकर ने रुमाल से आंखें पोंछते हुए कहा।

गौरी की आँखें भी गीली हो उठीं। आँचल के छोर से आँखें पोंछती हुई वह बोली—"खुद तो कभी कोई चीज अच्छी खाओ गे नहीं, सूखा खाना और रूखा पहनना। लेकिन गौरी को खिलाने-पहिनाने में निहाल रहते हो।"

बाबू गौरीशंकर प्यार-भरी दुत्कार के स्वर में बोले —"दुत् पगली ! इस बुड्ढे का अब खाना-पहिनना क्या ? तेरे तो अभी दिन हैं। देश और समाज की तू धरोहर है। इस धरोहर की उपेक्षा कर मैं अपराधी नहीं बनना चाहता बेटी !" —कह कर गौरी की पीठ थपथपाने लगे।

सहसा गौरी को रसोई घर की याद आ गयी। 'हाय ! कहीं दाल जली तो नहीं ?' कह कर वह रसोई घर को चल दी।

× × ×

बाबू गौरीशंकर जाति से खत्री थे। उम्र पैंतालीस के करीब थी। किसी एक स्थानीय कालेज में गणित शास्त्र के अध्यापक थे। बड़े आस्तिक थे। गांधी जी को अपना आदर्श गुरु मानते। उनके कहे पथ पर चलने की भरपूर चेष्टा करते और सफल भी होते। हृदय इनका बड़ा उदार था, हंसी-मजाक में भी कभी

किसी ने इन्हें असत्य बोलते नहीं सुना। स्वयं में भी किसी की निंदा नहीं करते, न आस्तिकों की प्रशंसा न नास्तिकों की निंदा। मुहल्ले के बच्चे इन्हें चाचा कहते। नेपाली खपरे में इनके एक पुश्तैनी छोटा मकान था। उसी में रहा करते। प्रतिदिन तीन बजे रात को ही मणिकर्णिका घाट पर स्नान करने जाते। तीस साल की उम्र में पत्नी गुज़र गयीं। माँ के मरते समय इनकी एक मात्र कन्या सुनन्दा दो ही साल की थी। लोगों के लाख आग्रह करने पर भी इन्हों ने दुबारा शादी नहीं की। सुनन्दा भी दस साल की होकर एक दिन पिता की गोद सूनी कर गई। तब से गौरीशंकर जी का जीवन योगियों का जीवन बन गया।

गौरीशंकर जी उस दिन स्नान करके गंगा जी में लगी पटरी पर बैठे, सन्ध्योपासन में लगे थे, 'मां गंगे! इस अबला को अपनी गोद में जगह दो मां'—यह मर्मतुन्द करुणा निवेदन उनके कानों में पहुंचा, और साथ ही गंगा में किसी के छपाक से कूदने की आवाज़ भी। वे सन्ध्या छोड़ लहमे भर मे उसी टीले पर जा चढ़े और गंगा के उस अथाह जल में कूद पड़े। गौरी तैरना नहीं जानती थी, किंतु अभी वह डूबी न थी, पानी पी रही थी, डूब रही थी, उतरा रही थी। इसी समय बाबू गौरीशंकर ने लपककर पानी पर उसके लहलहाते लंबे बाल पकड़ लिये, और फिर गौरी को बायीं बगल से दबाकर दाहिने हाथ से तैरते हुए थाह जल में आ गये। गौरी ने अपने को छुड़ाने की लाख कोशिश की, किंतु असफल रही।

"मुझे छोड़ दो! मर जाने दो।"—भर्रायी आवाज़ में अधबेहोशी की दशा में गौरी बोली।

"नहीं बेटी! मरेगी क्यों? धीरज धरो।"—गौरीशंकर जी ने कहा।

"तुम लोग न मुझे मरने देते हो, न जीने।"—उसी प्रकार करुणापूर्ण स्वर में गौरी फिर बोली।

गौरी की वाणी बाबू गौरीशंकर के कलेजे में चुभ गयी। पसीज कर बोले—"होश में आओ बिटिया!"

"नहीं, मुझे मरने दो। छोड़ दो मुझे।"

गौरीशंकर जी ने अधिक बोलचाल करना ठीक नहीं समझा। कुछेक मिनट बाद गौरी पूरी तरह होश में आ गयी। अपने भीगे कपड़ों में ही सम्हल के बैठ गयी। ब्रह्ममुहूर्त के स्नानार्थियों के आने का समय होगया था। गौरीशंकर जी इसे सार्वजनिक चीज़ बनाकर उस अबला को लज्जित करना नहीं चाहते थे। अतः वे अत्यन्त प्यार भरे स्वर में गौरी से बोले—"आठ साल पहले मेरी सुनंदा इसी गंगा में मेरी गोद सूनी करके चली गयी थी। आज वह तेरे रूप में फिर लौट आयी। अब मैं तुझे छोड़ने का नहीं बेटी। चलो, घर चलें। कुछ देर में लोग--बाग़ आ जायेंगे। मैं नाहक पंचायत इकट्ठा करना नहीं चाहता।"

गौरीशङ्कर की इस निर्मल निष्कपट वाणी ने गौरी के दिल में विश्वास जगा दिया। आखिर संसार में सभी मनुष्य बुरे नहीं होते। अच्छे भी होते ही हैं। भले ही उनकी संख्या कम हो। हरिहरपुर की लंपट युवक-मंडली में सुमन सरीखे सच्चरित्र उदार युवक को भी तो वह देख ही चुकी थी। बगैर कुछ बोले गौरीशङ्कर जी के पीछे पीछे वह चल पड़ी। पता नहीं, गौरीशङ्कर की उस दिन की संध्या-पूजा घर पर भी हुई या नहीं।

× × ×

गौरीशङ्कर जी कालेज से पढ़ाकर आते। गौरी पहले से ही उनके जलपान का इंतज़ाम किये रहती। एक अत्यंत साफ-सुथरी छोटी सी चौकी पर हाथ--मुँह धोने का सारा सामान धरा रहता। गौरीशङ्कर जी हाथ--मुँह धो स्वच्छ मन से जलपान

करने बैठते। गौरी प्यार भरे आग्रह से उन्हें और खिलाने की चेष्टा करती। और गौरीशङ्कर ज़रा रूठेपन का भाव दिखाते बोलते —"तुम तो दिन-पर-दिन मुझे अबोध बच्चा बनाये जा रही हो बिटिया।" और जवाब में गौरी बोलती—"और तुम भी तो मुझे अबोध बच्ची ही समझते हो चाचा।" और चाचा जवाब देते—"बाप के आगे बेटी तो सदा बच्ची रहेगी बिटिया।" और फिर जवाब में गौरी बोलती—और बाप भी ज्यों ज्यों बूढ़ा होता जायगा, त्यों त्यों वह बेटी के आगे बच्चा बनता जायगा।" इस प्रकार की अद्भुत प्रश्नोत्तरी पर दोनों ही खिल खिलाकर हँस पड़ते। और इसके बाद बाबू गौरीशङ्कर गौरी को पढ़ाने बैठ जाते।

गौरी की प्रतिभा आश्चर्यजनक थी। उसकी प्रतिभा पर चाचा जी मुग्ध थे। वे बड़ी लगन से गौरी को पढ़ाते, और वह उतनी ही लगन से उन्हें सुना करती। केवल दो साल के अंदर हरिहर-पुरी की वही निरक्षरा तिरस्कृता गौरी आज हर विषय में एक मैट्रिक-पास विद्यार्थी की अपेक्षा अधिक योगय और दक्ष बन गयी। उसकी प्रतिभा और प्रगति पर सभी आश्चर्य-चकित थे।

बाबू गौरीशङ्कर का घर राजनीति के हर विचार के व्यक्तियों का अड्डा था। वे स्वयं कट्टर गांधीवादी थे, किंतु सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट आदि प्रत्येक विचार के नवयुवक वहां इकट्ठे होते। सप्ताह में एक दिन उनकी नियत गोष्ठी होती। सभी खुलकर अपने विचार व्यक्त करते, गौरीशङ्कर जी मध्यस्थ की भाँति वहां बैठे रहते! उनके निर्णय का सभी आदर करते। वे इन युवकों को पुत्र से बढ़ कर प्यार करते। वे सब उन्हें 'चाचा जी' कहते। गौरी भी इस गोष्ठी में शामिल होती। सबके विचार सुनती, और अपने सुनाती। एक गँवई गाँव में पैदा हुई, और कुछ ही दिनों से शिक्षा के संपर्क में आयी इस युवती के सुलझे विचारों को सुनकर सभी दंग रह जाते।

एक दिन गौरी के परोक्ष में चाचा जी उन युवकों से बड़े मार्मिक स्वर में बोले—"न जाने कितने ऐसे रत्न गाँवों की मिट्टी में पैदा होकर, उसी में मिल जाते हैं। दुनिया उन्हें देख नहीं पाती। उन के प्रकाश से संसार लाभ उठा नहीं पाती। पुत्रो! गाँव की ओर मुड़ो। भारत माँ के असली रूप का दर्शन वहीं कर पाओगे। वहाँ तुम्हें गौरी जैसे अनेक रत्न बिखरे मिलेंगे। उन्हें एक सूत्र में पिरो कर संसार को आलोकित कर दो, मानवता को प्रकाशित करदो बेटा! गाँव समाज की रीढ़ हैं। गाँव ही समाज हैं, अतः गाँवों को जगाये बिना समाजवादी व्यवस्था की स्थापना आकाश-कुसुम ही बनी रहेगी पुत्रो!"

युवक-वृन्द बड़ी लगन के साथ चाचा जी की बातें सुनते। एक तो युवकों का हृदय, तिस पर चाचा जी की विशुद्ध निष्कपट वाणी। सीधे हृदय पर असर कर जाती। वे उस वाणी की वास्तविकता स्वीकार कर चुपचाप अपने घर जाते, और उसके अनुसार अपने भावी जीवन-निर्माण की बात भी सोचने लगते।

एक दिन गौरी अपना पाठ समाप्त होने के बाद चाचा जी से बोली—"तुम गांधी जी के इतने बड़े भक्त हो, रोज उनकी आरती उतारते हो, मगर एक बात देख कर बड़ा अचरज होता है चाचा! रमेश भैया और रामचन्द्र भैया जब-तब गांधी के बारे में कुछ कड़वी बातें कह बैठते हैं, और तुम नाराज बिल्कुल नहीं होते, बल्कि हंस कर उन्हें समझाने की कोशिश करते हो।"

चाचा जी मुस्करा कर बोले—"गौरी रानी, क्या तुझे अब तक पता नहीं चला, कि ये दोनों नवयुवक कितने उदार, कितने सरल और कितने शिष्ट हैं?"

गौरी बोली—"सो तो ठीक कहते हो चाचा! रमेश भाई और रामचंद्र भाई दोनों ही मुझे बड़े अच्छे लगते हैं, दोनों ही हीरा हैं।"

चाचा जी एकाएक आवेश में आ गये और कहने लगे—"हां बिटिया, ज़रूर हीरा हैं, देश के रत्न हैं। इन जैसे युवक ही

देश, समाज और मानव-जाति की आशा हैं, दलितों और दीनों के सच्चे बन्धु हैं।"—कहते २ चाचा जी की आँखों से आंसू के दो बड़े बूंद लुढ़क पड़े। फिर अंगोछे के छोर से आंखें पोंछ कर बोले—"रमेश अपने को कम्युनिस्ट कहता है, और रामचंद्र अपने को सोशलिस्ट। गरीबी को इन दोनों ने बड़ी अच्छी तरह पहिचाना है, बिटिया! दोनों ही गरीबी की क्रूर गोदी में पैदा हुए और पले हैं। दोनों ही गरीब के अभिशाप से तप्त हैं। जाके पैर न फटे बिवाई वो का जाने पीर पराई। कोई अमीर का सहृदय बच्चा अपने आलीशान बङ्गले में बैठ कर भले ही गरीबों के लिए आंसू बहा ले, अपने को गरीबों का बंधु या सेवक कह ले, किंतु उसके वे आंसू, उसका वह कहना तब तक निर्जीव और कृत्रिम बना रहेगा, जब तक कि वह स्वयं अमीरी को ठुकरा गरीबी की गोद में अपने आप को अर्पित नहीं कर देता। गरीबी में पैठ कर गरीबी के अभिशापों का स्वयं अनुभव नहीं कर लेता। देखने और अनुभव करने में बड़ा विशाल अंतर है, बिटिया! आलीशान अट्टालिका में बैठ कर अमीरों के समस्त उपभोगों को भोगते हुए गरीबों के नाम पर निरर्थक आंसू बहाने पर पाखंड का दोषारोपण करना अनुचित नहीं प्रतीत होता बिटिया! लेकिन गाँधी जी की बात और है। उन्होंने गरीबी में घुस कर गरीबी को पहिचाना है। गरीबों का खाना, गरीबों का पहिनावा, और गरीबों की झोंपड़ी को अपना कर ही वे गरीबों के प्रतिनिधि बनने का दावा कर सके हैं। और इसी में उनकी सफलता है, उनकी महत्ता है, और वे महात्मा पद के अधिकारी हैं।"—कह कर गौरी शङ्कर जी चुप हो गए।

उन्हें चुप होते देख गौरी बोली—"मगर चाचा जी, इस अच्छे मकान में रहकर भी जीवन तुम्हारा गरीबों जैसा ही है। तीन सौ रुपये तनखाह पाते हो, मगर निजी खर्च तुम्हारा दस रुपये माहवार का है। मैं जब से आई हूँ, खर्चा तुम्हारा

अवश्य बड़ा है, मगर तब भी पचीस से अधिक नहीं। बाकी रुपये लोगों में बांट देते हो। रमेश भाई, रामचन्द्र भाई जैसे कितने युवक तुम्हारे खर्च से पढ़ रहे हैं। शहर की कितनी अनाथाओं के तुम सहारा हो। दुनिया के किस महात्मा से तुम कम हो चाचा ?"—कहते २ गौरी का गला भर आया। वह आगे बोल न सकी।

गौरीशङ्कर जी गौरीको बाधा देते हुए बोले — "ना ना बिटिया ! यहां तुम्हारा पक्षपात है। अपने चाचा को इतना महान समझने की भूल न करो बेटा ! अभी चाचा तुम्हारा स्वार्थ के संकुचित दायरे से पूरी तरह निकल कहां पाया बिटिया ! अपनी नुश्तैनी सम्पत्ति से अब भी उसकी ममता दूर नहीं हुई। अब भी वह अपने-पराये के पचड़े में पड़ा है। हां, इतना अवश्य करता हूँ, कि अपनी आवश्यकता बहुत छोटी कर ली है, और आवश्यकता से अधिक अपने पास रखने को मैं चोरी समझता हूँ। गांधी जी का यह मत है, और इसी कारण मैं उन्हें अपना गुरु मानता हूँ।"

गौरी बोली—"लेकिन चाचा ! गांधी जी तो अमीरों को भी रहने देना चाहते हैं, गरीबों को भी। इस तरह तो अमीरी-गरीबी सदा बनी रहेगी, और साथ साथ संसार भी सदा नरक बना रहेगा।"

चाचा जी बोले—"लेकिन बिटिया ! गाँधी जी अमीरों को अमीरके रूप में नहीं बल्कि ट्रस्टी (संरक्षक) के रूप में रहने देना चाहते हैं। उनका कहना है, धनियों का जीवन सादा होना चाहिये, अपनी निजी आवश्यकताएं कम करनी चाहिये, और अपने लिये जरूरत से ज्यादा नहीं लेना चाहिये।"

गौरी फिर बोली — "लेकिन चाचा ! गाँधी जी के इस सिद्धाँत पर चलने वाले हैं कितने ? मैंने तो दुनिया नहीं देखी,

लेकिन मेरा विश्वास है कि सिवा तुम्हारे गांधी जी के आदर्श पर चलने वाला इस देश में और कोई नहीं। मैं गांव में गांधी जी के चेलों को देख चुकी हूँ।" एकाएक गौरीका चेहरा तमतमा उठा। वह बोली — "खद्दर की धोती और खद्दर की टोपी पहने ऐसे दर्जनों शैतानों को देख चुकी हूँ। स्वयं इनके चंगुल में फंस कर सब कुछ भुगत चुकी हूँ। मैं तो समझती हूँ कि इन के जैसा बईमान, दुराचारी और शैतान....."

गौरीशङ्कर उसे बीच में ही रोकते हुत बोले — "ना ना बिटिया, गुस्सा मत करो। किन्हीं दो चार के अपराध पर सारे गांधी-वादियों पर आक्षेप करना ठीक नहीं। सब एक जैसे नहीं होते। भले भी होते हैं, भले ही उन की तादाद कम हो। लेकिन इस में गांधी जी का क्या दोष ?"

गौरी तुनक कर बोली — "मैं गांधी जी को दोष कब देती हूं चाचा ! लेकिन गांधी जी के चेलों पर मेरा विश्वास कतई नहीं, एक तुमको छोड़ कर ! तुम स्वयं अच्छे हो, दुनिया को अच्छा समझते हो, और यदि तुम भी कांग्रेस के मेंबर होते तो.... ....."

गौरी एकाएक रुक गई। गौरीशङ्कर जी ठठा कर हंस पड़े। फिर बोले — "ठीक कहा बिटिया ! तब मैं भी खराब हो गया होता। क्यों यही कहना चाहती थी न ? अच्छा तेरा चाचा काँग्रेस का मेम्बर कभी नहीं बनेगा, नहीं तो खराब हो जायगा। बाहर रह कर ही कांग्रेस और देश का काम करेगा। अच्छा अब तो खुश हो गई बिटिया ?" — कहकर गौरी के लज्जावत सिर पर स्नेह भरी हलकी थपकी लगाने लगे।

गौरी लेकिन चुप रही। वह शरमा गई थी। गौरीशङ्कर जी उसकी शर्मिंदगी दूर करने के विचार से फिर बोले — "इसी तरह एक दिन रमेश ने भी अमीरी-गरीबी का प्रश्न छेड़ दिया। आवेश में आकर उसने गांधी जी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत की बड़ी

खरी आलोचना की। उस सिलसिले में गाँधी पर कुछ कटु आक्षेप भी कर दिये। मैं गांधी जी का भक्त ठहरा। उसकी बात मुझे बुरी लगी। क्रोध आ गया। लाख अपने को रोकने की कोशिश करने पर भी मैं उसे बुरी तरह फटकार बैठा। मुझे कभी गुस्सा में उसने देखा नहीं था। मेरा क्रोध देख वह तो बच्चों की तरह रो पड़ा। बिटिया ! मुझे अपनी गलती महसूस हुई ! पछतावा होने लगा। भक्त अपने उपास्य के गुणों को ही देखता है। गलतियों की ओर से वह अंधा बन जाता है। रमेश गांधी जी की श्रद्धा तो करता किन्तु वह मुझ जैसा अंध-भक्त नहीं। गांधी जी के गुणों की जब-तब खूब तारीफ करता, किन्तु जब-तब उनकी त्रुटियों की कटु आलोचना भी किये बिना न रहता। जो भी हो, गाँधी जी भी तो मनुष्य ही हैं। मनुष्य सदा अपूर्ण रहता है बिटिया ! फिर मैं ने बड़े दुलार और पुचकार के साथ अपने रोते रमेश को मनाया। जानती ही तो हो बिटिया, कि रमेश मेरे लिये क्या कुछ है !" — कहते कहते चाचा जी की आँखें डबडबा आयीं।

अब रमेश के प्रति चाचा जी का हृदय उमड़ पड़ा। बीती बातें याद आ गईं। अंगोछे से आंखें पोंछते हुए बोले—"बारह साल पहले की बात है ! रमेश की उम्र उस समय बारह साल की थी। कबीर चौरा अस्पताल के आगे हाथ फैलाये लोगों से भीख मांग रहा था। संयोग से मैं भी उस रास्ता से गुजरा। 'भूखा हूँ बाबू जी, एक पैसा दो'—कहकर मेरे आगे हाथ फैलाये आ पहुंचा। 'भूखा हूँ बाबू जी' —उस शिशु की यह दर्द भरी वाणी तीर की तरह हृदय में आ चुभी। मैं खड़ा हो गया। उस के घर के बारे में पूछा। बेचारा रो पड़ा। बताया कि अहीर का बच्चा है। माँ-बाप हैजे में मर गये। चाचा ने घर से निकाल दिया। दो दिन का भूखा है। मेरा दिल पसीज गया मैंने पूछा—

'नौकरी करेगा ?' उसने कहा—'हां बाबू जी !' उस अनाथ शिशु के चेहरे पर कृतज्ञता के भाव स्पष्ट अंकित होते देखे।

"उसे घर ले आया नौकर बनाकर, लेकिन बाद में वह बेटा बन गया। मेरी सुनंदा उस समय आठ साल की थी। मैं दोनों को एक दृष्टि से देखने लगा। मुहल्ले के लोग यही समझते कि वह मेरा नौकर है। लेकिन उस का पहनावा-ओढ़ावा देख मन-ही-मन जलते। सुनंदा उसे बड़े भाई की भाँति प्यार करने लगी। मेरा दया और ममता भरा व्यवहार देख कर पहले तो यह निरीह शिशु चौंकता, हिचकिचाता और शरमाता, किंतु कुछ महीनों में ही उसकी सारी बाधा और हिचक दूर हो गई। वह मुझे पिता की तरह प्यार करने लगा। अब अच्छा खाता अच्छा पहनता। रमेश को देख कर क्या मजाल कि कोई कह सके कि वह गंवई गांव में पैदा हुआ किसी गरीब अहीर का लड़का है।

"मै सुनन्दा और रमेश दोनों को पढ़ाने लगा। बुद्धि दोनों की ही बड़ी तेज थी। सुनन्दा तो मां गंगा की भेंट हो गई" कहते २ गौरीशङ्कर जी की आँखें डबडबा आईं। अंगोछे के छोर से गीली आँखें पोंछ कर फिर बोले—"सुनन्दा तब दस साल की थी। रमेश चौदहवां पूरा कर पन्द्रहवें में पैर रख चुका था। दोनों भाई-बहिनों में बड़ा प्रेम था। वैशाख का महीना था। हम तीनों एक साथ सवेरे नहाने जाते। उन दिनों तीन बजे नहाने की मेरी आदत न थी। मैं गंगा जी में लगी पटरी पर बैठ कर संध्या-पूजा करता, रमेश और सुनन्दा गङ्गा में तैरते। सुनन्दा बड़ी तैराक बन गई थी। मैं भी उसे उत्साहित करता। एक दिन दोनों तैरते २ गङ्गा के उस पार पहुंच गये। फिर दोनों लौट चले। बीच धारा में पहुंचकर सुनन्दा चिल्लाई — "बचाओ

भैया, मैं डूबी।' रमेश उसकी ओर लपका, लेकिन तब तक सुनन्दा गङ्गा की भेंट हो चुकी थी।"

गौरीशङ्कर जी की आंखों से सहसा आंसुओं के कई बूंद लुढ़क पड़े। गला रुंध गया, और उधर गौरी की आंखें मानो शान्त झरना बन गयी थीं। कुछेक क्षण बाद स्थिर होकर वे फिर बोले — "मैं सन्ध्या-पूजा में लगा तो था, किन्तु आंखें मेरी उसी ओर थीं। तड़फड़ गोमुखी को आसन पर डाल मैं स्वयं गङ्गा में कूद पड़ा। मल्लाह भी अपनी २ नावें लेकर दौड़े। लाख कोशिश की गई, लेकिन न मिली सुनन्दा, और न मिली उसकी लाश। रमेश की तो कुछ पूछो मत। वह तो शोक में अधीर हो उठा था। नाव पर बैठे २ जब उसने देख लिया कि सुनन्दा नहीं मिली तो निराश हो वह गङ्गा में कूद पड़ा। मैं तो हाहाकार कर उठा। उसे निकालने मैं भी कूदा। रमेश डुबकी मार कुछ दूर चला गया था। शायद अंदर ही अंदर पानी पीता जा रहा था। कुछेक मिनट बाद वह अध बेहोशी की दशा में पकड़ में आया। तात्कालिक उपचार के बाद मैं रोता-रोता उसे साथ लिये घर आया। तीन दिन तीन रात रमेश ने मुंह में एक दाना भी नहीं लिया। दिन-रात चुपके २ रोता रहता, लेकिन मनुष्य की स्मृति छोटी होती है। हम लोग धीरे धीरे सुनन्दा को भूलते गये।

"लेकिन उस दिन एकाएक मां गंगा ने मेरी सुनंदा को मुझे लौटा दिया। चन्द्रमा की धीमी रोशनी में तेरा विषाद भरा चेहरा देखा तो मैं निहाल होगया बेटी! सुनंदा और तेरे चेहरे में अद्भुत समता देख मैं तो अवाक् रह गया। मन-ही-मन माँ गंगा को प्रणाम करते हुए बोला —'धन्य! अखिल लोक वन्द्ये, मां सुरसरि धन्य! मेरी धरोहर बिन माँगे मुझे लौटा दी!' और तब से बिटिया, मैं तो मां गंगा का अनन्य भक्त बन गया हूँ।"— कहकर दीवाल पर टंगे शिशु सुनंदा के चित्र की ओर मुस्कुराते

अंगुली का निर्देश करके बोले—"देख तो बिटिया, यह तेरा ही बचपन का फोटो है न ?" किंतु गौरीके चेहरे की ओर देखते ही चौंककर बोले—"तू रो रही बिटिया ! ना, ना, रो मत मुन्नी !" कहकर गौरी का शिर अपने जंघे पर लेकर स्नेहमय हल्के हाथों से उसकी पीठ थपकाने लगे, और अपने अंगोछे की छोर से उसके आँसू पोंछने लगे।

गौरी शांत होकर सम्हल के बैठ गयी, और गौरीशङ्कर जी अपनी कथा का शेषाँश पूरा करने के ख्याल से फिर बोले—"लेकिन उस दिन से रमेशका दिल यहाँ रहकर पढ़ने में नहीं लग रहा था। उसे छात्रावास में रखा दिया। मैट्रिक परीक्षा में वह प्रांत भर में प्रथम आया था। तब से उसका यह क्रम अब तक जारी है। अब वह ऐम० ऐस० सी० के प्रथम वर्ष में है ! और तुम जानती ही हो कि बी० ऐस० सी० की परीक्षा में गत वर्ष प्रथम आया था। छात्रवृति उसे सदा मिलती रही है; मैं भी मदद करता हूँ। छात्रावास में रहता है, गर्मी की छुट्टियों में मेरे ही आग्रह पर बाहर चला जाया करता है। गाँवों में घूमकर हर साल नये अनुभव लेकर आता है, और फिर अध्ययन में जुट जाता है। आज वह विश्व विद्यालय के सब से सफल छात्रों में गिना जाता है। फिर तू ही बता बिटिया, ऐसे युवक के विचारों का आदर क्यों न किया जाये ? हो सकता है मैं ही गलत रास्ते पर होऊं, लेकिन हम तो अब बुड्ढे हो गये। हमारा संस्कार भी बूढ़ा हो चला। हम से जो बना, किया ! हमारे बाकी काम को ये ही नवयुवक पूरा करेंगे न। अपने नये विचारों, नये अनुभवों और नये आदर्शों पर नये संसार निर्माण करेंगे। हम बूढ़ों को इस में अड़ंगा नहीं डालना चाहिये।"

इतने में रमेश अपने छात्रावास से वहां आ पहुंचा। बात वहीं रुक गई। तब कहीं गौरी और गौरीशङ्कर जी को पता चला कि इस कथा-वार्ता में काफी समय बीत गया है। वक्ता-श्रोता

किसी को ध्यान नहीं रहा। गौरी झटपट उटकर रसोई-घर को चल दी, और गौरीशङ्कर जी रमेश से बातें करने में लग गये।

: १५ :

सन १६३६ की बात है। मार्च का महीना था। बनारस में प्लेग ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। घर के घर सूने हो गये। अमीरों के लिये अनेक उपाय थे — डाक्टरों का, अस्पताल का और शहर छोड़ कर बाहर जाने का। लेकिन गरीबों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा था। कितने बच्चे अनाथ बन गये। कितनी स्त्रियां विधवाएं बन गयीं। न कोई देखने वाला, न कोई सुनने वाला! सभी अपने शिर की आग बुझाने में लगे थे। कहते हैं 'दुखियन के एक राम'। पता नहीं राम ने कितनों की खबर ली। हां, दया करके बहुतों को अपने पास अवश्य बुला लिया। लेकिन यहां तो बिलखती गरीब बेवाओं और रोते अनाथ शिशुओं की खबर लेते उन्हें किसी ने भी नहीं देखा। फिर भी इस स्वार्थ भरे संसार में भी कुछेक ऐसे नर हीरे अवश्य थे, जो जान की बाज़ी लगा के इन दुखियों, इन अनाथों की सेवा कर रहे थे।

गौरी, गौरीशङ्कर, रमेश और रामचन्द्र कुछेक अन्य निर्भीक ऐसे उदार युवकों की मदद से इस मुसीबत के दिनों में बड़ी खूबी और तत्परता से दीनबंधु भगवान का काम बिना जा रहे थे। रामचन्द्र ने डाक्टरी की अन्तिम परीक्षा पास कर उसी साल अपनी प्रैक्टिस शुरू की थी, अतः रोगियों की चिकित्सा का भार उसी -पर था। गौरी नर्स (धात्री) का काम सम्हाले थी। रमेश और गौरीशंकर महल्ले २ जाकर रोगियों को इक्के पर लाद २ कर अपने सेवाश्रम में ले जा रहे थे। इस काम के लिये चाचा जी ने एक स्वतंत्र इक्का खरीद लिया था। गौरीशङ्कर जी के स्वर्गीय पिता बाबू रामशङ्कर खत्री ने शहर से

बाहर खड़ी गैबी पर तीन एकड़ जमीन खरीद कर उस में बगीचा लगा दिया था। इस समय यही बगीचा सेवाश्रम में परिणत हो गया था।

आश्रम में केवल रोगियों की ही नहीं, बल्कि दिवंगत रोगियों की अनाथ विधवाओं और बच्चों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती ही जा रही थी। बाबू गौरीशङ्कर अपना एक मात्र पैतृक मकान बंधक रख कर आश्रम को चला रहे थे। फूस की छोटी छोटी अनेक झोंपड़ियाँ बना ली गयी थीं। हर झोंपड़ी में लालटेन या दीपक न जला कर आश्रम के आंगन में गैस की रोशनी का प्रबन्ध था। दो-तीन लालटेनें भी थीं। गैबी का पानी अपनी स्वास्थ्य वर्धकता के लिये प्रसिद्ध है ही। शहर के बहुतेरे स्वास्थ्य लोभी केवल पानी पीने वहाँ प्रति दिन पहुंचते। अतः आश्रम के लिये भी पानी का कष्ट दूर हो गया था, लेकिन आश्रम के औरत-बच्चों का अस्वच्छ जीवन कष्ट कारक अवश्य था।

गौरा आश्रम की अधिष्ठा भी थी। वह सब को समझाती। साफ-सुथरे जीवन का उपदेश देती। कई समझदार और सुशील औरतों से नर्स का काम लेती, क्योंकि रोगियों की संख्या सदा सौ से ऊपर ही रहती। कुछेक उत्साही नवयुवक भी इस काम में गौरी का हाथ बटाते। रामचन्द्र हर समय अपने साज-सामान के साथ तैयार रहता। सारा आश्रम रोगियों की वेदना से कराह रहा था। प्लेग की दारुण पीड़ा से बेचैन रोगियों को गौरी का मां-बहन जैसा व्यवहार शान्ति प्रदान करता। उनकी मृत्यु की विभीषिका कम हो जाती।

किन्तु इस करुणापूरित आर्त परिस्थिति के बीच भी आश्रमस्थ औरत-बच्चों का आदती मनोरञ्जन कभी २ कुत्सित रूप धर लेता। कभी दुनुआ धीरे से दुनुओ के कान ऐंठ देता। दुनुओ क्यों चुप रहने लगा! वह भी बड़े भैया की पीठ पर

मुक्का दे मारता। फिर टें-में मच जाती, और भुनिया अपने रोते शिशुओं को चुप कराने के बजाय दोनों पर दो लात जमा के बड़बड़ाने लगती—'दूर हो यहां से ! मर जा मुँह जले के नाती ! कलमुँहा खुद मरा मेरे सिर दो वबाल छोड़ गया !' उधर रामपिआरी के बच्चे ने रूपमंती के बच्चे को खेलते खेलते एक चपत लगा दी। बच्चा रोता माँ के पास आया। शिकायत की। बस क्या था ! रूपमंती गरजती हुई रामपिआरी के पास पहुँची और एकाएक बरस पड़ी—'बच्चा जिआने का बड़ा शौक चर्राया था, फिर सम्हालती क्यों नहीं ? तेरे नवाब के बच्चे ने मेरे लल्लुआ का खून कर दिया।' और रामपिआरी इस चुनौती को कब बर्दाशत करने लगी ! हिडिंबा बन कर खड़ी हो गयी और महाभारत मचा दी। फिर गौरी की फटकार, डाक्टर की धमकी और बाबू गौरीशङ्कर का आगमन सब मिलकर कलह को शाँत करते।

हाय री जिंदगी ! मौत की विभीषिका को सामने खड़ी देख कर भी तू अपने ढर्रे को जारी रखेगी।

महीने भर बाद प्लेग काप्रकोप शांत हुआ। सेवाश्रम के स्त्री-बच्चों की प्रकृति भी बहुत कुछ शाँत होगयी ! रोगियों में से बहुतेरे मरे ! जो अच्छे हुए अपनी रोजी की खोज में चले गये। लेकिन कुछ मरे रोगियों की अनाथ विधवाएँ और बच्चे अब कहाँ जायँ, क्या करें ? उनकी संख्या साठ से ऊपर थी। रहने को घर नहीं, जीवन का कोई सहारा नहीं। बेकारी मुँह फैलाये सर्वत्र खड़ी दीखती। अपने हाथ-पैर चलाकर भी रोटी का कोई उपाय नहीं।

गौरीशङ्कर जी बड़े पसोपेश में पड़ गये। क्या करें ? इन अनाथों का क्या किया जाय ? आँखों में आँसू भर आये। अपने बैठकखाने में बैठे थे। सामने गौरी, रमेश और रामचन्द्र भी बैठे थे। सब को लक्ष्य करके बोले —"बोलो बच्चो ! अब इनका क्या किया जाय, इन अनाथों को कहां भेजा जाय ?"

सभी चुप रहे। किसीकी समझ में कुछ आ नहीं रहा था। अन्त में गौरी ज़रा हिचकिचाते हुए बोली —"अच्छा चाचा ! अगर एक उपाय किया जाये तो कैसा रहे ?"

"कौनसा उपाय बिटिया ?" — चाचा जी ने पूछा।

"आश्रम को कायम रखा जाये, और इन्हें पढ़ाने-लिखाने के साथ दस्तकारी का काम सिखाया जाये।"

"कैसी दस्तकारी बिटिया ?"

यही जैसे चर्खे चलाना, कपड़े बुनना, बेलबूटे काढ़ना आदि। और इन चीज़ों को बाज़ार में बेच कर आश्रम का खर्च चलाया जाये। मैं, तुम, रमेश भाई और रामचन्द्र भाई यहीं रहेंगे। इन सब को पढ़ा-लिखा कर देश के योग्य नागरिक बनायेंगे। क्यों चाचा ?"

चाचा जी का चेहरा खिल उठा। बड़े प्रसन्न होकर गौरी की पीठ ठोकते हुए बोले — "वाह बिटिया वाह ! तुमने बड़ी अच्छी बात सुझाई। इतनी सीधी सी बात अब तक हमारी समझ में नहीं आ रही थी। अच्छा रमेश, हां भई रामचन्द्र, तुम लोग भी तो पढ़-लिखकर तैयार हो चुके हो ! बोलो, तुम्हारी क्या राय है ?"

रमेश और रामचन्द्र एक साथ बोले — "गौरी बहिन का सुझाव बड़ा अच्छा है चाचा।"

चाचा जी बोले — "अच्छा, तो चलो पुत्रो ! इस छोटी गृहस्थी से बड़ी गृहस्थी में प्रवेश करें। छोटी दुनिया से बड़ी दुनिया में पैर रखें। स्वयं मानव बनें और दूसरों को मानव बनायें।"

: १६ :

'अपने प्रिय पुत्र पर अत्याचार होते देख सुमन की माँ उसी क्षण चल बसी। उस दुःसह अत्याचार को पुत्र-वत्सला माँ बरदाश्त

न कर सकीं। सुमन उस रात कुछ खाया भी नहीं था। भूखा ही मां की अरथी के साथ श्मशान भूमि को गया, और अंत में मां की बुझी चिता की प्रदक्षिणा कर गहन अंधेरे की गोद में सदा के लिये विलीन हो गया।' ये सारी बातें याद आते ही हरिनाथ बाबू का हृदय मारे शोक के पागल हो गया। सुमन की खोज में गये आदमी जब खाली हाथ लौट आये, तो हरिनाथ बाबू सुमन का नाम लेकर चिंघाड़ मार कर रो पड़े, और दूसरे ही क्षण मूर्छित हो जड़ कटे वृक्ष की भांति अर्रा कर नीचे गिर पड़े। रोती हुई पार्वती दौड़ी, भुवन दौड़ा, और पड़ोस के कई दूसरे भी दौड़े। जल के छींटे डाले गये, नाक दबाई गयी, तब कहीं जाकर वृद्ध का होश पलटा। होश पलटते ही फिर सुमन-सुमन कह कर फूट फूट कर रोने और छाती पीटने लगे। वृद्ध का विलाप देख सबकी आंखें गीली हो उठीं। भुवन भी मुंह लटकाये खड़ा था।

पार्वती रो रही थी, रो-रो कर पिता को समझा रही थी, धीरज बंधा रही थी। सुमन के जल्द लौटने की आशा दिला रही थी, यद्यपि वह स्वयं जानती थी, कि सुमन सरीखा स्वाभिमानी फिर लौटने का नहीं। हरिनाथ बाबू भी यह जानते थे। निराशा उनके दिल में जड़ जमाती जा रही थी। ज्यों २ वह बढ़ती जाती उनका शोक भी बढ़ता जाता था। भोजन से अरुचि हो गई, नींद आंखों से रूठ गई। अक्सर एकांत में दुनक २ कर रोते। चित्त अशाँत हो गया, जीवन दूभर बन गया।

अंत में हरिनाथ बाबू ने बिछौना पकड़ लिया, उन्हें बुख़ार रहने लगा। पिता की दशा देख पार्वती डर गई और हर समय उनके पास रहने लगी। हर तरह से बूढ़े को समझाती। हरिनाथ छाती पीटते और रो-रो कर कहते—'हाय! मेरा तो सत्यानाश हो गया! पत्नी से हाथ धोया, पुत्र से हाथ धोया। मेरा बच्चा बिना खाये-पिये चला गया। चलते समय उसका मुंह भी नहीं

देख पाया रे ! —कहकर विलख-विलख कर रोने लगते। पार्वती भोजन का आग्रह करती। हरिनाथ रोते हुए बोलते — "किस दिल से खाऊं ? मेरा सुम्मू क्या खाया होगा ? कहां होगा ? किस हालत में होगा ?" और फिर रोने लगते। किन्तु पार्वती उन्हें जबर्दस्ती अबोध बच्चे की भाँति अपने हाथ से खिलाती, अपने हाथ से नहलाती, और खुद बिछौने पर सुलाती।

पिता से अलग होने में पार्वती को अब भय होने लगा। भुवन भी जब-तब पिता के सामने आता। पर न जाने क्यों भुवन से उन्हें अरुचि हो गई। उसकी बातों का जवाब तक देने में उन्हें घृणा होती। उससे बोलना तक बंद कर दिया। पार्वती कुछ क्षण के लिये भी यदि उनसे अलग होती तो वे विकल हो जाते। गिड़गिड़ाते स्वर में बोलते — "सुमन छोड़ गया, मां तुम्हारी छोड़ गयीं। लेकिन तुम इस अभागे को न छोड़ देना बिटिया।" — कहकर रो पड़ते। पार्वती भी रोने लगती। फिर धीरज बन्धाती बोलती — "मैं कहां जाऊंगी तुम्हें छोड़ कर बाबू जी ? मगर इतना अधीर क्यों होते हो ? सुमन जरूर आवेगा। मेरा दिल कह रहा है।" हरिनाथ बाबू उसी प्रकार करुणापूरित स्वर में बोलते — "नहीं बिटिया, वह फिर आने का नहीं। वह देवता था देवता ! किसी शाप से मानुस योनि में जन्म लिया। वह फिर हम पापियों के पास क्यों आने लगा ? हाय ! हरि को खो कर हरि को पहचाना ! उस दिन कौनसा पाप मुझ पर सवार हो गया था ....." और फिर रोने लगते।

इसी बीच सुमन की माँ का श्राद्ध संपन्न हुआ। सारे मण्डल के ब्राह्मण जिमाये गये। श्राद्ध में कोई त्रुटि न रखी गई। भुवन ने दिल खोलकर खर्च किया। किन्तु यह सब देख-देख कर हरिनाथ बाबू का शोक और उमड़ आता। हृदय इनका हू-हूकर रोने लगता। मनुष्य की स्मृति छोटी होती है — यह कहावत उनके लिये झूठी साबित हो रही थी।

एक दिन पार्वती पिता के सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। हरिनाथ बाबू आंखें बंद किये किसी विचार में डूबे थे। फिर सहसा पार्वती का हाथ पकड़ के बड़े ही प्यार-पूरित स्वर में आहिस्ते से बोले — "बिटिया ! ज़िंदगी का कोई ठिकाना नहीं। कल क्या होगा, पता नहीं।" क्षण भर रुक कर फिर बोले — "मेरे तीन बच्चे हैं — पार्वती, भुवन और सुमन। दो मौजूद हैं। तीसरे को फिर इस जन्म में देखूंगा आशा नहीं।"—कहकर हरिनाथ बाबू रो पड़े। कुछ देर रोते रहे। फिर पार्वती के आश्वासन और आँसुओं के निकलने से दिल हल्का होने पर बोले — "मैं चाहता हूँ पार्वती, कि अपनी जायदाद का बटवारा अपनी ज़िंदगी में ही कर जाऊं, बराबर-बराबर तीन हिस्सों में। और उन में से एक हिस्सा तुमको मिलेगा।"

"मैं हिस्सा लेकर क्या करूंगी बाबू जी ?"—उदासीनता भरे स्वर में पार्वती बोली।

"जो दुनिया के और लोग करते हैं।" — हरिनाथ बाबू ने कहा।

"मैं अकेली हूँ। इतनी बड़ी जायदाद लेके क्या करूंगी ? जब तक जीना है, आधा सेर अन्न और दो वस्त्र मेरे लिये काफी हैं।"

"वही अन्न-वस्त्र तुम्हें सम्मानपूर्वक मिलना चाहिये बेटी, न कि भुवन के घर की नौकरानी बन कर।"

सन्तान-वत्सल पिताकी बातें सुनकर पार्वती का हृदय भर आया। आंखें गीली हो उठीं। उफनती रुलाई को रोक कर वह बोली — 'किसी के घर की नौकरानी क्यों बनूंगी बाबू जी ? क्या मैं इस बातको भूल जाऊंगी कि मैं भी तुम्हारी ही संतान हूँ ?'

हरिनाथ बाबू ज़रा सूखी हंसी हंसकर बोले — "तुमने अभी दुनिया नहीं देखी बिटिया ! यही सब तो देखते २ हरिनाथ के बाल सफेद हो गये। मुझे विश्वास है कि तुम्हारे हाथ में

पड़कर मेरी जायदाद बरबाद न होगी। भुवन भले ही बरबाद कर ले। यह भी जानता हूँ कि तुम्हारे बाद इस जायदाद का भोग भुवन के बाल-बच्चे ही करेंगे। तो फिर मैं अपनी बिटिया को उस की बची ज़िंदगी के लिये रानी क्यों न बना जाऊं? खाना खायेगी, कपड़े पहनेगी, आदर और सम्मान के साथ। बाद में तुम्हारी मर्ज़ी है कि अपनी जायदाद के साथ भुवन के साथ रहो, या उससे अलग हो जाओ।"

"मगर बाबू जी, आपकी यह इच्छा मेरे नाम दस-पाँच बीघे ज़मीन लिखकर भी तो पूरी हो सकती है?"

"जैसे दस-पांच बीघे, वैसे चार सौ बीघे। तुम्हारे लिये सब बराबर हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे निजी खर्च के लिये दस-पांच बीघे भी बहुत ज्यादा हैं, लेकिन मैं ने तो अपने तीनों बच्चों को एक आंख से देखा है, समान प्रेम से पाला है। तो फिर कन्या होने के कारण ही क्या तुम्हें जायदाद के समान हिस्से से वंचित कर दूं? एक बात और। सुमन चला गया। क्या पता वह फिर कभी आ जाये....." हरिनाथ बाबू रो पड़े। आँखें पोंछ कर क्षण भर बाद फिर बोले — "भुवन को मैं पहचानता हूँ। बड़ा स्वार्थी है, नीच भी है। मैं उसकी दृष्टि में किसी भी तरह तुम्हें नीचा नहीं रखना चाहता बिटिया! यदि मेरे मरने के बाद तुम्हें किसी तरह का कष्ट या अपमान हुआ तो वहाँ भी मेरी आत्मा रोती रहेगी। अपने लिये न सही, कम से कम मेरे लिये तो मान जाओ मेरी रानी!" — कहकर हरिनाथ बाबू चुप हो गये। जवाब में पार्वती भी कुछ न बोली।

भुवन दस-पांच दिन के लिये गाँव से बाहर गया हुआ था। इसी बीच हरिनाथ बाबू ने मधुवती आदमी भेज कर अपने वकील हरिवंशराय तथा रजिस्ट्रार सुखसंपत्ति लाल को अपने यहाँ बुलवा लिया। गाँव के सभी धनी-मानी भी बुलाये गये। सब के सामने हरिनाथ बाबू ने अपना अभिप्राय प्रकट किया।

सबने एक स्वर से उनके विचार को सराहा। हरिवंशराय ने मसौदा तैयार किया। स्टांप-लगे कागज़ पर मुन्शी ने उसे लिखा, और रजिस्ट्रार ने अपनी मुहर लगाकर उसे पक्का कर दिया। अब पार्वती तीन सौ एकड़ ज़मीन की मालकिन बन गयी। सभा विसर्जित हुई। अपनी अपनी दक्षिणा लेकर वकील व रजिस्ट्रार साहेब भी चलते बने।

दूसरे दिन भुवन घर आया। अपनी पत्नी प्रतिमा के मुख से सारी बातें सुनकर उसकी तो देह में आग लग गई। स्वार्थ ने उसे अंधा बना दिया। हिताहित ज्ञान उसका लुप्त हो गया। उसी क्षण बड़बड़ाता हुआ पिता के पास पहुंचा और कड़क कर बोला — "बाबू जी! तुमने यह क्या किया है?"

"क्या किया है बेटा?" – हरिनाथ बाबू ने उपेक्षा भरे स्वर में पूछा।

"यह जायदाद का बटवारा?"

"जो ठीक जंचा वही किया है।"

पिताका उत्तर सुनकर अपनी अब तक की नकली नम्रता का नकाब उतार कर फैंक दिया। नितांत उद्दण्डता के साथ पिता की नकल उतारते हुए हाथ-मुंह चमका कर बोला — "जो ठीक जंचा वही किया है! बड़े बाप बनने चले हैं! डाकू, कसाई, चण्डाल कहीं का! बेटे के गले में चाकू लगाकर न्यायी बनने चले हैं! ऐसा तो कभी नहीं सुना कि बेटे के रहते बाप के धन में बेटी को हिस्सा मिले! यह कहाँ का रेवाज है?"

भुवन एक सांस में ही बग़ैर समझे-बूझे यह सब बक गया। उसने यह सोचने की ज़रा भी परवाह न की, कि इसका परिणाम बिल्कुल उसके हित के विपरीत घटेगा! यद्यपि व्यवहारिक ज्ञान या चतुराई का उस में अभाव न था, किन्तु स्वार्थ पर इस आकस्मिक आघात ने उसके सारे ज्ञान और चतुराई को चकनाचूर कर दिया।

भुवन के उद्दण्ड और असभ्य उपालंभ ने हरिनाथ बाबू के जले दिल पर नमक का काम किया। वे चिढ़ कर बोले — "मेरी जायदाद है। मैंने उपार्जन किया है। मेरी खुशी, जिसे चाहे दे दूं! तू कौन होता है बोलने वाला? और यह तो मेरी अपनी बेटी है।"

जवाब में भुवन मुंह ऐंठ कर बोला — "अपनी बेटी है! बेटी है, तो बेटी को बेटी की तरह देना चाहिये! दो-चार बीघे ही काफी थे। बेटी को बेटा के बराबर हिस्सेदार बनाते तो मैंने कहीं नहीं देखा?"

हरिनाथ बाबू और अधिक खिसिया कर बोले — "कहीं नहीं देखा तो यहां देख ले!" फिर पार्वती की ओर मुड़ कर बोले — "तू तो नहीं न मान रही थी! कह रही थी, ज़मीन जायदाद लेके मैं क्या करूंगी? देख ले! इसी भाई पर तू विश्वास करने चली थी? यह स्वार्थ का पुतला मेरे पीछे न जाने तेरा क्या दुर्गति कर छोड़ता!" — कहकर वे रोने लगे।

भुवन चोट-पर-चोट खा कर अंधा बनता जा रहा था। बिल्कुल आपे से बाहर हो गया। अत्यन्त क्रूर उद्दण्डता के साथ बोला — "चुप रह बुड्ढे! ज्यादा आंसू न बहा! गला घोंट कर मार डालूंगा।"

अब पार्वती से न रहा गया। वह क्रुद्ध सिंहनी की तरह पिता के सिरहाने से उठ खड़ी हुई और गरज कर बोली — "खबरदार! अगर फिर जबान चलाई तो जीभ खींच लूंगी। नीच, निर्लज्ज, बेहया। ऐसी बात जबान से निकलते तेरी जीभ कट कर क्यों नहीं गिर जाती।" — कह कर उन ने भुवन की कलाई कस कर पकड़ ली।

उधर हरिनाथ बाबू क्रोध से पागल हो गये। अहर्निश की चिन्ता ने उन्हें सुखा कर कांटा कर दिया था। बिल्कुल कमजोर

हो गये थे। भुवन की चुनौती बर्दाश्त न कर सके। लड़खड़ाते और बड़बड़ाते उठ खड़े हुए, और हाथ उठाकर भुवन की ओर लपके — "आ हरामज़ादे, आ! देखूं, कैसे गला घोंटके मारता है?" — कहकर भुवन के मुंह पर उन्हों ने कसकर एक चपत लगा दी, और स्वयं थर-थर काँपते हुए छिन्न-मूल तरु की तरह धड़ाम से नीचे गिर पड़े।

पिता को गिरते देख पार्वती ने चट भुवनकी कलाई छोड़ दी, और उन्हें सम्हालने की चेष्टा की, लेकिन असफल रही। हरिनाथ बाबू पहले ही गिर कर बेहोश हो चुके थे। पार्वती रोने लगी, रो-रो कर बेहोशी का उपचार करने लगी। रोना सुन कर प्रतिमा दौड़ी आई, पड़ोस के नर-नारी दौड़े आये। गाँव के वैद्य श्री नरेश मिश्र भी दौड़े पहुंचे, किन्तु परिणाम कुछ न हुआ। हरिनाथ के प्राण-पखेरू पहले ही उड़ कर अनन्त में बिलीन हो चुके थे। वे भी उसी लोक को सिधार गये, जहां कुछ दिन पहले उनकी पत्नी पहुंच चुकी थीं। पार्वती रो रही थी। प्रतिमा भी रोने लगी, किन्तु भुवन का वहां पता न था। पिता को नीचे गिरते देख पार्वती ने उसका हाथ छोड़ दिया था, और भुवन इसी बीच वहाँ से कहीं खिसक गया था।

: १७ :

पिता की मृत्यु के बाद पार्वती के मन में जमीन-जायदाद और संसार के प्रति एक भयानक वितृष्णा उत्पन्न हो गई। उस का चित्त अशाँत हो उठा। एक एक कर अतीत की सारी घटनाएं उसके मानस-मंच से चित्रपट की भाँति गुज़रने लगीं। गौरी का अपमान भरा निर्वासन, अपने एकाँत कमरे में चुप-चाप बैठे सुमन पर पिता-पुत्र का एक साथ क्रूर अत्याचार, मां की मृत्यु, और जलती चिता की प्रदक्षिणा कर श्मशान भूमि से सदा

के लिये सुमन के अदृश्य होने के दृश्य पारी पारी से बारंबार उसके सामने आविर्भूत और तिरोभूत होने लगे। फिर सुमन के शोक में पिता की विकलता, उनके आहत हृदय के सकरुण उद्गार, अपनी एक मात्र अनाथा विधवा कन्या के भविष्य के लिये उन की ममता भरी चिन्ता, वकील-रजिस्ट्रार को बुला कर भरी पंचायत में जायदाद का बटवारा, स्वार्थ में पागल भुवन का पिता के प्रति क्रूरता भरा उद्दण्ड व्यवहार, और पिता की मृत्यु — इस समस्त घटनाक्रम के याद आते ही उसका हृदय करुणा, शोक, श्रद्धा और वितृष्णा के आकस्मिक बवंडर से विक्षुब्ध हो उठता। वह सोचती — 'इस सारे नीच निष्ठुर और निर्लज्ज व्यवहार का आधार क्या है? क्यों मनुष्य मनुष्य न रह कर क्रूर पशु बन जाता है? क्यों अपने स्वार्थ पर ज़रा सी आंच आते ही सभ्यता और शालीनता के बनावटी नकाब को वह बड़ी बेशरमी से उतार फैंकता है? तो क्या समाज के इस सारे प्रपंच, सारे आडंबर और इस सारे विधि-विधान का स्वार्थ के समक्ष कोई मूल्य नहीं? हाय रे स्वार्थ! क्या अब तक तुझ पर किसी ने भी विजय प्राप्त नहीं की? क्या अब तक तू अजेय ही बना रहा? नहीं नहीं, तुझे पैरों तले कुचलने वाले भी अवश्य होंगे। भले ही उनकी संख्या कम हो। नहीं तो पृथ्वी रसातल को चल देगी। सुमन भी तो उन्ही विजेताओं में से है, जो तुझे पैरों से कुचलकर इतनी बड़ी संपत्ति को ठुकरा राह का भिखारी बन गया?' एकाएक सुमन के प्रति श्रद्धा और स्नेह से पार्वती का हृदय भर उठता। आंखों से आँसुओं के बड़े २ बूंद ढुलकने लग पड़ते।

एक रात को बिछौने पर पड़ी पार्वती ऐसे ही विचारों के प्रवाह में बही जा रही थी। एकाएक एक नया विचार उस के दिल में उठा। वह सोचने लगी — "मैं भी इस विशाल संपत्ति को ठुकरा कर क्यों न सुमन के ही पथ का अनुसरण करूं?

मेरे पास पहले के जमा लगभग हज़ार रुपये तो हैं ही । मेरे जीवन भर के लिये काफी हैं। तो क्यों न बची ज़िंदगी काशी में गुज़ार दूं ? गङ्गा-स्नान, विश्वनाथ-अन्नपूर्णा के दर्शन, साधु-सन्तों और विद्वानों के मुख से कथा का श्रवण । इस माया-मोह नीचता और स्वार्थ भरे संसार को त्याग कर, रे मन, तीन लोक से प्यारी विश्वनाथ की नगरी काशी को चल ! वहीं अपने शेष जीवन को बिता, इस मानुस जन्म को सफल कर ले !' पार्वती एक समय इस निश्चय पर पहुंचकर अंत में निश्चिंत निद्रा की गोद में समा गयी।

सवेरा हुआ। पार्वती बिछौने पर से उठी। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर वह काशी-यात्रा की तैयारी में लग पड़ी। पिता की मृत्यु के बाद से भुवन से उसकी बोलचाल बन्द थी। भुवन उसके सामने आते भी लजाता। पिता का श्राद्ध भी इसी वातावरण में संपन्न हुआ। प्रतिमा के मुख से पार्वती की काशी-यात्रा की बात सुनकर भुवन मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ था। सोचा, चलो एक बला टली। किन्तु घण्टे भर बाद ही जब उसने सुना कि पार्वती ने काशी जाने का विचार त्याग दिया है, तो उस की सारी खुशी हवा हो गयी। वह निराश हो गया। चेहरे पर मुर्दनी छा गयी।

पार्वती सामान-असबाब बांध रही थी। सोचती भी जा रही थी। तरह २ के विचार मन में उठ रहे थे। वह सोचने लगी, 'मैं काशी जा रही हूँ, क्योंकि इस स्वार्थी समाज और संसार से मुझे घृणा है। स्वार्थी समाज से अलग रहकर वहाँ पुण्य-संचय करूंगी। इस प्रकार अपने पारलौकिक उन्नति का पथ प्रशस्त करूंगी। लेकिन.....लेकिन यह तो भाँड़ का जला भट्टी में गिरने जैसा हुआ ! यह तो छोटे स्वार्थ को ठुकरा बड़े स्वार्थ को गले लगाना हुआ। परिवार, समाज और संसार को त्याग कर अपने आप में सीमित हो जाना, अपने निजी पार-

लौकिक स्वार्थ पर अपने को निछावर कर देना, यह तो बहुत बड़ा स्वार्थ है ! इस से दूसरों को क्या लाभ ? समाज को क्या लाभ ? और संसार को क्या लाभ ? नहीं, त्याग का यह रास्ता नहीं, यह तरीका नहीं। त्याग वही है जिस से दूसरों का लाभ हो, कल्याण हो । घर में ही रहकर पिता की दी हुई जायदाद को अपने हाथ में करके अपने गाँव का, अपने समाज का और दीन-दुखियों का बड़ा उपकार किया जा सकता है। और उस महास्वार्थी के हाथ जायदाद छोड़ना तो और भी महा पाप है। और दूसरे, यदि किसी दिन सुमन लौट आया तो सम्भव है भुवन बेइमानी कर जाय। पिता जी रहे नहीं। भुवन जैसे तिकड़मबाज मक्कार से निबटना सुमन जैसे सरल शिशु के लिये आसान न होगा । उस हालत में यह सम्पत्ति सुमन के लिये बड़ा सहारा सिद्ध होगी। इसके सहारे बाद में वह अपनी पूरी जायदाद पर कब्ज़ा जमा सकेगा।' इस प्रकार सोचते-२ पार्वती ने एकाएक अपनी काशी-यात्रा स्थगित कर दी।

: १८ :

सन् १९३६ के जुलाई-अगस्त का महीना । सूखा पड़ गया। सूखा पड़ने का मतलब होता है खेत-मज़दूरों के लिये भयानक अकाल ! खेती का काम बन्द हो गया, मज़दूरी उनकी बन्द हो गयी । रोज़ कुआं खोद कर पानी पीने वालों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। यों तो दुनिया की सारी मुसीबत ही गरीबों के लिये होती है, लेकिन अकाल तो उन के लिये साक्षात् महाकाल बनकर ही आता है। सिवा मरने के और कोई चारा नहीं। लेकिन यह मौत यदि मौत की तरह होती तो कोई बात न थी। जो पैदा होता है, मरना भी उसके लिये अनिवार्य है। किन्तु बेकारी की मौत बड़ी ही करुण और वीभत्स होती है भूख से दम तोड़-तोड़ कर मरने जैसी यातना ! वाणी की

क्या मजाल कि वर्णन कर दे ! इस का सही पता तो भूख से तड़फ-तड़फ कर मरते किसी गरीब को ही नसीब होता है !

हरिहरपुर के पश्चमीय हिस्से में छोटी जाति के मज़दूरों की बस्ती थी। हलखोरी नुनिया का बैठका मुहल्ले भर का अड्डा था। यहीं शाम-सवेरे बैठ कर ये गरीब अपनी दुख-दुनिया की बातें करते। दबी आवाज़ में गाँव के धनी गरीबों की आलोचना करते। कुछ देर जी बहलाते, फिर वही पेट की चिंता। रोज़ कुआं खोदना, रोज़ पानी पीना। लेकिन भर पेट पानी पीना शायद ही किसी को नसीब होता।

रात को नौ बजे हलखोरी के बैठके पर गोष्ठी जमी थी। गर्मी का महीना था, इससिये आँगन में ही सब बैठे थे। तरह तरह की बातें हो रही थीं। हलखोरी की उम्र साठ के करीब थी। महल्ले के लोग उसे चाचा कहते। रघू नामक एक नौजवान लड़का हलखोरी को उद्देश करके बोला — "चाचा, गांव गाव में अकाल पड़ा है। गरीब-मजूर सब जगह भूखों मर रहे हैं। इस इलाके में केवल अपना गांव बचा हुआ है।"

हलखोरी एक बेफिक्री का निसांस लेकर बोला -- "पार्वती बहिन बची रहें, फिर गाँव भी हमारा बचा रहेगा बेटा!"

रघू बोला -- "सो तो ठीक कहते हो चाचा। नहीं तो हम लोगों की भी आज वही हालत होती जो और मजूरों की हो रही है। आज बेफिकिर होकर हम यहां बातें करते नहीं होते।" — कहते-कहते उस नवयुवा मजूर का गला भर आया।

हलखोरी की भी आंखें गीली हो गयीं। हाथ से आंसू पोंछ कर वह बोला — "साठ साल की उमर हो गयी। सिर के बाल सफेद हो गये। यहीं पैदा हुआ, यहीं बूढ़ा हो गया। मगर कभी ऐसा नहीं देखा। किसी रईस की लड़की में कभी इतनी दया-मया नहीं देखी।"

जद्दू बोला — "और सुमन बबुआ की बात क्यों छोड़ दी चाचा ? जैसी पारबती बहिन वैसे सुमन बबुआ। कभी किसी जन-मजूर को गाली नहीं दी, एक कड़ी बात तक नहीं कही।"

उधर भिखारी लोहार सुरती चुना रहा था। उम्र चालीस के करीब थी। सुरती को निचले ओठ की जड़ में भर कर एक बार पच करके बगल में पीक फैंक कर बोला — "अरे सुमन का क्या कहना ! जिसने राजा तक पर लात जमा दी। तीन साल बीत गये, मगर बात कल की मालूम पड़ती है। पण्डित धरनीधर इसलोक (श्लोक) सुना रहे थे, मगर राजा साले ने उनपर भेंड़ा छोड़वा दिया। गांव के सब बाबू-भैया हंस रहे थे, राजा हंस रहा था। मेरी तो भैया उस गरीब बराम्हन पर जुलुम होते देख देह में आग लग रही थी। करूं क्या, जी मसोस कर रह गया। मगर शाबास ! सुमन बबुआ कहीं से आ निकला। राजगद्दी पर पहुंच गया, और उस राजा बइमान को ऐसा थप्पड़ लगाया कि वह तो गठरी की तरह गद्दी पर लुढ़क पड़ा। और चट एक लात लगा के यह-ले वह-ले गायब !" एक साँस में सारी कहानी सुना के फिर सुरती की पीक उसने पच् करके बगल में फैंक दी।

हलखोरी बोला — "एक ही खान से हीरा भी निकलता है कोइला भी। एक तरफ पारबती बहिन और सुमन बबुआ को देखो, और दूसरी तरफ भुवन बाबू को। एक ही मां-बाप के हैं, मगर.....। गांव के गरीब-गुरबा भुवन बाबू से कांपते हैं, और घर में बैठ कर गाली देते हैं।"

बुद्धू बोला — "मगर जो भी कहो चाचा, है भुवन बाबू गाली देने के लायक ही। रईस घर का लड़का ! बराम्हन की जात ! भगवान के घर से जनेऊ मिला, मगर करम करता है चमार का ! कोई बात-विचार नहीं। उस दिन शिब्बू चमार के घर में घुसा रहा। कहते हैं एक-दो घूंसे भी....."

बीच में ही सुरजीत बोल पड़ा — "सिरिफ घूंसे हो नहीं, लात भी। मगर शरम की बात! क्या करे बेचारा! चुप रह गया।"

बुद्धू खिसिया कर बोला — "तुम्हारी यह बड़ी बुरी आदत है सुरजीत, कि बीच में ही टपक पड़ते हो। कोई बात पूरी भी नहीं करने देते।"

सुरजीत भी तुनक कर जवाब देने को तैयार हुआ, लेकिन हलखोरी उसे मना करते हुए बोला — "तुम जरा धीरज धरो सुरजीत!" फिर बुद्धू की ओर मुड़ कर बोला — "अच्छा बुद्धू, अपनी बात पूरी कर जाओ।"

बुद्धू विजय की खुशी में फूल कर बोला — "लात-घूसे की बात शरम के मारे किसी को न बताई। मगर एक चमार के ही घर घुसने की बात रहे तब न! अरे सुक्खू पाशी का घर तो इसने अपनी ससुराल बना ली है। उसके घर की बनी मछली, भात, ताड़ी और शराब..... छिः! और इस सुखुआ साले की बात क्या कहें! ससुरा घर को चकला बना लिया है। अपनी जवान लड़की, जवान बहिन। छी छी!" — कहकर हल्के हाथों से कपार पीटने लगा।

भिखारी लोहार सुरती की आखरी पीक को बगल में थूक कर फिर बोला — "हलखोरी चाचा, एक अकेले भुवन बाबू ही नहीं, गांव के सब बाबू-भैया इस कुकरम में सामिल हैं। किस २ का नाम बताऊं? मगर देखो, कितना जुलुम है, कितना अनियाय है? दुरबल पर सितुहा (सीपी) चोख! कोई गरीब यही काम करे, तो ये ही लोग उसका पानी-पौनी बन्द करवाते हैं, जात-बिरादर से निकलवाते हैं। और रुपिया जरिमाना करके धरम फंड में जमा करवाते हैं। मगर धरम में खरच नहीं करते, धरम के नाम पर खुद हड़प जाते हैं।"

फिर बुद्धू बोला – "इन्हीं हरामज़ादों ने हरगोबिन की जवान विधवा लड़की को बिगाड़ा। और जब उसको गरभ रह गया, तब पंचाइत बिठा के हरगोबिन पर जरिमाना ठोक दिया। बेचारा गरीब रोने लगा। रुपिया पास में न था। तब भुवन बाबू ने जरिमाना के पचीस रुपया अपने पास से दे दिया, और बदले में हरगोबिन की भैंस और बैल अपने दरवाज़े पर बंधवा लिया। कैसा अनियाय है चाचा! धन और धरम दोनों ले लिये। भगवान को आंख नहीं है क्या ?"

और सुरजीत अपनी मुट्ठी कस कर ज़मीन पर मारता हुआ बड़े जोश के साथ बोला — "हम चौड़ा बजा के कहते हैं कि भगवान नहीं है। अगर भगवान होता, तो गांव के बाबू-भैया के सिर पर बज्जर नहीं गिरा होता? पण्डित धरनीधर भगवान की बड़ी भगती करते हैं। दोनों बेला नहाते हैं। सवेरे दुपहर पूजा-पाठ करते हैं। तिरफटा चानन लगाते हैं। मगर देखा उनका हाल क्या हुआ? भगवान के मंदिर के लिये राजा से चन्ना (चन्दा) मांगने गये थे, मगर राजा ने कैसा इनाम दिया! मगर सुमन बबुआ भगवान-उगवान नहीं मानते हैं और उन्हीं ने ही पण्डित धरनीधर की रच्छा की। सुमन बबुआ ने ही तो एक दिन हम लोगों से बताया था कि भगवान-उगवान कुछ नहीं, सब ढकोंसला है।....."

सुरजीत कुछ और कहने जा रहा था, लेकिन हलखोरी ने डांट कर उसे चुप कर दिया। हलखोरी बोला — "ऐसा मत बोलो सुरजीत! पाप लगेगा। कलजुग है कलजुग। जितना पाप करो उतना ही फलता है — इस में भगवान का क्या कसूर?"

बुद्धू ने कहा — "मगर चाचा! तुम्हें तो सुरजीत की ही बात अच्छी लगती है। हमें तो यह सब बनाई बात मालूम पड़ती है। हमारे लिये भगवान कहो, भगवती कहो, सब कुछ इस समय पारबती बहिन हैं। इस अकाल में गांव भर के गरीब-

गुरबा उन्हीं की बदौलित जी रहे हैं। नहीं तो आज हम लोग कहाँ होते, किस हालत में होते....." — कहते कहते उसका गला भर आया।

हलखोरी अपनी गर्दन बारंबार हिलाते, बुद्धू के साथ सहमति जताते हुआ बोला — "सो तो ठीक है, सो तो ठीक है। हमारा सब का भगवान पारबती बहिन! बोलो, पारबती बहिन की जै!" और आवेश में आकर सबने बूढ़े हलखोरी का साथ दिया। इस जय ध्वनि से उस निस्तब्ध निशा में गांव का आकाश गूंज उठा।

लेकिन इस जय-ध्वनि के बाद ही वह गोष्ठी समाप्त नहीं हो गयी। पार्वती के प्रति सब के हृदय में एकाएक श्रद्धा-भक्ति का उफान आ गया। सब अपने अपने तरीके से उसका बखान करने लगे।

भिखारी अब तक चुप बैठा था। अब वह बोला — "पारबती बहिनका जैजैकार खाली हम जन-मजूर ही नहीं मनाते, गांव के छोटे २ किसान और दीन-दुखिया सभी मनाते हैं। बहिन जी के घर से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। रुपिया और अनाज करजा देती हैं, मगर सूद होता है नाम भर का। बल्कि यों कहो कि मूर का मूर लौटाना होता है। गांव के दूसरे धनियों के पास जाओ, तो रुपिया का छे आना सूद लेंगे। एक मन अनाज का डेढ़ मन लेंगे, और फिर उसका सूद-दर-सूद। कहीं दो-चार साल करजा रुक गया, तो सारी जायदाद साफ! गांव के धनिक बहिन जी से इसी लिये जलते हैं। उनका लूट-खसोट बन्द हो गया है। रोब-दाब खतम हो गया है। मगर करें क्या? कुछ करने की हिम्मत नहीं होती। जानते हैं न कि गांव के सारे गरीब-गुरबा बहिन जी के पीछे हैं। कुछ करेंगे तो सब जान ले लेंगे।"

सुरजीत छाती तानके बोला — "किस साले की हिम्मत है कि हमारे रहते बहिन जी को कुछ कह दे ! साले की जान ले लूंगा। जहां बहिन जी के आंसू, वहां हमारा खून । इशारे की देर है, सिर काट लूंगा। एक दिन भुवन बाबू बहिन जी को ऐंस-तैंस दिखा रहा था । गाली भी बक रहा था। मैं ने कहा, जीभ खींच लूंगा अगर बहिन जी को गाली दी तो। मगर बहिन जी ने हमें डाँट दिया, नहीं तो....."

बुद्धू बोला — "भुवन बाबू कङ्गरेसी लीडर है न। मगर जो भी कहो भैया, सब कङ्गरेसी बइमान होते हैं। चनरभानपुर के रघुवीर सिंघ को जानते हो न ? भुवन बाबू का बड़ा दोस्त है। बहुत बड़ा कङ्गरेसी लीडर है। कल मैं ससुराल गया था। मेरा ससुर उसी के खेत में काम करता है। गाँव के सब लोग उसके नाम को रोते हैं। वह तो बइमानी में भुवन बाबू से भी रत्ती-मासा बढ़ा हुआ है।"

भिखारी बोला — "मगर भुवन बाबू उस से कम किस बात में है ? भुंइकम्प के साले कङ्गरेस की ओर से इतनी चीज़ें गरीबों में बंटने के लिये आयीं, मगर किसी गरीब को कुछ मिला क्या ? भुवन बाबू ने सब अपने घर दबा लिया, और कुछ गाँव के बड़े लोगों में बाँट दिया।"

बुद्धू बोला — "भिखारी भाई, गंधी महतमा तो खुद भगवान के औतार हैं । मगर उनके चेला लोग इतना काहे बेइमान हैं ?"

सुरजीत झट बोल उठा — "फिर बुद्धू भाई तुम ने भगवान की बात छेड़ दी ? अरे एक बार तो कह दिया कि भगवान-उगवान कुछ नहीं। जब भगवान ही नहीं तब भगवान का औतार कैसा ?"

बुद्धू ने कहा — "भई सुरजीत, तुम बड़े जल्दीबाज हो। एक बच्चे का बाप बन गये, मगर बचपन लगा ही रहा। भगवान हो या न हो, इस से हम गरीबों का क्या ? लोग भगवान-भगवान कहते हैं, हम भी कह बैठते हैं। जीभ को आदत जो लग गई है ! वैसे अपने तो मजूर होके पैदा हुए हैं, मजूरी करते मरेंगे। जब तक पार्वती बहिन हैं, इज्जत की रोटी मिल रही है। उसके बाद....." कहते कहते उसका स्वर रुंध गया।

सुरजीत ने कहा — "मगर भिखारी भाई, सुना है, कि दुनिया में एक ऐसा भी मुलुक है जहां मजूरों का राज है। वहां न कोई अमीर है न गरीब। बगैर कमाये कोई नहीं खाता। काम सब के लिये मौजूद रहता है। ऊंचनीच का कोई भेद-भाव नहीं। अकाल और बेकारी का डर किसी को नहीं।

भिखारी का चेहरा एकाएक खिल उठा। बड़े विस्मय के साथ बोला — "भैया सुरजीत, मखौल तो नहीं कर रहे हो ? न कोई अमीर है न कोई गरीब ! सब काम करके खाते हैं ! अकाल और बेकारी का डर किसी को नहीं।"

सुरजीत ने कहा — "भिखारी चाचा, तुम लोग तो काम पर से जहाँ आये कि घर में घुसे। तब कैसे जानोगे दुनिया की बात ? हम तो जब-तब इस्कूल के मास्टर साहेब के घर चले जाते हैं। उनके घर के लिये दो-चार घड़ा पानी ला देते हैं, और बैठ कर दुनिया की बातें सुनते हैं। कह रहे थे कि उस मुलुक का नाम 'रूस' है।"

भिखारी ने फिर बड़ी ललचायी आवाज़ में पूछा — "तो क्या सुरजीत, अपने मुलुक में मजूरों का राज नहीं होगा ?"

सुरजीत ने बड़े उत्साह के साथ जवाब दिया — "जरूर होगा भिखारी भाई ! मास्टर साहेब बता रहे थे कि कुछ लीडरों ने इसके लिये काम करना शुरू भी कर दिया है।"

लीडर शब्द सुनते ही भिखारी का चेहरा मुरझा गया। निराशा भरे स्वर में बोला — "अरे लीडर तो भुवन बाबू है, रघुवीर सिंघ है ! और ये लीडर काम करने लगे, तब खूब मजूर-राज बनेगा !"

सुरजीत भिखारी की बात पर हंस पड़ा। बोला — "नहीं भिखारी भैया, ये लोग लीडर नहीं हैं। मजूरों का लीडर कहीं अमीर होता है ? मास्टर साहेब तो कह रहे थे कि ये सब खाऊ-बजाऊ लीडर हैं। महतमा गंधी का नाम ले-ले कर लूटते हैं, अपना पेट भरते हैं। देखा नहीं कि ये लोग भुंइकम्प के रिलीफ को गरीबों में न बाँट कर खुद खा गये ?"

"तब मजूरों के लीडर कौन हैं भैया ?"

"मजूरों के असली लीडर मजूर ही होते हैं भिखारी भाई ! अमीर भी अमीरी छोड़ कर हो हमारा लीडर बन सकता है। ऐसे बहुत से लोग मजूरो के लिये काम कर रहे हैं, मगर नाम का हम को पता नहीं है।"

भिखारी खुशी से उछल कर उठ खड़ा हुआ। दोनों टाँग फैला कर और हाथ दोनों ऊपर उठा के बड़े ऊंचे स्वर में वह बोला — "बोलो मजूर राज की जै !"

"मजूर-राज की जै !"

काफी रात हो चुकी थी। पूरब में डण्डी-तराजू के तारों को उगा देख कुछ तो वहीं लेट गये और कुछ अपने अपने घर चले गये।

: १६ :

"कित्थे जाणा स्वामी जी ?"

"क्या कहा ?"

"मैं ने कहा कहां जा रहे हैं ?"

"लाहौर ।"

"लाहौर किस जगह ?"

"पता नहीं ।"

"क्यों ?"

"नये नये जा रहे हैं ।"

"क्या करने जा रहे हैं ?"

"पढ़ने ।"

"तो फिर चलो स्वामी जी, हमारे घर टिकना। फिकर न करो स्वामी जी, सब ठीक हो जायगा। यह पञ्जाब है पञ्जाब ! न खाने का टोटा, न रहने का टोटा। खूब खाओ, खूब पढ़ो, और खूब मौजाँ मारो।" कुछेक क्षण रुक कर फिर बोला — "अच्छा स्वामी जी, ज़रा इस सामान को देखते रहना। मैं अभी आया ।" — कह कर सूट-बूट में सजा एक चालीस साला खूबसूरत पञ्जाबी फ्रंटियर मेल के तीसरे दर्जे के डब्बे से भटिण्डा जंकशन स्टेशन पर उतर पड़ा। चट रिफ्रैशमैंट रूम में जा पहुंचा, और बीसेक मिनट बाद खा-पी कर ठाठ के साथ पान चबाते, सिगरेट का धुआँ उड़ाते पुनः उस डब्बे में आ कर बैठ गया। फिर अपने सामान की ओर एक हल्की सी नज़र दौड़ा कर उसने स्वामी से कहा — "आप लोगों ने खाया तो कुछ नहीं होगा स्वामी जी ? खाना आप के लिये मंगाऊं ?" फिर स्वामी जी के कुछ जवाब देने से पहले ही वह बोला — "लेकिन स्टेशन पर का खाना तो आप खायेंगे नहीं। आप लोग ब्रह्मचारी हैं न ?"

"हाँ, हम लोग बाज़ार का खाना नहीं खाते ।"

"अच्छा तो थोड़ा सा दूध ही सही। ..... अरे ! ओ दूध वाले ! ...साले सुनते भी तो नहीं। जैसे पैसे नहीं मिलेंगे ।"

"रहने दीजिये ! कोई खास भूख नहीं । फिर देखा जायगा ।"

"अच्छा अच्छा स्वामी जी ! अगले स्टेशन पर दूध मिल जायगा ।" — कहकर ज़रा देर वह रुका । चेहरे की सूरत उस ने ऐसी बनाई मानो ब्रह्मचारियों के लिये दूध न मिलने के कारण उसे बड़ा दुख हुआ । फिर हाथ जोड़ कर ज़रा अनुनय के स्वर में बोला — "आप को तकलीफ तो होगी स्वामी जी, लेकिन मैं मैं ज़रा लेट जाऊं ?"

"हाँ हाँ, बड़ी खुशी से । ..... हां भई नरेन, तुम मेरे पास आ जाओ । बाबू जी को लेटने दो ।"

नरेंद्र वहाँ से उठ गया । पञ्जाबी हाथ जोड़ कर फिर अनुनय के स्वर में बोला— "हां जी, आप को तकलीफ हुई जी, माफ करना जी !"

"नहीं आप सोइये । तकलीफ कोई नहीं ।" — कहकर नरेन्द्र नीलकण्ठम् की बगल में किसी तरह जा बैठा ।

गाड़ी चल पड़ी । रात के दस बजे थे । पञ्जाबी खर्राटे लेने लगा । नीलकण्ठम् अब कुछ आश्वस्त हुआ । बेचारा चिन्ता के मारे मरा जा रहा था । नयी जगह जा रहा है । कहां ठहरेगा ? खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा ? चन्द्रेश्वरानन्द की जमात में रहते वक्त उसने सुना था कि पञ्जाब में साधु-सन्तों की बड़ी कद्र होती है । वहाँ की माइयां बड़ी श्रद्धालु होती हैं । खाने-पहनने का कोई टोटा नहीं रहता । और अब इस पञ्जाबी के अयाचित निमन्त्रण ने उस जनश्रुति पर उसका विश्वास और जमा दिया ।

नीलकण्ठम् और नरेंद्र चन्द्रेश्वरानन्द के शिष्यत्व के साथ ही विज्ञान और प्रज्ञान रूपी नाम का चोगा भी उतार कर फैंक चुके थे, किन्तु वेश को उन्हों ने कायम रखा । क्योंकि इस वेश

के ज़रिये रोटी की समस्या हल होने के साथ संसार को परखने का अवसर भी मिल जाता है।

पञ्जाबी रात भर खर्राटे लेता रहा। अगले स्टेशन पर ब्रह्मचारियों को दध पिलाने की सुध उसकी जाती रही। गाड़ी सवेरे लाहौर के निकट पहुंची। वह बिस्तरे पर उठ बैठा और बड़े ज़ोर की एक अंगड़ाई लेकर पाकेट से सिगरेट निकाल कर मुंह में लगाया। दियासलाई रगड़ कर उसे जलाया और कस-कस कर कस खींचने लगा। बिस्तरे को बिस्तरबन्द से जकड़ दिया। गाड़ी स्टेशन पर रुकी। कुली को आवाज़ दी। उसके शिर पर अपना सामान-असबाब रख कर चुपचाप चलता बना, किन्तु अपनी ओर उत्सुक नेत्रों से ताकते इन युवा ब्रह्मचारियों से उसने बात तक न की।

× × ×

"अजी क्या कहते हो पण्डित कांसीराम जी! हमारे हिन्दू धरम ने मनगढ़ंती में तो कमाल कर दिया है। चाहे कोई भी शास्तर-पुरान उलट कर देखो, सब में मनगढ़ंत कहानियों की भरमार! यकीन करने को दिल नहीं करता।"

"हां भई किशनचन्द जी! बात तो तुम्हारी ठीक है। लेकिन गीता के बारे में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। गजब की किताब है। पढ़ कर दिल खुश हो जाता है। उस में मन-गढ़ंतपन का नामोनिशान नहीं मालूम पड़ता।"

"क्या कह रहे हो काँसीराम जी! अजी उस में भी फिजूल बातों की भरमार है। कहा जाता है कि भगवान किशन ने कुरु-क्षेतर के मैदान में अर्जन को गीता की कथा सुनाई। लेकिन ज़रा सोचो तो! मैदान में दोनों ओर की फौजें लड़ने को तैयार खड़ी हैं। अपने सिपहसलारों के हुक्म भर की देर है। भला ऐसे नाजुक वक्त में गीता जैसी लम्बी-चौड़ी कथा भगवान किशन ने कैसे कह डाली?"

पं० कांशीराम और लाला किशनचन्द अभी हाल में ही अपनी नौकरी से अवकाश-प्राप्त (रिटायर्ड) हुए थे। समान उम्र के थे। एक ही मुहल्ले में रहते भी थे। नौकरी से अलग होते समय लाला किशनचन्द तहसीलदार के पद तक पहुंच चुके थे, यद्यपि थे पुराने ज़माने के सिर्फ मैट्रिकुलेट। और कांशीराम ऐन० डब्ल्यू० रेलवे के एक दफ़्तर में बड़े बाबू के पद तक पहुंच कर उम्र पूरी होने से साल भर पहले ही अवकाश ले चुके थे। प्रोविडेंट फंड में रुपये काफी जमा थे। पं० काशीराम थे सनातनी और लाला किशनचन्द थे आर्यसमाजी। दोनों मित्र प्रति दिन दो मील चल कर सवेरे लारेंस गार्डन पहुंचते। घण्टा-डेढ़ घण्टा गार्डन की कृत्रिम पहाड़ियों पर बैठ कर अपनी आप-बीतियाँ सुनाते। और जब-तब आपस में अध्यात्मवाद पर भी बहस छिड़ जाती। गीता के उर्दू अनुवाद का अध्ययन दोनों ने ही किया था। और भी कई पुराणों के उर्दू अनुवाद इन्हों ने देखे थे, और निरन्तर देखा करते। अक्सर सनातनी और आर्य-समाजी साधू-सन्तों के व्याख्यानों में जाया करते। इस प्रकार वे अपनी बची ज़िंदगी का सदुपयोग कर रहे थे।

लाला किशनचन्द द्वारा गीता पर किये गये आक्षेप को सुन कर पं० काशीराम शिर खुजलाने लगे। कोई जवाब ढूंढे नहीं मिल रहा था। इसी समय नीलकण्ठम् उनकी मदद को आ पहुंचा। नीलकण्ठम और नरेन्द्र लारेंस गार्डन की पहाड़ी पर पास के एक बेंच पर बैठे-बैठे इन बूढ़ों के तर्क-वितर्क बड़े ध्यान से सुन रहे थे। मण्डलेश्वर चन्द्रेश्वरानन्द के संपर्क के कारण गीता-सम्बन्धी शंका-समाधान सुनने के दोनों ही आदी बन गये थे।

नीलकण्ठम् ने लाला किशनचन्द को उद्देश करके कहा—"हां महाशय जी, गीता की कथा भगवान कृष्ण ने ही कही है और कुरुक्षेत्र के मैदान में ही कही है।"

सुनकर एक साथ दोनों वृद्ध इन दोनों नवयुवा की ओर मुड़े। पं० काशीराम को असीम आनन्द इस बात का हुआ कि उनके पक्ष का समर्थन करने वाला एक आदमी आ जुटा है। इसके अतिरिक्त इनके साधू वेश ने भी उनपर कुछ असर डाला।

लाला किशनचन्द आर्यसमाजी होने के नाते स्वामी दयानन्दके सत्यार्थ-प्रकाश का उर्दू-अनुवाद पढ़ चुके थे। नीलकण्ठम् की ओर मुड़ कर बड़े तपाक से बोले — "स्वामी जी! शास्तर पढ़ने के साथ कुछ अकल भी लगाया करो! ज़रा यह भी सोचो, कि ऐसी बात हो कैसे सकती है?"

उस रेल-सहयात्री पञ्जाबी के व्यवहार से एक तो यों ही नीलकण्ठम् के हृदय में पञ्जाबियों के प्रति घृणा और क्रोध की आग सुलग रही थी, तिस पर लाला जी के तीखे ताने ने घी का काम किया। नीलकण्ठम् आग-बबूला हो उठा। बोला — "महाशय जी! अक्ल की सारी पूंजी आप के ही हाथ नहीं लगी है! दूसरे भी अक्ल रखते हैं। संस्कृत तो पढ़ी नहीं, चले हैं गीता की आलोचना करने!"

नीलकण्ठम् की दुर्वासा मूर्ति देखकर लाला किशनचन्द जी सहम गये। ज़रा नम्र होकर बोले — "हम ने संस्कृत-वंस्कृत तो पढ़ी नहीं स्वामी जी, उर्दू में गीता ज़रूर पढ़ी है। गुस्सा मत कीजिये। अगर कुछ कहना ही चाहते हैं, तो मेरे शक का जवाब दीजिये।"

नीलकण्ठम् का गुस्सा फिर भी शाँत होना नहीं चाहता था। नरेन्द्र अब नीलकण्ठम् को शान्त करते हुए बोला — "तुम ज़रा धीरज धरो नीलू भाई! मुझे बोलने दो।" फिर लाला जी की ओर मुड़ कर अत्यन्त मीठे स्वर में बोला — "देखिये महाशय जी! भगवान कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में

अर्जुन से जो बात कही, उसी का व्यास जी ने विस्तार पूर्वक गीता में वर्णन कर दिया है।"

लाला जी ने पूछा — "तो फिर इतने से तिल का ताड़ बनाने की क्या जरूरत थी ? व्यास को भी उतना ही कहना चाहिये था जितना सिरी किशन जी ने कहा था।"

"व्यास जी ने हमारे और आप जैसे लोगों को भगवान कृष्ण के गूढ़ उपदेशों को समझाने के लिये ही तिल का ताड़ बनाया है।"

नरेन्द्र का उत्तर सुन कर लाला किशनचन्द जी चुप हो गये। पं० काशीराम बारम्बार अपनी गर्दन हिलाते हुए बोले — "स्वामी जी ने ठीक कहा भाई! बिल्कुल ठीक कहा! बहुत अच्छा कहा!"

प्रोत्साहित होकर नरेन्द्र फिर बोला — "एक और बात! भगवान कृष्ण को योगेश्वर कहा गया है। योगियों में अनन्त शक्ति होती है। सम्भव है, योग-बल से उन्हों ने उस स्वल्प समय को अर्जुन की दृष्टि में बढ़ा दिया हो, और गीता की सारी कथा कह डाली हो।"

लाला किशनचन्द जी आर्यसमाजी होते हुए भी यौगिक चमत्कारों में विश्वास करते थे। योग और योग बल को मानते थे। अतः नरेन्द्र के उत्तर पर पुनः शंका करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई। इत युक्ति-युक्त उत्तर के अतिरिक्त नरेन्द्र के सर्वसौन्दर्यमय चेहरे ने उन पर जादू कर दिया। वे बड़े ही नम्र स्वर में हाथ जोड़ कर बोले — "आप लोगों का आना कहाँ से हुआ स्वामी जी ?"

"बम्बई से।"

"कब तक रहेंगे ?"

कर पुकारा करते, अब उन्हें बेटा कहकर पुकारने में बड़ा आनन्द आता।

विशेष अनुमति पाकर एक वर्ष में ही नरेंद्र और नीलकण्ठम् विशारद की परीक्षा में बैठ गये। उनका परीक्षा-परिणाम देख सब दंग रह गये। इस बार भी नरेन्द्र सर्वप्रथम और नीलकंठम् द्वितीय रहा। और दूसरे साल पुनः विशेष अनुमति के द्वारा दो साल की जगह एक साल में ही शास्त्री परीक्षा में बैठ कर अपने परीक्षा-परिणाम से दोनों ने सब को चकाचौंध में डाल दिया। परिणाम वही रहा, नरेन्द्र प्रथम और नीलकंठम् द्वितीय। इन दो दीप्यमान रत्नों की आभा से सारा अध्यापक समाज और सारा विद्यार्थी वर्ग चकित रह गया।

अब दोनों ने अंग्रेज़ी पढ़ना शुरू कर दिया। नरेंद्र का अंग्रेज़ी ज्ञान पहले से ही अच्छा था। अतः उसने हर विषय लेकर मैट्रिक परिक्षा में प्रविष्ट होकर यूनिवर्सिटी में प्रथम आ कर अपना रिकार्ड कायम रखा। नीलकंठम् को पहले अंग्रेज़ी नहीं आती थी। अतः हर विषय न लेकर केवल अंग्रेज़ी के पर्चे में उसने मैट्रिक परीक्षा दी। केवल एक विषय लेकर परीक्षा देने का परिणाम यह हुआ कि १९३९ तक नीलकंठ ने एम० ए० पास कर लिया, जब कि नरेन्द्र तब तक केवल बी० एस० सी० पास कर सका था। लेकिन परीक्षा-परिणाम का उसका रिकार्ड कायम रहा। यूनिवर्सिटी में प्रथम आने के उपलक्ष्य में उसे स्वर्णपदक भी मिला।

न जाने क्या सोच कर नरेन्द्र का झुकाव कृषिशास्त्र की ओर हुआ। बी० एस० सी० पास कर वह सीधे लायलपुर कृषि-कालेज में दाखिल हो गया। यद्यपि लाला किशनचन्द इस के विरुद्ध थे, किन्तु नरेन्द्र को मना करने का साहस उन्हें नहीं हुआ। वे चाहते थे, नरेन्द्र फिज़िक्स (भौतिक विज्ञान) या केमिस्ट्री (रसायन विज्ञान) की ओर जाये, और देश के नामी

वैज्ञानिकों में अपना स्थान बनाये, और ये ही विषय लेकर उस ने बी० एस० सी० की परीक्षा पास की थी।

इधर पं० काशीराम जी का स्वर्गवास हो गया। इसका सब से अधिक सदमा नीलकंठम् को पहुंचा। काशीराम उसे पुत्र से बढ़ कर प्यार करते। इससे उनके अन्य पुत्रों के दिल में नीलकंठम् के प्रति ईर्ष्या पैदा होती। नीलकंठम् इसे जानता था। पं० काशीराम की श्राद्ध-क्रिया समाप्त होने के बाद ही वह बड़ी कृतज्ञता और नियम के साथ उस परिवार से अलग हो गया। और एक स्थानीय कन्या-कालेज में हिन्दी-संस्कृत का अध्यापक बन गया।

यह कालेज एक प्रकार से निजी था। पं० रामदत्त जी इस के सर्वे-सर्वा थे। आर्य-समाजी होने के नाते वेदों में इनकी एकाँत निष्ठा थी। वहां के सुप्रसिद्ध वैदिक रिसर्च स्कालरों में इनकी गणना होती। इनका व्यवहार बड़ा ही शिष्ट और सौम्य प्रतीत होता। कालेज के नाम पर जहाँ-तहाँ से काफी चन्दा मांग लाते। फीस से भी काफी पैसे आ जाते। अध्यापकों को पचास-साठ रुपये माहवार देकर उनसे सौ-डेढ़ सौ की रसीद लिखाते। बेकारी का आतंक! अध्यापक बेचारे करते क्या? मजबूरन लिखना पड़ता। इसी कालेज में लाला किशनचन्द की जबर्दस्त सिफारिश के फलस्वरूप नीलकण्ठम् को साठ रुपये माहवार की नौकरी मिल गई। सस्ता समय था, कांरा था। अतः इतनी रकम उसके लिये पर्याप्त थी।

पं० रामदत्त जी की सुपुत्री कुमारी सुलेखा इस कालेज की प्रिंसिपल थी। वह सुन्दरी थी, मझोला कद और रंग गोरा था। गोल और भरे चेहरे में उसकी छोटी-छोटी आँखें अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होतीं। तिस पर वह थी कवयित्री! लाहौर के कवि-समाज में उसका प्रमुख स्थान था। उसकी भाव भरी कविताएं किस हृदय में भावुकता की तरङ्ग पैदा न कर देतीं?

उसके विधुर हृदय के उद्गार किस हृदय में मिलन की उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न न कर देते ? कल्पना के पंख पर सवार होकर अनंत में वह प्रियतम को ढूंढ़ने निकलती। प्रियतम को न पा थक कर निराश होकर उसके प्राण-पंछी पुनः तंग पिंजरे में समा जाते। वह तड़फने लगती, और उसका कवि-हृदय रह-रह कर गुनगुनाने लगता :—

"किससे व्यथा सुनाऊं ?
विरह-वीचि घहरे उर निशि-दिन
कैसे प्रिय को जताऊं ?
कैसे प्रिय को रिझाऊं ?"

अस्तु। नीलकंठम् की स्वस्थ सुन्दर आकृति किसी भी कामिनी को अपनी ओर खींचने में समर्थ थी। छात्र-जीवन भी उसका बड़ा ही शानदार रहा था। सुलेखा भला उसकी ओर क्यों न खिंचती ? खिंचने लगी, अपने मनोभावों को इंगितों से व्यक्त करने लगी। कहते हैं, महिलाएं अपना प्रणय-निवेदन इंगितों के द्वारा ही करती हैं, किंतु प्रेमी से स्पष्ट शब्दों में उस निवेदन की आशा एव अभिलाषा करती हैं। नीलकण्ठम् अब तक तो इस चक्र चाल से बचा हुआ था, लेकिन सुलेखा के जाल में उसका पैर फंसने लगा, और फंसते-कसते अंत में बिल्कुल उलझ गया। मुक्ति की उमीद जाती रही।

सुलेखा प्रिंसिपल थी, कालेज की सर्वे-सर्वा। और नील-कण्ठम् उसके आधीन काम करने वाला एक सामान्य अध्यापक। वह बड़े पसोपेश में पड़ गया। प्रणय-निवेदन की इच्छा होती, किन्तु दूसरे ही क्षण भय होने लगता। सुलेखा यह सब समझती। वह चेष्टाओं द्वारा अधिकाधिक उसे उत्साहित करती। धीरे-धीरे कवि सुलेखा की भावभंगी ने नीलकण्ठ के अकवि हृदय में भी कविता भरनी शुरू कर दी। नीलकण्ठम् को कविता

से प्रेम न था, न उस में उसकी प्रतिभा ही थी, लेकिन अब वह कविता की ओर आकृष्ट हुआ। और अन्त में कविता के द्वारा ही प्रणय-निवेदन का उसने संकल्प किया। बड़े दिन की छुट्टी थी। लेखनी उसने पकड़ी, और चट एक कविता उससे फूट पड़ी :—

"जीवन का अभिशाप और वरदान प्रेम तू !
जीवन का उत्ताप और उन्मद हुलास तू !
हे सर्वनाश के मूल ! तूलिका विश्व-सृष्टि की !
नमो नमो हे देव ! अतुल-बल शक्ति सात्विकी !"

कविता को देख नीलकण्ठम् को अपने आप पर आश्चर्य होने लगा। बड़ा खुश हुआ। प्रणय की महान महिमा का आज उसे पता लगा, जो मानव की छिपी प्रतिभा को कुरेद कर बरबस बाहर निकाल छोड़ती है। चट इस पद्य को एक सुन्दर चौकोने कागज़ पर लिख कर लिफाफे में बन्द कर दिया और रजिस्ट्री करके माडल टाऊन के पते से सुलेखा के पास भेज दिया।

पत्र पहुंचा। भेजने वाले की जगह नीलकण्ठम् का नाम देखकर सुलेखा पहले ही बहुत कुछ ताड़ गयी। फिर भी कांपते हाथों से एक त में उसने पत्र खोला। कविता पढ़ी तो उसका कवि-हृदय नाच उठा। अपनी विजय पर वह फूल उठी। उसी क्षण पत्र का उत्तर लिखने बैठी। कविता का जवाब कविता में ही होना चाहिये। कवि तो वह थी ही। उसने लिखा :—

"तिमिर घोर, पथ अगम, लोक-वन-कुटिल-उलूक-अलीके।
हृदय बंदि, नित व्यथा-विमंथित ज्यों रज कमल-कली के॥"

— और लिखकर नीलकण्ठम् के पास भेज दी।

नीलकण्ठम् को अपने निवेदन का प्रतिनिवेदन मिल गया। अब वह समझ गया कि यह विरह-वेदना एक-तरफा नहीं। वह

प्रणय की अनोखी दुनिया में विचरण करने लगा। इस प्रति-निवेदन का वह प्रत्युत्तर लिखने बैठा। पुनः एक कविता बन गई :

"निशा पराहत हुई, सवेरा सो कर जागा,
उषा हंसी, दिन हंसा, अन्धेरा रो कर भागा।
चक्रवाक चल—चकित नयन—युग खोले,
प्रिया-मिलन की विमल प्रतीक्षा के स्वर बोले।"

नीलकण्ठम् छिपा रुस्तम निकला। सुलेखा अब तक उसे केवल एक नीरस हृदय का विद्वान समझे हुए थी। उसकी भ्राँति अब सर्वथा दूर हो गयी। अब तक तो केवल वह उसके आकर्षक यौवन पर ही रीझी हुई थी, किन्तु अब अपनी ही जैसी भावुकता उस में भी पाकर अपने तन और मन को अपने प्रणयी के चरणों में निछावर करने में उसे ज़रा भी दुविधा और संकोच नहीं हुआ। दो तड़फते प्राणियों का मानसिक मिलाप के साथ शारीरिक मिलाप भी शुरू हो गया। यौवन-वसंत का सौरभ दिशाओं को सुरभित करने लगा। कुसुमचाप के अचूक तीर तरकस से छूटने लगे।

× × ×

आर्यसमाजी विधान के अनुसार ज़रा संस्कृत पढ़ कर कोई भी अपने नाम के पहले पण्डित की पूंछ लगा सकता है, और सनातनी प्रथा के अनुसार एक निरक्षर ब्राह्मण को भी इससे चिपके रहने का जन्मजात अधिकार है। पं० रामदत्त जी कुछ संस्कृत जानते थे। वैदिक रिसर्च स्कालर तो थे ही, अतः वैश्य कुल में उत्पन्न होकर भी पण्डित कहलाने का उन्हें पूरा अधिकार था। उनकी वेश-भूषा भी पण्डितों जैसी ही रहा करती थी।

पं० रामदत्त जी माडल टाऊन में एक अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्था की स्थापना की चिन्ता में थे। किन्तु किसी भी संस्था के लिये सब से मूल वस्तु पैसा होती है। पैसा गुरु और

सब चेला। पैसा भी दो-चार हज़ार नहीं, बल्कि दो-चार लाख रुपये की उन्हें अवश्यकता थी। बेचारे बड़े परेशान थे। पैसे उगाहने के आसान तरीक़े सोच रहे थे। अंत में आशा की कुछ झलक दिखायी दी। एक तरीका उन्हें सूझ गया।

भारत के एक धर्मप्राण सेठ श्री सोंढूमल पर लक्ष्मी एकाएक रीझ उठी थीं। एक सामान्य व्यापारी से देखते ही देखते भारत के तीन-चार बड़े धनसेठों में उनकी गिनती होने लगी थी। सेठ जी की वेश-भूषा और बाहरी रहन-सहन देख कर कोई भी उन्हें धर्मधुरन्धर और सदाचार-शिरोमणि की उपाधि दे सकता था। तिस पर वे देश की हर धार्मिक और सामाजिक संस्था में खुले हाथों दान देते। गो-सेवा और गो-रक्षा का मानो उनका एकाधिकार था। और रुपयों के बल पर वे संसार को एक बनाने का सपना भी देखने लगे थे। इस पुनीत कार्य के उद्देश्य से अपनी विशाल सम्पत्ति में से दस के करोड़ रुपये अलग करने का विचार भी कर रहे थे।

किन्तु इन सब सद्गुणों और विशाल सम्पत्ति के बावजूद भी सेठ जी का घर सूना-सूना दीखता। भाग्य ने ज़रा धोखा दे ही दिया। पचास साल की उम्र तक सेठ जी ने पुत्र का सुख नहीं देखा। पुत्री इनके थी, किन्तु शास्त्र में जो कहा है कि 'अपुत्रस्य गृहं शून्यम्' और 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'।

लेकिन सेठ जी भाग्य से हार मानने वाले जीव नहीं थे। भाग्य से लड़ कर ही तो वे थोड़े दिनों में ही करोड़ों के स्वामी बन बैठे थे। तो फिर एक पुत्र बेचारे की क्या मजाल कि सेठ जी के घर पैदा होने में आना-कानी करे! वे कमर कस कर इस प्रयत्न में लग पड़े।

सेठ जी की उम्र अब साठ पार कर चुकी थी। अपने उस सत् प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप अब तक आठ शादियां वे कर

चुके थे। किन्तु जैसे पुराने वस्त्र को त्यागने और नये को पहनने में किसी को जरा भी बाधा और संकोच नहीं होता, उसी प्रकार सेठ जी को भी हर दूसरे साल एक पाणि-गृहीता को त्याग दूसरी का पाणिग्रहण करते रंच मात्र भी हिचक और संकोच नहीं होता। इस में कारण यह बताया जाता कि पहली पत्नी पुत्र पैदा करने में अनफिट् साबित हुई, इसलिये दूसरी शादी अनिवार्य बन गई। हां, लेकिन सेठ जी थे बड़े उदार। पत्नी का परित्याग करते समय दो-लाख रुपये की दक्षिणा देकर उसे सदा के लिये आज़ादी दे देते। उनकी इस उदारता और सहृदयता पर उनकी धर्म-पत्नियां भी बड़ी खुश और संतुष्ट थीं। क्योंकि सब पढ़ी-लिखी सुसंस्कृत जो थीं। ऐम० ए० और बी० ए० से कम तो कोई थी ही नहीं।

पं० रामदत्त का हृदय भी ऐसे उदार और धर्मप्राण सेठ को अपना दामाद बनाने को तड़फ रहा था। अतः वे अपनी एक मात्र सुरूपा एवं सुसंस्कृता कन्या को साथ ले सेठ जी के दरबार में हाज़िर होने लगे। सेठ जी की उदारता प्रसिद्ध थी। चलते समय जग-दुर्लभ आभूषणों और वस्त्रों से सुलेखा की खातिर करते। सुलेखा को भी इस उदार उपहार के ग्रहण करने में तिल मात्र भी हिचक न होती। धीरे धीरे सेठ और सुलेखा में घनिष्ठता बढ़ने लगी।

इस बीच अपनी आठवीं पत्नी को अनफिट् करार देकर सेठ जी बिदा कर चुके थे। १९४० के जून का महीना था। सुलेखा को सेठ जी के प्राईवेट सेक्रेटरी का लिखा एक बड़ा ही अनुनय और अनुरोध भरा संक्षिप्त पत्र प्राप्त हुआ। पत्र में लिखा था :—

"आदरणीय सुलेखा जी,

सेठ जी शिमले आ गये हैं। सेवाय होटल से सटा सेठ जी का निज का बंगला है। सीनरी बड़ी अच्छी है। कालेज

बंद होते ही आप सीधे शिमले चली आवें। सेठ जी इस बार आप सदृश मित्र के सम्पर्क से वंचित रहने को कतई तैयार नहीं। कोई बहाना नहीं सुना जायगा।

आपका सादर

शिमला, २५ जून १९४० .....

प्राईवेट सेक्रेटरी"

पत्र पाकर सुलेखा बड़े असमँजस में पड़ गई। अब तक वह दो हिंडोलों में झूल रही थी। वह एकाएक नीलकण्ठम् को भी त्यागना नहीं चाहती थी, यद्यपि उसके प्रति उसके व्यवहार में अब पहले जैसे अकृत्रिम प्रेम का अभाव हो गया था। सुलेखा को निश्चित विश्वास हो गया, कि सेठ जी इस बार अवश्य विवाह का प्रस्ताव करेंगे। पिता जी इसके लिये परेशान हैं ही। वह सोचने लगी—'क्या करूं ? नीलकण्ठम् के साथ इस बार ग्रीष्म अवकाश में काश्मीर जाने की बात तै हो चुकी है। तो क्या उस से धोखा किया जाय ? और खास कर एक ऐसे सरल और शिष्ट व्यक्ति से ? तो फिर नारी के प्रति उसकी धारणा क्या बन जायगी ? क्या मैं अपने निजी अपराध से सारे नारी-समाज को उसकी नजरों में गिरा दूं ? अपनी उच्च शिक्षा और संस्कृति को इस प्रकार विडंबित होने दूं ? छिः ! ऐसा नहीं हो सकता !'—उसके हृदय का छिपा नारीत्व एकाएक उमड़ पड़ा। फिर अपने तईं बोली—'छिः ! एक बूढ़े लंपट के चरणों पर अपने नारीत्व को अर्पित कर दूं, और बड़ी क्रूरता से उस नारीत्व को पैरों तले कुचल २ कर उसे दुनिया के सामने उद्घोष कर दूं, कि नारीत्व का मूल्य केवल कुछ पैसे के सिवा और कुछ नहीं ? पिता जी की भी अक्ल को क्या हो गया है ? उनका विवेक क्यों इतना पतित हो गया है ? अपने स्वार्थ के लिये अपनी संतान का सत्यानाश करना चाहते हैं। एक ऐसे बूढ़े बर्बर को अपना दामाद बनाना चाहते हैं, जो उम्र में उन से भी पन्द्रह साल बड़ा है ! छिः !

ऐसा कभी न होने दूंगी। नीलकण्ठम् से विश्वासघात करना सारे नारीत्व के साथ विश्वासघात होगा। ऐसा कभी न होने दूंगी, कभी नहीं।' काफ़ी रात तक पलंग पर पड़ी २ नाना संकल्प-विकल्पों के प्रवाह में डूबती उतराती रहने के बाद एक समय इस निर्णय पर पहुंच कर निश्चित निद्रा की गोद में समा गयी।

रात के पिछले पहर तरह २ के सपने वह देखने लगी। शिमले को प्रस्थान के लिये पिता का क्रोध भरा आग्रह देखा, नीलकण्ठम् का सूखा-मुरझाया चेहरा देखा। थोड़ी देर बाद एक अस्पताल में बेहोशी की दशा में पड़े नीलकण्ठम् को सुलेखा २ कह कर अंट-संट बकते देखा। अपने प्रियतम की यह दशा देख स्वप्न में भी उसका नारी-हृदय रो पड़ा। अपने मूर्छित प्रणयी के चरणों में गिर पड़ी। रोती हुई बोलने लगी — "नहीं प्यारे, मैं तुम्हारी हूँ, तुम्हारी ही रहूँगी।" और इतने में पिता की प्यार-भरी पुकार ने उसे एकाएक स्वप्न-लोक से वास्तव लोक में ला पटका।

सुलेखा हाथ-मुंह धोकर बैठक खाने में आयी। पं० राम दत्त आंखों में चश्मा लगाये किसी बृहत्काय पुस्तक के पन्ने उलट रहे थे। सुलेखा चुपचाप उनके सामने की कुर्सी पर आ बैठी।

रामदत्त जी आंखों पर से चश्मा हटा कर मेज़ पर रखते हुए बड़े ही प्रेम-पूर्ण स्वर में सुलेखा से बोले—"सामान-असबाब सब बन्ध चुका है बिटिया! सब कुछ तैयार है। सिर्फ तुम्हारे तैयार होने भर की देर है।"

सुलेखा ने आश्चर्य-चकित भाव से मीठे स्वर में पूछा — "कहां के लिये पिता जी?"

पं० रामदत्त जी अपने चेहरे पर तथा स्वर में और भी अधिक आश्चर्य का भाव भरते हुए बोले — "पूछ रही हो कहाँ के लिये! क्या तुम्हें सेठ जी की चिट्ठी नहीं मिली? शिमले से उनका बड़ा ही अनुरोध भरा पत्र प्राप्त हुआ है!"

सुनकर सुलेखा चुप हो गयी। नीची निगाह किये दाहिने पैर के अंगूठे से फरश को कुरेदती या रगड़ती रही। उसे अपना रातवाला निश्चय याद आ गया। कुछ देर पहले की स्वप्न-घटनाएं याद आ गयीं। कुछ देर इतस्ततः करने के बाद छाती मजबूत करके बोली—"मैं शिमले नहीं जाऊंगी पिता जी!"

पं० रामदत्त की त्योरी तन गयी। बोले—"क्यो?"

"इस साल कशमीर का हमारा प्रोग्राम बन चुका है।"

"इस हमारे में कौन कौन हैं, जरा सुनूँ तो?"

"मैं और नीलकण्ठम् जी।"

नीलकण्ठम् का नाम सुनते ही रामदत्त की देह में आग लग गयी। कुछ दिनों से नीलकंठम् उन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाता। खासकर तब से जब से कि सेठ जी को दामाद बनाने के लिये उनका दिल ललक रहा था। बड़े गुस्सा भरे स्वर में बोले—"इतना पढ़-लिख गयी, लेकिन अभी तुम बच्ची ही बनी रही सुलेखा! जिसके न घर का पता, न जात का पता, न कुल का पता, ऐसे आदमी को तुम सिर चढ़ाये जा रही हो। सिर्फ पढ़-लिख लेना ही तो काफी नहीं। संस्कृत वाला चाहे अंग्रेजी ही क्यों न पढ़ ले, उसे पूछता कौन है? ऐसे घनेरों शास्त्री एम० ए० दर दर की ठोकरें खाते फिरते हैं। मैं ने किशनचन्द की सिफारिश की वजह से उसे साठ दे दिये। आज कान पकड़ कर निकाल दूँ, फिर वही दशा! दर दर की खाक छानता फिरेगा। तुम जरा मेरे और अपने पोजीशन का भी तो ख्याल करो! कौन हो, किसकी लड़की हो!"

रामदत्त जी अपने हृदय का उबलता अङ्गार एक सांस में ही उगल गये। पिता का चंड क्रोध देख सुलेखा सकपका गयी। फिर गर्दन झुकाये दाहिने पैर के अँगूठे को फरश पर रगड़ने लगी।

पं० रामदत्त जी साम-दाम-दंड-विभेद आदि हर कला में निपुण थे। दाम से चट साम पर उतर आये। झट कुर्सी से उठ

सुलेखा के निकट आ खड़े हुए। उसकी पीठ पर हाथ सहलाते हुए बड़े मीठे और धीमे स्वर में बोले — "रानी बन जाओगी बिटिया रानी ! एक और दूसरा काम ! अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तुम्हारा नाम अमर हो जायगा। हमारे इंटरनेशनल ऐकेडेमी के लिये सेठ जी ने चार लाख रुपये देना कबूल कर लिया है। और यह भी तै हो गया है कि अकडेमी का नाम रखा जायगा— 'सुलेखा अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान'। कहो तो ! एक तुच्छ व्यक्ति के पीछे इतनी बड़ी महान् वस्तु की उपेक्षा ! ज़रा ठंडे दिल से विचार करो बिटिया ! एक और बात। सेठ जी बड़े उदार विचार के हैं। नूतन और पुरातन विचारों का उन में अद्भुत सम्मिश्रण है। तुम ज़रा भी बंधन का अनुभव न कर सकोगी बिटिया !"

और सुलेखा की आँखों के सामने बड़े बड़े सुन्दर सलोने अक्षरों में—**'सुलेखा अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान'**— का साइन बोर्ड रह-रहकर बिजली की भांति चमकने लगा। और सुलेखा उस चकाचौंध में काफी देर तक भूली हुई सी, खोई हुई सी चुप चाप वहाँ बैठी रही।

: २१ :

नरेन्द्र को लाला किशनचन्द का अर्जेंट तार मिला— नीलकंटम् सख्त बीमार है। तार देखते ही चल पड़ो। नरेन्द्र का कालेज उसी दिन बंद हुआ था। लाहौर जाने को सोच ही रहा था। तार पाते ही बिस्तरा वगैरह बाँधकर लायलपुर स्टेशन पर आ पहुंचा ! संयोग से दो बजे दिनवाली गाड़ी घंटा भर लेट थी, अतः गाड़ी मिल गयी। तड़फड़ टिकेट कटा गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी चली और रास्ते भर अनेक स्टेशनों पर रुकती-ठहरती पांच घंटे बाद लाहौर पहुंची।

तार असाधारण स्थिति में ही दिया जाता है। नीलकंठम् की दशा अवश्य बुरी होगी, तभी तो चाचा जी ने तार दिया है। नरेन्द्र सोचता जा रहा था, गाड़ी की धकधकी के साथ उस के दिल की धड़कन भी बढ़ती जा रही थी। वह नीलकंठम् को बड़ा प्यार करता और जहां प्रेम है-वहाँ अनिष्ट की आशंका भी है। आनिष्ट की आशंका होते ही वह सिहर उठता। आंखें गीली हो उठतीं। रास्ते भर नाना दुश्चिंताओं से बोझिल हृदय लिये वह साढ़े आठ बजे रात को लाला किशनचन्द के घर पहुंचा, और वहां से बगैर कुछ खाये-पिये ही सीधे मेयो अस्पताल को चल पड़ा, जहाँ नीलकंठम् जीवन-मरण के संग्राम के बीच पिस रहा था। वहां उस समय लाला जी की एक मात्र विधवा कन्या गार्गी नीलकंठम् के पैताने में उदास चेहरा लिये बैठी थी। रह-रहकर उसकी आंखों से आँसू ढुलक पड़ते, और अपनी चुन्नी के छोर से वह पोंछ लेती।

नरेंद्र जिस समय वहां पहुंचा, नीलकंठम् अध-बेहोशी की दशा में ऊटपटाँग बके जा रहा था।....सुलेखा .... पैसा ... धोखा ... हरामज़ादा सेठ ... इत्यादि विशृङ्खल वाक्यों से ही वहाँ उपस्थित सबों को बीमारी का कारण समझते देर न लगी। सहानुभूति में सब के नेत्र सजल हो गये। नरेंद्र रोगी की शय्या के निकट पड़े स्टूल पर बैठ गया। गार्गी और लाला किशनचन्द के अत्यंत आग्रह पर कहीं उस रात को उसने कुछ मुँह में डाला।

× × ×

सुलेखा अपने पिता के साथ शिमले चली गयी। नीलकंठम् के लिये दो-तीन पंक्तियों का एक पत्र लिखकर डाक में छोड़ती गयी। पत्र में लिखा था :—

"प्रिय नीलकण्ठम् जी,

सादर नमस्ते। शिमले जा रही हूँ। अचानक एक बहुत

जरूरी बुलावा आ गया। पिता जी भी साथ हैं। दुख है कि आप के साथ कश्मीर न जा सकी। विशेष क्षमा।

——सुलेखा।"

पत्र की नीरस और संक्षिप्त शैली पर नीलकण्ठम् को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस से पहले जब कभी सुलेखा उसे पत्र लिखती उस में भावुकता, कविता और आत्म-निवेदन का अटूट तांता लगा होता, किन्तु एकाएक उस परिपाटी से विच्छेद देख कर उसका हृदय नाना संदेहों से भर उठा। यों तो इधर कुछ महीने से ही सुलेखा तिल-तिल करके उससे अलग होती जा रही थी, किन्तु प्रणय के नशे में अंधे नीलकण्ठम् को कुछ मालूम नहीं पड़ रहा था। जुलाई के पहले हफ्ते की 'इलस्ट्रेटिड वीकली' के पन्ने उलटते-उलटते विवाह चित्रावली पर उसकी नजर पड़ते ही वह चौंक उठा। पुनः उस चौंका देने वाले चित्र की ओर दृष्टि गड़ा कर देखने लगा। चित्र के नीचे लिखे हुए अक्षरों को पढ़ते ही उसका माथा ठनक गया। हृदय की गति रुकने पर आ गई अंत में बेहोश हो कर अपनी खाट पर लुढ़क पड़ा। इलस्ट्रेटिड वीकली की वह कापी तब भी उसके हाथ में पड़ी रही।

उस विवाह-चित्र में दूल्हे की जगह गांधी-टोपी, धोती और कुर्ता पहने सेठ श्री सोंढूमल जी खड़े थे, और उनकी बगल में अर्धांगिनी की जगह लाहौर कन्या-कालेज की प्रिंसिपल एवं वैदिक रिसर्च स्कालर पं० रामदत्त की कन्या श्रीमती सुलेखादेवी एम० ए०, बी० टी० विराजमान थीं। नीलकण्ठम् को अपनी आंखों पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। वह बार २ आंखें फाड़-फाड़ कर उस चित्र को देखता रहा, उसके नीचे लिखे अक्षरों को पढ़ता रहा। अन्त में विश्वास करना ही पड़ा। सिवा इसके कोई चारा नहीं रह गया। अब उस पत्र की संक्षिप्त और नीरस शैली का सोलह आने तात्पर्य उसकी समझ में आ गया, और कुछ दिनों से सुलेखा के क्रमिक अलगाव का अर्थ भी मूर्तिमान

होकर आंखों के सामने नाचने लगा। इस आघात को वह सम्हाल न सका। मूर्छित हो शय्या की शरण उसे लेनी पड़ी।

× × ×

अब नीलकण्ठम् मेयो अस्पताल से लाला किशनचन्द के घर आ गया था। हालत उसकी बहुत कुछ सुधर गयी थी, किन्तु शरीर निःसत्व बन गया था। कमज़ोरी बेहद बढ़ गयी थी। वही नीलकण्टम् जिसके सुन्दर स्वास्थ्य को देख बहुतेरे पञ्जाबियों को भी ईर्ष्या होती, केवल पंद्रह दिन की बीमारी में इतना निर्बल और अशक्त बन गया।

एक दिन नरेन्द्र ने नीलकण्ठम् से कहा — "चलो नीलू भाई कश्मीर चलें।"

"क्यो ?" — नीलकण्ठम् ने पूछा।

"क्यों क्या ? कश्मीर गये बिना तो स्वाथ्य तुम्हारा सुधरेगा नहीं।"

"मैं कहीं नहीं जाता। दुनिया में कहीं भी जा कर स्वाथ्य मेरा सुधरने का नहीं नरेन !" — कह कर उस ने एक लम्बी साँस ली।

नरेन्द्र का दिल पसीज गया। बड़े ममतापूर्ण स्वर में बोला — "लेकिन मैं तो तुम्हें छोड़ने का नहीं। तुम्हें भले ही अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न हो, लेकिन मुझे तो है।"

"स्वास्थ्य-वास्थ्य के सुधार की बात अब मुझे अच्छी नहीं लगती। सारा संसार अब मुझे तीता लग रहा है।"

अब नरेन्द्र ज़रा कोमल किन्तु फटकार भरे स्वर में बोला— "अच्छी नहीं लगती, सारा संसार तीता लग रहा है! अभी औपन्यासिक संसार की सैर कर रहे हो न, इसी से। ज़रा उस संसार से वास्तविक संसार से पैर रखो, फिर स्वास्थ्य-सुधार की बात अच्छी लगेगी, सारा संसार मीठा लगेगा।"

जवाब में नीलकण्ठम् के मुख से सिर्फ निकला — 'उफ्!'

नरेन्द्र फिर वैसे ही स्वर में बोला — "तुम्हारी इस बेचैनी और व्यथा का मतलब तो मुझे बिल्कुल नहीं मालूम पड़ता नीलू भाई! आश्चर्य है! तुम जैसा विद्वान एक मृगतृष्णा के पीछे जान देने को तैयार हो जाय!"

"वेदांत मत झाड़ो नरेन!"

नरेंद्र हंस पड़ा। बोला, "वेदाँत नहीं झाड़ता हूँ नीलूभाई! तुम्हें वास्तविकता से परिचित कराना चाहता हूँ, कि जो औरत इतनी शिक्षित और सुसंस्कृत होकर भी धनके लिये तन बेच सकती है, उसे पाकर भी जीवन में तुम सुखी होते इस में मुझे संदेह है।"

नीलकंटम् की आँखें मानो खुल गयीं। जिस प्रकार ग्रहण के समय समस्त सूर्य-बिंब के ग्रस्त होने पर एकाएक दिन में ही रात का भान होने लगता है, चारों ओर सिवा अधकार के कुछ नजर नहीं आता, उसी प्रकार नीलकंठम् के शिष्ट-सुसस्कृत हृदय को सुलेखा के विश्वासघात ने सहसा निराशा के अंधकार से आच्छन्न कर दिया। उसका सारा ज्ञान, सारा विवेक निराशा के घने पर्दे के बीच छिप गया था, किंतु नरेंद्र के इस एक वाक्य ने तीखे तीर की तरह निराशा के घने पर्दे को शतशः विच्छिन्न कर दिया। ज्ञान और विवेक के प्रकाश में सहसा उसने वास्तविकता को अपनी आँखों के आगे नाचते देखा। वह तड़फड़ बिछौने पर उठ बैठा, औ दोनों हाथों से नरेंद्र का दायां हाथ पकड़ के कुछ विस्मित से स्वर में बोला—"ठीक कहते हो नरेन! इतनी छोटी बात अब तक मेरी समझ में क्यों नहीं आ रही थी? ऐं! जिस पतित के लिये मैं प्राण देने पर उतारू हो गया हूँ, आखिर वह है क्या? एक प्रच्छन्न वेश्या ही तो? भले ही उस वेश्यावृत्ति पर उसने विवाह का नकाब डाल दिया है!" मारे घृणा के नीलकंठम् की आंख, मुंह, नाक और भौंहें एक साथ सिकुड़ गयीं। फिर

नरेन्द्र से वह बोला — "तो फिर क्या कहते हो ? जो कहो वही करूंगा।"

"कहना यही है कि इन सारी वाहियात बातों को दिल से भुला दो। समझ लो कि सोये में सपना देखा था। और चलो कश्मीर। एक पंथ दो काज। स्वास्थ्य भी सुधरेगा, नयी जगहें देखेंगे और नये अनुभव प्राप्त करेंगे।"

: २२ :

कश्मीर जाने का निर्णय हो गया। तै हुआ कि रावलपिंडी के रास्ते जाया जाय और जम्मू के रास्ते वापस आया जाय। लाला किशनचन्द, गार्गी, नरेन्द्र, नीलकण्ठम् और एक नौकर, ये पाँच जने आवश्यक सामान-असबाब के साथ लाहौर रेलवे स्टेशन पर सात बजे शाम को पहुंचे। रावलपिंडी के टिकट कटा गाड़ी में बैठ गये। यदि जम्मू के रास्ते जाने का निश्चय होता तो लाहौर में ही नन्दा कम्पनी की हरी बस में सवार होकर सीधे श्रीनगर में पहुंच जाते।

दूसरे दिन सबेरे पाँच बजे गाड़ी रावलपिंडी पहुंची। स्टेशन पर ही चिरागदीन ऐण्ड संज़ बस कम्पनी के एजंटों ने उन्हें घेर लिया। किराये का सौदा पटा। तड़फड़ शौचादि से निवृत्त हो केवल चाय-पानी करके पांचों जने बस पर सवार हो गये। सात बजे सबेरे ही श्रीनगर के उद्देश से बस चल पड़ी। पचीस मील आगे जाने पर मरी पर्वत-शिखर की चढ़ाई शुरू हुई। सर्पाकार टेढ़े-मेढ़े पथ पर बस ऊपर को चढ़ने लगी, चक्कर काटने लगी, मानो शिखर के कटिबन्ध की प्रदक्षिणा कर रही थी। पर्वत के कटिबंधों में बसे गाँव, वन-वृक्ष आदि उत्तरोत्तर पातालपुरी को धसते जा रहे थे। और बस मानो आकाश को चूमने की चेष्टा में अविराम ऊपर को चढ़ती जा

रही थी। अब वह देवदारु की घनी तरु-पंक्तियों के बीच से गुजरने लगी। एकाएक ऐसा लगा, मानो स्वर्ग में पहुंच गये। क्षण भर पहले की प्रचंड गर्मी न जाने कहां एकाएक बिला गयी। आँखें हरी हो गयीं, मन हरा हो गया। सबके चेहरे पर शाँति और विश्राँति विराजने लगी।

किंतु हाय ! इस स्वर्गीय सौंदर्य के उपभोग का क्षण केवल पांच ही मिनट तो रहा ! मरी की ऊंची चोटी पर पहुंच कर बस पुनः नीचे की ओर लुढ़कने लगी। मानो उसे कोई स्वर्ग लोक से मर्त्यलोक को धकेल रहा हो, ठेल रहा हो। उसी प्रकार टेढ़े-मेढ़े रास्तों से पर्वतीय कटिबन्धों की प्रदक्षिणा सी करता बस श्रीनगर की ओर दौड़ी जा रही थी। बीस मील तक लगातार फैले खेतों में बनी क्यारियों और घरों का ताँता— क्रमशः चोटी से लेकर तलो तक। और हर दस-पांच क्यारियों के परे एक २ घर। जीवन में पहली बार नरेन्द्र और नीलकण्ठम् ने पर्वतीय कटिबन्धों में बसे गाँवों और उनके खेतों का ऐसा अद्भुत विधान देखा।

पहाड़ों के उतार-चढ़ाव की यात्रा के आदी न होने के कारण बस में बैठे कई दूसरे यात्रियों का जी मचलना और कै होना शुरू होगया था। देखकर नीलकंठम् की भी वही दशा हो गयी। गनीमत थी कि पेट में कुछ था नहीं। रह रहकर केवल पित्त उगल रहा था। पेट में मरोड़ सी आ गयी। बस में बैठे एक कश्मीरी मुसलमान ने चट अपने झोले से दो-चार कागजी नींबू निकाले। उनके टुकड़े करके इन पीड़ितों के हाथ थमाते हुए बड़े सहानुभूति भरे स्वर में बोला — "लो बाबू, इसे चूस लो। तबियत ठीक हो जायगी। फिकर मत करो, आगे का रास्ता ठीक है।"

आगे जेहलम दिखायी दी। दोनों पार्श्व में भीमकाय उतुंग पर्वत-श्रेणियाँ, और हजारों फुट नीचे सँकरे दरारों में से होकर बहती वितस्ता (जेहलम) ! कहीं बलखाती, कहीं इठलाती और

कहीं सागर से मिलने की उतावली में अति प्रचंड वेग से शिला-खंडों को तोड़ती और चूर करती अनंत की ओर दौड़ी जा रही थी, मदभरे मानव-समाज को याद दिला रही थी — 'मैं अनंत, गति अंत न मेरी, शाश्वत सुभग सलोनी, किन्तु जन्म-मरण की क्रूर कड़ी में जकड़ा तू इठलाता ! ज़रा-जवानी के पाशों में बंधा हुआ क्यों अकड़ रहा ?'

अस्तु ! कोहाला पुल पारकर बस जेहलम के दूसरे पार पहुंची। इस पुल का आधा भाग बृटिश भारत में और आधा कशमीर-भारत में पड़ता था। अब बस कश्मीर की सीमा में प्रविष्ट हुई, वितस्ता बायीं बगल में आ गयी, और लगातार सौ मील तक अर्थात् बारामूले तक साथ रही। कोहाला से तीस मील दूर दोमेल में दो घण्टे के लिये बस रोक दी गयी। सरकारी कर्मचारियों द्वारा चुंगी लगाने लायक चीज़ों की तलाशी ली जाने लगी। एक मुस्लिम महिला तो अपने यत्नपूर्वक बन्धे बिस्तरे-बिछौने को खोलते-खोलते खीझ उठी, और भुँझलाकर बोली—"या खुदा ! यह कैसी बुरी हकूमत है ! जान खाये जा रहा है !"

दो घंटे बाद बस पुनः चली। क्रमशः मुजफ्फराबाद, चिनारी, गढ़ी और उड़ी नामक मुख्य-मुख्य स्थानों को पार करती श्रीनगर की ओर दौड़ी जाने लगी। रास्ते में आया 'मोहरा पावर हाऊस' जहां से समस्त कश्मीर उपत्यका को बिजली मिलती है, और एक आश्चर्य जनक लकड़ी की नहर ! सघन बन के बीच बहते चश्मे (स्रोत) को लकड़ी के पेट में डाल कर अद्भुत कौशल के साथ दस मील तक ले जाकर रामपुर के पास जेहलम में मिला दिया गया है। यही नहर सारे कश्मीर को बिजली प्रदान करती है। इसके बाद बारामूला ! और वहाँ से चल कर वह बस शाम को कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में पहुंच गयी।

× × ×

पतली नुकीली नाव को कश्मीर में शिकारा कहते हैं। बड़ी तेज़ होती है। इस पर बैठ कर मछलियों का शिकार बड़ी खूबी से किया जाता है, इस लिये इसका नाम शिकारा है।

बीसेक मिनट इंतज़ार करने के बाद झील का पहला फाटक खुला। एक एक कर शिकारे घुसने लगे, और दूसरे फाटक के आगे पुनः कतारबद्ध खड़े हो गये। बीसेक मिनट बाद पहला फाटक बन्द होने पर अब दूसरा फाटक खुला। एक एक कर सब शिकारे अब झील के अंदर घुस गये। झील की जलराशि को बदस्तूर कायम रखने के लिये फाटक लगा कर पानी को जेहलम नदी में गिरने से रोक रखा जाता है। यही इन फाटकों की उपयोगिता है।

झील में आगे बढ़ने के दायें-बायें दो रास्ते हैं। एक जाने का, एक वापस आने का। एक से जाइये तो दूसरे से वापस आइये। हमारे यात्रियों का शिकारा दायीं ओर से चल पड़ा। उन्हों ने देखा, झील के उस पार उत्तुङ्ग पर्वत शिखा पर शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित शारदा-मन्दिर का गगनचुंबी गुंबज, और नीचे पर्वत की नली में राज पथ के किनारे आधुनिक अमीराना होटलों की कतारें। शिकारा आगे बढ़ा; देखा, चौड़ी नुकीली सी जहाज़ों सी सुन्दर विशाल हाऊस बोटों (गृह-नौकाओं) की क्रमबद्ध पंक्तियाँ, और उन पर अमीरों की रंग-रेलियाँ। शिकारा आगे बढ़ा; देखा झील के बिल्कुल बीच में बना एक नयनाभिराम मकान, वास्तुकला की परम अभिज्ञता का प्रमाण; और उसके चतुर्दिक् घिरी परिधि में कमल-कुसुमों का सुचारु विन्यास। शिकारा आगे बढ़ा; देखा, सामंती शान-शौकत में इठलाता गुपकार महल, जिसे कश्मीर नरेश अपने ग्रीष्म आवास से प्रासादित करते हैं। शिकारा आगे बढ़ा और पौण घंटे बाद शाही चश्मे के सामने किनारे से आ लगा। किनारे से करीब डेढ़ मील ऊपर की ओर यह शाही चश्मा है, एक सुन्दर

मनोहर उपवन से घिरा हुआ। उपवन के बीच एक छोटे से खुले भवन के मध्य चश्मे (जलस्रोत) के मुख को शिल्पियों ने फव्वारे का रूप दे दिया है, उस से दो तरफ से दो पतली पतली धाराओं में पानी नीचे हौज में गिरता है, बर्फ सा शीतल, अमृत सा स्वादिष्ट !

लाला किशनचंद अपने दल सहित वहाँ पहुंचे। उन पतली धाराओं से चुल्लू भर पानी पी कर बड़ी प्रसन्नता की डकार लेकर बोले—'अहा ! कैसा मीठा और ठण्डा है ! लो पुत्रो, पीते जाओ, जन्म सफल बनाते जाओ !'

सब ने जी भर कर पानी पिआ। लाला जी फिर बोले—'यह ऐसा-वैसा चश्मा नहीं। किसी जमाने में हिंद की मलका नूरजहां और हिंद के शाहंशाह जहांगीर इसी चश्मे का पानी पीते थे। तभी तो इसका नाम शाही चश्मा पड़ा है।'

नरेंद्र ने मुस्करा कर कहा—'अब तो चाचा, सभी पीते हैं इसका पानी, लेकिन कश्मीर के शाहंशाह हरिसिंह देव जी नहीं पीते।'

लाला जी कुछ अनुत्साहित होकर बोले —"अरे, आजकल के राजे--महाराजों की बात क्या ? वे चश्मे का पानी क्यों पीने लगे ? जहाँ विलायती शराबों की नदी बहती है, वहाँ पानी की क्या पूछ ? अब न वे शाह रहे और न वह मलका रही। सब दिन होत न एक समान।"

लाला जी की कन्या गार्गी भी बोली—"चाचा, पानी की जगह शराब नहीं ले सकती। राजों-महाराजों को भी आखिर पानी की प्यास होती ही है। लेकिन यह कहो कि अब यह चश्मा ही राजाओं के लायक नहीं रहा, क्योंकि इसका पानी अब साधारण जनता जो पीने लगी है।"

लाला जी अपनी पुत्री को मीठी फटकार बताते हुए बोले—"चुप रहो। हमें बड़ों की आलोचना न करनी चाहिये।"

सब किनारे पर आकर फिर शिकारा पर बैठे। शिकारा निशात और शालीमार को चल पड़ा। दो घंटे बाद निशात पहुँचा। क्योंकि हवा का रुख विपरीत था। निशातबाग के एक सघन सच्छाय चिनार के वृक्ष के नीचे बैठ कर सबों ने खाना खाया। खाना साथ लेते आये थे। फिर शालीमार को आये। फलों से लदे सेब और नाशपाती के वृक्ष ही इन उपवनों के प्राण प्रतीत हो रहे थे। शालीमार समतल है, तो निशात सम-विषम। किंतु इसकी सम विषमता में कला है, जो शालीमार से इसे अधिक सुन्दरता प्रदान करती है। शालीमार के बीच में संभवतः जहांगीर का बनवाया काले शंखमर्मर के बड़े खम्बों का एक सुन्दर भवन है। बस!

दो घण्टा दिन बाकी था। अब शिकारा श्रीनगर की ओर चला। झील की एक पतली संकरी नाली से तीर की तरह दौड़ने लगा। दूर से हरिपर्वत का किला दिखायी दे रहा था, और उस नाली के दोनों तट पर गीली जमीन पर उगे पेड़-पौधे घनी झाड़ी का प्रतिभान कर रहे थे। तट पर बसे गांव की छोटी-छोटी झाड़ियों और कुछेक भाग्यवानों के ऊंचे चौड़े मकान, चीड़ और देवदारु की लकड़ी से बने। शिकारा गुजर रहा था, नंगे अध-नंगे कश्मीरी मुसलमान बच्चे और मैली-कुचैली फिरनों में लिपटे कश्मीरी नर-नारी उत्सुक एवं कौतूहल पूर्ण नेत्रों से इन यात्रियों को देख रहे थे। इस प्रकार नाना रंग-बिरंगी दृश्यों को देखते सुबह के चले शाम को सब जने बासे पर आ पहुंचे।

रात को खा-पी कर बिस्तर पर पड़े चारों जने डल झील की लंबी चक्करदार सैर के सम्बंध में अपना २ मन्तव्य प्रगट कर रहे थे। नरेंद्र अब तक चुप था। अंत में निराशा भरे स्वर में वह बोला—'मुझे तो कहीं कश्मीर नहीं दिखाई दिया, चाचाजी!'

'क्यों? अब भी तुम्हारा दिल नहीं भरा?'

'कोई खास नई बात देखने में नहीं आई, चाचा जी!'

'क्यों ? शालीमार और निशात बाग पसंद नहीं आया ?'

'पसंद-नापसंद की बात नहीं कहता, चाचा जी ! बगीचा है, कभी किसी राजा ने बनवाया है, बस। यदि बने बनाये बगीचों की बात करो, तो मुझे तो लाहौर का लारेंस गार्डन अच्छा मालूम पड़ता है। और ... ...'

बीच में ही गार्गी बोल पड़ी —'हाँ नरेन भाई ! मुझे भी ऐसा ही लगता है।'

अपने मंतव्य का समर्थन पा नरेंद्र को अब कुछ उत्साह हुआ। उत्साहित होकर बोलने लगा— 'एक नई चीज यहां यह देखी है, कि नीचे गर्मी है, यहाँ ठण्डी। और देखा है फटे और गंदे चीथड़ों में लिपटी कश्मीर की सुन्दर आत्मा को। गरीबी और गंदगी इस आत्मा को अपना रूप दिखाने भी तो नहीं देती चाचा जी !"

"गरीबी स्वर्ग को भी नरक बना देती है। इस में कश्मीर का क्या कसूर ?"—लाला जी ने कहा।

ऐसी बातों से लाला जी को न जाने क्यों चिढ़ थी। वे ज़रा झुंझला कर बोले—"अच्छा अब हो गया ! चुप रहो। दिन भर के थके हैं नींद आ रही है।" कह कर वे चुप हो गये, और थोड़ी देर में ही खर्राटे लेने लगे। कह नहीं सकते कि औरों को उसी क्षण नींद आ गयी या नहीं, किंतु कमरे में निस्तब्धता छा गई।

: २३ :

दूसरे दिन सवेरे नींद खुलते ही लाला किशनचन्द जी चिल्ला-चिल्लाकर सब को जगाने लगे।"उठो गार्गी ! नरेन ! सवेरा हो गया। कब तक सोये रहोगे ! देर हो रही है।"

नरेंद्र, नीलकण्ठम् और गार्गी, सब के सब बिछौने पर उठ बैठे। अंगड़ाई लेने लगे। लाला जी उन्हें सचेत करने के ख्याल

से बोले —"झटपट हाथ मुँह धो लो ! गुलमर्ग चलना है। बस रवाना होने में केवल घंटे भर की देर है।" — कहकर सब को नहाने–धोने को विदा करके स्वयं नौकर के साथ सामान-असबाब बाँधने में लग पड़े। फिर स्वयं भी नहाया–धोया और सब जने कुछ जलपान करके बस के अड्डे की ओर चल पड़े।

बस इनके इंतज़ार में खड़ी थी। क्योंकि कल शाम को ही उन्हों ने सीटें रिज़र्व करा ली थीं। इनके आकर अपनी सीट पर बैठते ही वह गुलमर्ग की ओर रवाना हो गयी। पक्की पथरीली सड़क क्रमशः ऊँची होती सी और उस पर बस दौड़ी जा रही थी। उसकी दोनों बगलों में पर्वत से निकले छोटे-छोटे स्रोते दूर-दूर तक खुले मैदान को आप्लावित कर रहे थे। और उस अविराम आप्लावित मैदान में मीलों लहलहाते धान के हरे–भरे खेत ! देखते ही बनता था ! आखें हरी हो रही थीं, मन हरा हो रहा था ! क्रमशः गुलमर्ग की हिमाच्छादित चोटियां स्पष्ट और स्पष्टतर होती आ रही थीं। जहां-तहाँ नाख और सेब के सुन्दर बगीचे अपनी पूरी फल-समृद्धि के द्वारा बहुतेरे यात्रियों की जीभ को हठात् रसमय बना रहे थे। अपने मैले-कुचैले पायजामों और कोटों में लिपटे अपने मदरसे को जाते हुए कश्मीरी बच्चे अति कौतूहल पूर्ण नेत्रों से यात्रियों को घुर–घुर कर ताक रहे थे। पैरों तक सोहरती फिरनों (लबादों) में लिपटी और कानों में कंधों तक लटकते चांदी के कर्णफूल पहने कश्मीर-किशोरियां बगैर हिचक और बाधा के तिरछी निगाहों से उन्हें देख रही थीं।

इस प्रकार डेढ़ घंटे बाद बस गुलमर्ग से तीन मील नीचे टौंगमर्ग पहुंची। गुलमर्ग के सभी यात्री सामान-असबाब के साथ यहाँ उतर पड़े। कुलियों और घोड़ेवालों की टोलियों ने मधु-मक्खियों की भांति उन्हें घेर लिया। स्टेट की ओर से कुलियों का बन्धा रेट चार आने था, और घोड़ेवालों का आठ आने। इन

काले साहेबों को अपनी ओर आकृष्ट करने के ख्याल से कुली लोग अंग्रेजी के कुछ रटे-रटाये टूटे-फूटे शब्द बोलते जा रहे थे।

लाला किशनचन्द ने दो कुली लिये, और नौकर को छोड़ अपने चारों जने के लिये घोड़े का इन्तजाम करने लगे। नरेंद्र ने कहा—'मैं तो पैदल जाऊंगा, चाचा जी!'

लाला जी कुछ आश्चर्य के स्वर में बोले—'पैदल क्यों जाओगे? तीन मील सीधी चढ़ाई है, थक जाओगे।'

नरेंद्र ने कहा—'ये कुली बेचारे बोझा ले कर चढ़ सकते हैं, तो मैं क्या खाली हाथ भी नहीं चढ़ सकता?'

'लेकिन तुम तो कुली नहीं हो।'

'नहीं चाचा जी! आप बूढ़े हैं, नीलू भाई बीमार हैं, और गार्गी औरत है। इसलिये आप तीनों जने घोड़े पर जायं, पर मैं तो पैदल ही जाऊंगा।'

उधर से गार्गी बोल पड़ी—'मैं भी पैदल जाऊंगी।'

इस पर लाला जी झुँझलाकर गार्गी की नकल उतारते हुए बोले—"मैं भी पैदल जाऊँगी। नरेन जब पैदल जायगा तो गार्गी क्यों रुकने लगी! जो मर्जी में आवे कर!"—कह कर केवल दो घोड़े अपने पास मंगवा लिये।

लाला जी और नीलकंठम् घोड़े पर सवार हो पक्की सड़क से चले और उनके पीछे पीछे घोड़ों वालों के साथ उनका नौकर मुरली एक हाथ में लालटेन लटकाये और दूसरे हाथ में झोला लिये द्रुत गति से चलने लगा। इधर नरेंद्र और गार्गी कुलियों से आगे आगे तेजी से ऊपर चढ़े चले जा रहे थे। पीठ पर मन मन भर बोझ लादे दोनों कुली लेकिन धीरे धीरे चल रहे थे। उन में एक की उम्र पचास के करीब थी। बोझा बड़ा भारी था। गिड़-गिड़ाते हुए दूसरे नौजवान कुली से वह बोला—"बेटा सलीमा! कुछ मेरी भी मदद कर।"

"वाह महमूदा चाचा ! जैसे कि मेरी पीठ बिल्कुल खाली हो।"

"तू अभी जवान है बेटा !"

"जवान हूँ तो क्या मर जाऊं ? तुमने इतना बोझ लाद क्यों लिया ?"

"क्या करूँ बेटा ! बाबू और कुली करना जो नहीं चाहता था।"

"तो छोड़ देते।"

"तो खाता क्या ?"

"अपना सर खाओ ! मैं क्या करूँ ? मैं तो खुद बोझ से मरा जा रहा हूँ।"—कह कर सलीमा चलने लगा।

"दम्मा ले लो बाबू, दम्मा ले लो !"—कह कर एक देवदारु-वृक्ष के नीचे अपना बोझ रखते हुए तेजी से आगे बढ़ते नरेंद्र को महमूदा ने पुकारा।

"अभी तो एक फर्लांग भी नहीं आये बाबा !" —पीछे मुड़ कर नरेन्द्र ने जवाब दिया।

"आप लोग आगे जाओ बाबू ! हमारा नम्बर आपके पास है। कोई डर नहीं। सामान आपको मिल जायगा।" — सलीमा ने कहा।

"अच्छा ज़रा हम भी दम ले लें।" — कहकर नरेन्द्र और गार्गी उसी वृक्ष की छाया के नीचे आकर बैठ गये।

फिर महमूदा बड़े दीन स्वर में बोला — "आप लोग घोड़े पर क्यों नहीं गया बाबू ? आप लोग अमीर हैं। तीन मील की सीधी चढ़ाई है ! बड़ी तकलीफ होगी !"

नरेंद्र ने हँसकर वही जवाब दिया जो अभी लाला जी को दे चुका था — "तुम बूढ़े होकर मन भर बोझ लादे चढ़ रहे हो, तो क्या हम नौजवान होकर खाली हाथ भी नहीं चढ़ सकते ?"

महमूदा पीठ की ओर धसे अपने उदर की ओर इशारा करते हुए वैसे ही दीन स्वर में बोला—"पेट की खातिर बाबू ! यह पेट जो न करा ले बाबू !"

नरेंद्र का हँसता चेहरा एकाएक उदास हो गया। दिल पसीज गया। अब वह महमूदा से बड़े ही कोमल स्वर में बोला—"अच्छा तो अपने बोझ में से मुझे भी कुछ दे दो !"

महमूदा घबड़ा कर बोला — "नहीं बाबू नहीं ! मैं सही-सलामत आपका सामान पहुंचा दूंगा। जो मर्जी हो इनाम-बख्शीश दे देना !"

"घबड़ाओ मत बाबा ! तुम्हें इनाम-बखशीश भी मिलेगा।"—कहकर नरेंद्र ने जबर्दस्ती आधे वज़न का सामान उसमें से निकाल कर अपनी पीठ पर लाद लिया।

दोनों कुलियों के साथ नरेंद्र और गार्गी चल पड़े, और प्रति फर्लांग दम्मा लेते हुए ऊपर को चढ़ने लगे। नरेंद्र बलवान था अवश्य, किन्तु पीठ पर आधा मन बोझ लाद कर पहाड़ पर चढ़ने का पहला मौका था। उस ठंडे वातावरण में भी पसीने से वह तर हो गया। उसकी यह दशा देख गार्गी बड़े आग्रह से बोली—"लाइये नरेन भाई, कुछ मुझे भी दीजिये ! अकेले ही सारा पुण्य मत बटोर लीजिये।"

गार्गी के इस व्यंग्य और ममता भरे आग्रह पर नरेंद्र बोला, "केवल पैदल चलने में साथ दे कर ही तुमने साहसिकता की हद कर दी। पुण्य में भी हाथ बटाने की चेष्टा कर के सिर पर कहीं पाप न लाद दो।"

लेकिन गार्गी कब मानने लगी। दो चार सेर का वजन उसने भी हाथ में ले ही लिया। इस प्रकार डेढ़ दो घंटे बाद सब के सब गुलमर्ग की ठंडी चोटी पर जा पहुंचे। उधर लाला जी नीलकंठम् के साथ पहले ही पहुंच चुके थे। बंधी मजदूरी के अतिरिक्त कुलियों को इनाम-बकशीश दे कर विदा किया गया।

तब तक के लिये राज्य की धर्म साला में डेरा लगाया गया। उस दिन चूल्हे चौके के झंझट में न पड़ कर बाजार से खाना मंगवाया गया। खा-पी कर, कुछ आराम कर शाम के चार बजे सब सैर को निकले।

पश्चिम की ओर उतुङ्ग श्यामल शिखरों पर पिघलते बर्फ-खडों की पतली सफेद धारियां शुभ्र जटा के बिखरे लटों की भांति आभासित हो रही थीं। तिपहरे सूर्य की मद किरणें उन धवल धारियों में स्फटिक की भ्रांति पैदा कर रही थीं। पर्वत के कटि-बन्धों पर ऊपर से नीचे तक देवदारु की अति श्यामल सघन तरु-पंक्तियाँ प्रकृति की अद्भुत कला-कुशलता का परिचय दे रही थीं। और इस मां प्रकृति की हरी-भरी गोद में गुलमर्ग की आबादी बसी है— देवदारु और चीड़ की कोमल लकड़ियों से बने छोटे-बड़े भवनों का एक बृहत् समुदाय।

इस स्वर्गीय सौंदर्य को देखते ही नीलकंठम् की अब तक की सारी मायूसी, सारी निराशा दूर होकर उसके प्रसन्न मुख से कालिदास की कविता का एक चरण बरबस निकल पड़ा — अमुम् परः पश्यसि देवदारुम् —उसका यह प्रसन्न उद्गार सुनते ही नरेंद्र और गार्गी खिलखिला कर हंस पड़े और मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न भी हुए।

नरेंद्र अत्यन्त खुश होकर बोला—'सचमुच चाचा जी आप बड़ी अच्छी जगह ले आये हैं। अब कुछ कश्मीर की झलक दिखाई दे रही है।'

लाला किशनचंद उत्तर में बड़े तपाक से बोले—'अरे अभी तुम ने कश्मीर का देखा ही क्या है? तुम तो सिर्फ श्रीनगर को देख कर ही निराश हो गये थे। अरे यह संसार का स्वर्ग है स्वर्ग! दुनिया का बहिश्त!'

'लेकिन चाचा जी, यहां भी गरीबों का वही बुरा हाल। उनके लिये तो यह स्वर्ग कदापि नहीं, यह तो नरक है।'

नरेंद्र की बात सुन कर लाला जी एकाएक तुनक कर बोले, 'तुम भी अजीब हो नरेन ! जब देखो, तब वही रोना वही धोना। हाय गरीब, कि हाय गरीबी। अमीर गरीब तो सारी दुनिया में हैं, इस से हमें क्या ? हमारे रोने से गरीबों भाग नहीं जाती, अमीरी खतम नहीं हो जाती।'

लाला जी की फटकार सुन कर नरेंद्र चुप हो गया। उसका उदास चेहरा देख कर लाला जी को अपने व्यवहार पर पछतावा होने लगा। अत्यन्त मीठे स्वर में नरेंद्र से बोले — 'बेटा नरेन ! गरीबों पर मुझे भी दया आती है, लेकिन करूँ क्या ? अपने वश की बात नहीं। अगर तुम लोग यहां भी इन्हीं बातों की फिकर में लगे रहोगे, तो स्वाथ्य तुम लोगों का कैसे सुधरेगा ? दिन-रात पढ़ने-लिखने में लगे रहते हो, स्वास्थ्य की चिंता ज़रा भी नहीं रखते।"

यद्यपि नरेंद्र का स्वास्थ्य सुन्दर था, किंतु किशनचन्द उसे पुत्र से अधिक प्यार करते। पिता को पुत्र के स्वास्थ्य की सदा चिंता रहना स्वाभाविक है। अपने धर्म पिता के मुख से ममता भरी चिंता के उद्गार ने नरेन्द्र का हृदय विगलित कर दिया। उमड़ते उच्छ्वास को दबाकर वह चुप रहा।

तीन-चार दिन बाद एक दिन, दिनके भोजन के वक्त नीलकण्ठम् बायें हाथ से पेट सहलाते हुए लाला जी से बोले— "जगह तो वास्तव में बड़ी अच्छी है चाचा जी ! सीनरी भी बड़ी अच्छी है। लेकिन एक बड़ी बुरी बात है यहाँ। खाना नहीं पचता, भूख नहीं लगती।"

लाला जी गर्दन हिलाते बोले—"हाँ बेटा, यह शिकायत तो मुझे भी मालूम पड़ रही है।"

नरेंद्र भी बोला—"केवल आपको ही नहीं, सब को। गार्गी भी आज यही बता रही थी।"

लाला जी फिर मुँह मिचका कर बोले—"भई, यहाँ हमारा गुज़ारा नहीं होने का! आज सेठ पूरनमल के फैमिली टयुटर (गृह-शिक्षक) मिले थे। कह रहे थे, यहाँ रहकर शराब का सेवन बहुत ज़रूरी है। सेठ जी के घर में पीने का पानी यहाँ से चार मील दूर फिरोजा नाला से आता है। सेठ जी का सारा परिवार आया है। २५-३० आदमी होंगे। श्रीनगर में पूरे सीज़न के लिये डेढ़ हज़ार में एक बड़ी शानदार हाऊस बोट किराये पर ली थी। कुछ दिन रहे। जगह पसंद नहीं आयी। यहां चले आये हैं। बारह सौ में किराये पर एक बड़ा बंगला लिया है। सेठ जी का परिवार हर साल आता है, और लाख सवा लाख पर तुलसी-दल छोड़ जाता है। भई, यह जगह हमारे-तुम्हारों के लिये नहीं। बड़े बड़े सेठों और साहिबों का ही यहां गुज़ारा हो सकता है। दुकानों पर टंगे साइन बोर्डों पर सब से पहले शराब! भई, हम से तो शराब का सेवन होगा नहीं, और यहां से पाँच मील दूर फिरोजा नाले से रोज पानी भरवाकर मंगवाना अपने बस की बात नहीं। चलो, पहलगांव चलें। कहते हैं जगह बहुत अच्छी है, कमखर्चीली भी है।"

चाचा जी के प्रस्ताव का सब ने अनुमोदन किया। उसी दिन वे पहलगाँव के प्रस्थान की तैयारी करने लगे।

: २४ :

दूध जैसी स्वच्छ और धवल धारा पर निरंतर इठलाती और बलखाती लंबोदरी (लिदरी) पहलगाँव की प्राकृतिक सुषमा में चार चांद लगाती है। इस की अविरत फुदकती धारा को देखिये, न आँखें थकेंगी, न मन थकेगा, और हृदय कवितामय बन जायगा। तीर्थराज प्रयाग की त्रिवेणी कल्पित है, औपचारिक है, किन्तु यहां आप सर्व सौंदर्यमयी साक्षात् त्रिवेणी के दर्शन करेंगे।

पहलगाँव भूतलका स्वर्ग है, तो यह लंबोदरी भूतलकी मंदाकिनी।

अब नीलकण्ठम् का पहला स्वास्थ्य अपने पूरे यौवन के साथ पलट आया था। यहाँ रहते दो महीने हो गये थे। गर्मी की छुट्टी अब खत्म होने ही वाली थी। एक दिन नीलकण्ठम् और नरेन्द्र लंबोदरी के तट से सटे देवदारु-निकुंज में बैठे माँ प्रकृति के अपरूप रूप को जी भर कर निरख रहे थे। लम्बोदरी की फुदकती, मचलती और दौड़ती जलधारा के साथ नरेन्द्र के हृदय और नेत्र अनंत की ओर दौड़ जाते, फिर लौट आते, और फिर दौड़ जाते। किंतु आश्चर्य तो यह कि इस दौड़ और प्रति दौड़ में थकावट रंचमात्र नहीं, ऊबने का कोई नाम नहीं।

एक समय नरेन्द्र की तन्मयता को भंग करते हुए नीलकंठम् ने कहा—"यहाँ से जाने का जी नहीं कर रहा नरेन! मन होता है यहीं रम जाऊं।"

"क्या अब भी तुम्हारे दिल से वे वाहियात बातें दूर नहीं हुईं?"—उस की मनोदशा के कारण का अनुमान लगाते हुए नरेन्द्र ने कहा।

"नहीं भई नरेन! लाख कोशिश करने पर भी वे बातें भूलती नहीं।"

"तो क्या एक तुच्छ औरत के कारण संसार को त्याग दोगे? दुनिया से मुँह मोड़ लोगे?"

सुनकर नीलकंठम् के मुखपर एकाएक घृणा की गहरी रेखा खिंच गयी। वह नाक-मुँह सिकोड़ कर बोला—"छिः! तुम क्या समझते हो कि मैं उस वेश्या की खातिर संसार छोड़ना चाहता हूँ? दुनिया से मुख मोड़ना चाहता हूँ? नहीं नहीं, हर गिज़ नहीं! लेकिन मैं उस पतिता को भूला नहीं हूँ, भूल सकता भी नहीं। हृदय में प्रतिशोध की आग सुलग रही है। न जाने कब धधक उठे, और उस जैसी कितनी पतिताओं को जला के राख

कर दे !"—कहते-कहते उसकी आँखें लाल हो उठीं। मानों आँखों से अंगारे बरसने लगे।

नरेंद्र सहम गया। बोला—"तुम्हें आज क्या हो गया है नीलू भाई ? तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"मैं बिल्कुल दुरुस्त हूँ नरेन। मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ भाई ! लेकिन लगता तो ऐसा है कि तुम डर गये हो। तुम शायद सोचते हो कि मैं उसे गोली मारूँगा।"

"तो फिर ?"

"नहीं नहीं, उसे अब मारूँगा नहीं। वह तो मर चुकी। मरी को फिर मारना क्या ?"

"तुम क्या कह रहे हो मैं समझा नहीं।"

"मैं यह कह रहा हूँ, कि मैं अब धनी बनना चाहता हूँ। धनी बनने की चेष्टा में अपने को खपा देना चाहता हूँ।"

"इसके मानी"

"इस के मानी यही कि धनी बन कर उस जैसी अनेक वेश्याओं को पैरों की चपली बनाऊंगा।"

'छिः ! क्या बक रहे हो नीलू भाई ? पागल तो नहीं हो गये ?'

मुझे पागल कह लो, या जो जी में आवे कह लो, लेकिन मेरा तो दिल तब तक ठंडा नहीं होने का, जब तक कि उस से बदला न ले लूँ ! देख लेना, साल दो साल बाद वह बनिया इस पतिता को भी ठोकर मार घर से निकाल देगा। और तब वह अपना काला मुँह लिये फिर उसी लाहौर में आयेगी। और मैं पैसे के ज़ोर पर रोज किसी खूबसूरत चमड़ी की औरत को हाथ में हिलाते उसके सामने से गुजरूँगा। और छाती फुलाकर बोलूंगा —"देख ! एक दिन जिसे तूने दरिद्र समझकर ठुकरा दिया और एक बूढ़े लंपट को गले लगाया, आज वही दरिद्र तुझ जैसी दर्जनों को पैरों की जूती बनाये लिये फिर रहा है। देख ! और यदि वैसे न दीखे तो चश्मा लगा के देख !"

"लेकिन नीलू भाई ! यह तो बदला नहीं, आत्महत्या है। वह तो पतित बन ही गयी, लेकिन उसके पीछे तुम महा पतित बनना चाहते हो। छिः !"

"छिः छिः क्या कर रहे हो नरेन ! अभी तुम पर पड़ा नहीं। यदि पड़ा होता तो, यह तुम्हारा सारा आदर्शवाद हवा हो गया होता।"

नीलकंठम् की बातें सुनकर नरेंद्र अवाक हो गया। विस्मित आँखों से कुछेक क्षण उसकी ओर ताकते रहने के बाद बोला— "मुझे यह स्वप्न में भी विश्वास न था कि तुम इतनी जल्दी अपने आदर्श से गिर जाओगे, अपने लक्ष्य को भूल जाओगे।"

नीलकंठम् एक सूखी हँसी हँसकर बोला — "यह संसार आदर्श वादियों का नहीं है भाई ! सच पूछो तो आदर्श वादियों का इस संसार में रहना भी अपराध है ! यह दुनिया है ठगों की, धूर्तों की और वंचकों की ! जो जितना बड़ा ठग, धूर्त और वंचक, वह उतना ही बड़ा महान और महापुरुष ! और भैया ! संसार में सब से बड़ा दुर्गुण और दुश्मन को येन केन प्रकारेण विनष्ट कर देना ही सब से बड़ी सफलता है, सब से बड़ा आदर्श है ! आदर्श का नारा भी धनियों को ही शोभा देता है भाई ! धनी बन जाओ, आदर्श के नारे लगाते रहो, और उस नारे के पीछे दुनिया के सारे दुष्कर्म करते रहो, सब छिप जायगा। और उल्टे तुम्हें धर्मधुरंधर और धर्ममूर्ति सरीखी कितनी उपाधियाँ मिलती रहेंगी।"

नीलकंठम् आवेश में आ गया और नरेंद्र विस्मित अवाक् हो उसकी बातें सुनने लगा। वह कहने लगा — 'उस पतिता के पति उस सेठ की ही बात जरा सोच कर देख लो। महायुद्ध अभी चालू हैं। इस युद्ध में हर तरह के सामान मुहैया करने का उसने ठेका ले रखा है। सेना के लिये गोमांस तक की सप्लाई वह करता है। लेकिन कितने इस बात को जानते हैं, और

जान कर भी विरोध में बोलते कितने हैं ? बोलने वालों की जबान पर चांदी का ताला जो लगा है ! उलटे उसे बड़ी बड़ी धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की ओर से गोसेवक, गोरक्षक, धर्मभूषण जैसी न जाने कितनी उपाधियाँ मिलती रहती हैं।

'और क्या तुम्हें याद नहीं, कि जब हम बच्छोवाली सनातनधर्म पाठशाला में पढ़ते थे, तब एक दिन न्योता पा कर लाहौर के सब से बड़े सनातनी सेठ सर धरमचन्द के घर जीमने गये थे। सेठ जी किस प्रकार आसन लगाये पूजा का आडंबर पसारे हुए थे ? और एक ब्राह्मण का बच्चा बायें हाथ से घंटी टुनटुनाते हुए दायें हाथ से सेठ जी के हाथ में फूल-अक्षत-चंदन डालता जा रहा था, और सेठ जी चश्मे के भीतर से अपने बाएं जंघे पर रखी छपी पुस्तक के मंत्रों की ओर नजर दौड़ाते, ओठ पटपटाते, कितनी लापरवाही से शालग्राम और नर्मदेश्वर की मूर्तियों पर उन सब चीजों को फेंकते जा रहे थे ? और किस प्रकार लाहौर की सारी पण्डित मंडली सेठ जी की आस्तिकता और धार्मिकता का ढोल पीटती फिरती है ? लेकिन भैया नरेन ! किसी भी पंडित ने जरा भी यह सोचने का कष्ट किया है कि सेठ जी देश के चमड़ा व्यापारियों में सब से बड़े हैं ?

'और उस दिन भाई जी ..... जो कि स्वयं देश के माने हुए नेताओं में से हैं, नहीं बता रहे थे कि देश के नामी-गामी लीडरों में मुश्किल से दो चार ऐसे हैं जो इन बनियों के पैसों पर नहीं पलते ? रुपये के बल पर सेठों ने सब नेताओं की जबान खरीद ली है, आत्मा खरीद ली है, और उन्हें अपने भाड़े का टट्टू बना लिया है।

'और उसे तो तुम जानते ही हो, कि जो अपने अखबारों के बल पर धर्ममूर्ति और तपोमूर्ति बनता फिरता है, अपनी तपस्या का ढिंढोरा अपने आप पीटता फिरता है, सनातन धर्म का महानेता बना हुआ है, वह भी इन सेठों का खरीदा टट्टू ही तो है।

'क्या २ और कितना बताऊं तुम से ? पैसे की महिमा अपरंपार है भैया ! जिसके पास पैसा है, यह संसार ही उसके लिये स्वर्ग है, सारा संसार उसका है दास। और पैसे के बिना यह संसार ही नरक, सर्वशून्य ! अतः अब नीलकंठम् आदर्शवाद को तिलांजलि दे वस्तुवाद का उपासक बनने का पक्का निश्चय कर चुका है। अब वह टस से मस नहीं होने का। युद्ध जारी है। इस बहती गंगा में बनिये चुमक २ कर गोते लगा रहे हैं। मैं भी गोते लगाऊंगा, खूब गहराई के साथ। मुझे अपने पर विश्वास है। अब आदर्शवाद को बारम्बार नमस्कार !' — कह कर नीलकंठम् चुप हो गया।

नरेंद्र अब तक एक टक से नीलकंठम् के चेहरे की ओर ताक रहा था। उसके चुप होने पर कुछेक क्षण बाद एक लंबी आह भर कर बोला — 'मुझे बड़ा दुख है तुम्हारे इस पतन पर नीलूभाई ! हाँ, औरों की तरह तुम भी धन कमा लोगे। सेठ बन जाओगे, धन्ना सेठ बन जाओगे. तुम ने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ कर लोगे, लेकिन.....लेकिन मनुष्य नहीं रह सकोगे।'

नीलकंठम् व्यंग्यपूर्ण अट्टहास कर के बोला —'मनुष्य नहीं रह सकूंगा ! अर्थात ...अर्थात् पशु या पिशाच बन जाऊंगा। तो क्या तुम्हारी समझ में संसार के ये सारे धनी-मानी पशु और पिशाच हैं ? उठो, चलो, देर हो रही है ! इन वाहियात बातों को अपने पास ही रखो।'—कह कर वह उठ खड़ा हुआ। नरेंद्र भी उठ खड़ा हुआ, और बगैर कुछ कहे चुपचाप उसके पीछे अपने वासे की ओर चल पड़ा !

: २५ :

सन १९३७ में देश के अनेक प्रांतों की तरह बिहार में भी शासन की बागडोर काँग्रेस के हाथ में आयी। काँग्रेस ने शासन

के समक्ष बड़े ऊंचे त्याग का आदर्श रखा। पांच हजार की जगह पाँच सौ मासिक वेतन लेने का कांग्रेस मन्त्रियों ने निर्णय किया। जनता पर इसका बड़ा अच्छा असर हुआ, किंतु नौकर-शाही पर उतना ही बुरा। मंत्रि-मण्डल के प्रति जनता में उत्साह और सद्भाव की बाढ़ आ गयी। युवकों ने नये भविष्य का और दलितों ने नये संसार का स्वप्न लेना शुरू किया।

गांव २ में वृद्ध-सभा, युवक-सभा और बाल-सभा का निर्माण होने लगा। ये सारी सभाएं एक दूसरे की मदद करतीं, एक दूसरे के काम आगे बढ़ातीं, किंतु सारा अधिकार युवक-सभा के हाथ में आ गया। हाँ, वृद्ध-सभा को सम्मान और बाल-सभा को प्यार का अधिकार अवश्य था।

ग्राम पञ्चायत का नये सिरे से संगठन किया गया। इन में वृद्ध और युवक सभा के प्रतिनिधि लिये जाते। पञ्चायत के फैसले को कार्यान्वित करने का भार युवक-सभा पर था। लोगों ने शपथ खा ली थी, कि गाँव का कोई भी मुकदमा अब गाँव से बाहर न जाने पायेगा। कांग्रेस के आदर्श को पूरा अमली रूप दिया जायगा।

अस्तु ! हरिहरपुर में भी वृद्ध, युवा और बाल सभाओं का निर्माण हुआ। गाँव के छोटे-बड़े धनी-मानी एकत्र हुए। वृद्ध-सभा के पदाधिकारियों का निर्वाचन था। अध्यक्ष, मंत्री और खजानची पद के लिये आपस में प्रतियोगिता शुरु हुई, वाद-विवाद शुरु हुआ। अंत में अक्ल और लियाकत का जरा भी ख्याल न रख के धन के आधार पर इन पदों का निर्वाचन हुआ। यद्यपि गांव का सब से बड़ा धनी भुवन था, किंतु वह था अभी युवक। उम्र अभी ३२-३३ साल की थी। अतः इस वृद्ध-सभा का अध्यक्ष पद गांव के दूसरे बड़े धनी देवकीनाथ झा को प्राप्त हुआ। मंत्री पद पर शुकदेव झा और खजानची पद पर बीलट पाठक अधिरूढ़ हुए।

इधर युवक-सभा के पद का निर्वाचन आरम्भ हुआ। बड़ी सरगर्मी से कनवासिंग (स्वपक्ष-समर्थन) शुरु हुई, गुट बँदी शुरु हुई। अध्यक्ष पद के लिये उमीदवार थे भुवन और भवनाथ। भवनाथ देवकीनाथ झा का पुत्र था और गाँव में सब से अधिक पढ़ा-लिखा, अर्थात् एफ० ए० पास था। अतः इस दृष्टिकोण से उसका पलड़ा भुवन से भारी था, किंतु धन की दृष्टि से भुवन का। अंत में काफ़ी तू-तू मैं-मैं के बाद पंचों ने फैसला दिया। उम्र और धन का लिहाज कर के भुवन को अध्यक्ष-पद मिला और भवनाथ को मंत्रि-पद। लेकिन बाद में भुवन को पछताना पड़ा, क्योंकि सारी नकेल मँत्री के हाथ में थी।

इसके बाद थानाकाँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष का चुनाव शुरु हुआ। यह चुनाव जनता के वोटों से होना था। इस पद के लिये भुवन स्वयं खड़ा होना चाहता था, लेकिन चन्द्रभानुपुर के रघुवीर सिंह ने उसे रोक दिया। रघुवीर और भुवन दोनों दिली दोस्त थे। दोनों में वह गुप्त समझौता हुआ कि रघुवीर अध्यक्ष पद के लिये खड़ा होगा, और भुवन उसकी मदद करेगा। अध्यक्ष चुना जाने पर रघुवीर भुवन को मंत्री चुन लेगा।

उधर देवकीनाथ झा अब तक कांग्रेस से सर्वथा उदासीन थे। कांग्रेस को बिल्कुल वाहियात संस्था मानते थे। अंग्रेज बहादुर की सार्वभौम शक्ति में उनका अटूट विश्वास था। लेकिन अब वे पूरी तरह काँग्रेस की ओर आकृष्ट हो गये थे। १९३५ के भारत-सम्बन्धी बृटिश विधान के अनुसार हुए चुनावों में कांग्रेसी उमीदवारों के मुकाबले जमीनदार उमीदवारों को बुरी तरह हारते देख चुके थे। चुनाव में जमीनदारों ने करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा दिये, लेकिन जनता ने कांग्रेस का साथ दिया। उनके देखते ही देखते देश के पूरे सात प्राँतों पर कांग्रेस का शासन कायम हो गया। जो कल के बंदी थे, वे आज के शासक बने। हर जगह कांग्रेस वालों का बोलबाला था। तो फिर देवकीनाथ बाबू क्यों न

कांग्रेस की ओर झुकते ? इस बुढ़ापे में खादी की धोती और गांधी टोपी पहनना उन्होंने शुरु किया। कांग्रेस के चौवनिया मेंबर बने, और कांग्रेस के मेंबर बनाने वाली रसीद बही सदा अपने हाथ में लिये रहते। अपने अड़ोसी-पड़ोसी और जन-मजदूरों को जबर्दस्ती मेंबर बना २ कर चार २ आने वसूल करते। इस प्रकार थोड़ी बहुत धाक उन्होंने जमा ली थी।

थाना कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद के लिये रघुवीर सिंह के मुकाबले देवकीनाथ झा खड़े हुए। भुवन ने भी मदद का वचन दिया, किन्तु बाद में मुकर गया। वह रघुवीर सिंह की ओर से खुली कनवासिंग करने लगा। इधर देवकीनाथ झा ने अपना गुट तैयार कर लिया। इन की ओर से भी बड़े बड़े लोग कनवासिंग करने लगे।

देवकीनाथ बाबू के बैठके में आस-पास के गावों के भले लोगों की टोली जमी थी। आज देवकी नाथ बाबू के घर इन्हें निमंत्रण था। चुनावों के मौकों पर ऐसी दावतों की भरमार सी रहती है। देवकीनाथ और भवनाथ दोनों पिता पुत्र बड़ी तत्परता से मेहमानों के स्वागत-सत्कार में लगे थे। बातों के गुलछर्रे उड़ रहे थे।

कोशाध्यक्ष श्री बीलट पाठक बिशनपुर के बाबू बंगटसिंह की ओर मुड़कर बड़े अदब और आदर के साथ बोले— "बाबू साहेब ! रघुवीर और भुवन दोनों ही बड़े बेईमान हैं। भूकंप के साल कांग्रेस की ओर से लोगों में बाँटने के लिये गाड़ी भर भर कर कंबल और कपड़े आये थे। मगर हम लोगों को एक भी कंबल या कपड़ा मिला क्या ? दो-चार कबल-कपड़े अपने सगे रिश्तेदारों से बाँटकर बाकी अपने घर में छिपा लिये। अब तक इनके घरों में कंबल-कपड़ों की गाँठें पड़ी सड़ रही हैं।"

बाबू बंगट सिंह बारंबार गर्दन हिलाकर अपनी सहमति जनाते हुए बोले—"आपका कहना बिल्कुल सही है पाठक जी !

अब इन बेईमानों को पर्सीडंट और मंतरी नहीं बनने देना चाहिये।" कह कर नाक के दोनों पुड़ों में नस घुसेड़ कर अपनी गहरी छींक से सारे कमरे को गुँजाते हुए चुप हो गये।

"और इसी लिये तो हमने इसबार अपना आदमी खड़ा किया है बाबू साहेब! कहीं नाक में कौड़ी न बँध जाय। पूरे ज़ोर लगा कर देवकी नाथ बाबू को जरूर जिताना चाहिये।" हाथ में तमाकू चुनाते हुए मंत्री शुकदेव झा ने कहा।

"अरे जीत अपनी रखा है। मैं चौड़ा बजाके कहता हूँ कि भुवन और रघुवीर की हार पक्की है। भूकंप के साल की बेईमानी क्या हम लोग भूल जायेंगे?" एक दूसरे कोने में बैठे हुए चंदर पाठक ने बड़ी शान के साथ अपना विश्वास प्रगट किया।

उसी गोष्ठी में एक तरफ़ एक गरीब मुँहफटा ब्राह्मण भी बैठा था। रामनारायण इस का नाम था। धनियों की मुसाहिबी में रहकर भी जब-तब उसकी स्वतंत्र चेतना जग पड़ती। वह बड़ी निर्भीकता से बोला — "चोर-चोर मौसेरे भाई। रघुवीर जीतें या देवकी नाथ बाबू, गरीबों के लिये सब एक जैसे। आता है गरीबों के नाम पर और खा जाते हैं अमीर।"

उसकी इस धृष्टता पर गोष्ठी में खलबली मच गयी। एक साथ अनेक आवाज़ें बोल पड़ीं — "बेवकूफ! बेहया। नंगा कहीं का! बोलने की भी तमीज नहीं। भले आदमियों के साथ रहकर भी अब तक बोलना नहीं सीखा। निकल! भाग यहां से।"— कहकर देवकी नाथ के बेटे भवनाथ ने गले में हाथ डाल कर उसे वहां से निकाल बाहर कर दिया।

× × ×

चुनाव ज़ोरों से लड़ा गया। कहीं लाठी से, कहीं मुँह से, और कहीं और तरीकों से। किसी पक्ष ने कुछ उठा न रखा। कांग्रेस का शासन था, अतः औरतों को भी खुलकर चुनाव में भाग लेने का मौका मिला। लेकिन गाँव की औरतें! पर्दानशीन

ठहरीं ! इस पर्दानशीनी का जी भर कर लाभ उठाया गया। कई चतुर और ढीठ औरतों ने पर्दे की आड़ में पांच-पाँच और दस-दस बार अपने नाम और पति-नाम का परिवर्तन कर दिखाया। प्रगति और परिवर्तन का अनोखा विलास !

बाजी लेकिन रघुवीर और भुवन के हाथ रही। देवकी नाथ बुढ़ापे में कांग्रेसी पन का खिजाब लगाकर भी सफल न हुए। मेहनत बरबाद हुई, खर्चा बेकार गया। करते क्या, जी मसोसकर रह गये। थाने के न सही, गाँव प्रेजीडेंट तो थे ही। यही क्या कम था ? संतोष कर पुनः दुनियादारी में लग पड़े। सब काम बदस्तूर चलने लगा।

इधर युवक-सभा का कार्यालय अब एक खासी कचहरी बन गया था। प्रार्थना पत्र के साथ सिर्फ दो आने पैसे दाखिल करना होता था। चट फैसला और पट अमल। इतना सस्ता और सहल न्याय किसी अंग्रेजी अदालत में कहां मिल सकता था !

× × ×

हरिहरपुर में सत्यदेव नामक एक राजपूत रहा करता था। उम्र तीस के करीब थी उसके पिता परशुरामसिंह तीनेक बीघे जमीन छोड़ कर मरे थे। वे मेहनत कश किसान थे। न ऊधो का लेना न माधो का देना उनके जीवन का आदर्श था, जो अंत तक कायम रहा। पुत्र सत्यदेव भी पिता के इस आदर्श पर चल रहा था। माँ, पत्नी और स्वयं, तीन का परिवार था। बड़ा मानी था, और साथ २ मेहनती भी। यह गुण उसे पिता से विरसात में मिला था। केराना चीजों की एक छोटी सी दुकान भी उसने खोल ली थी। अतः गांव के धनियों पर दस-पाँच रुपये का बकाया उसका सदा बना रहता।

देवकीनाथ झा पर भी उसका १५=) बकाया रह गया था। देवकीनाथ आज-कल करते जा रहे थे। अंत में सत्यदेव ने सौदा देना बंद कर दिया। देवकी बाबू खीझ उठे। तगादा करने पर

उन्होंने जवाब दिया— 'तुम्हारे बाप ने कर्जा लिय था, उसी में मैंने रुपये काट लिये हैं।'

सुन कर सत्यदेव की देह में आग लग गयी। उसे पता था, कि उसके पिता ने जीवन में कभी किसी से कर्जा-उधार लिया ही नहीं। उसने क्रुद्ध स्वर में जवाब दिया—'क्यों झूठ बोल कर मुंह खराब करते हैं बाबूजी? मेरे पिता जी ने कभी किसी से कर्जा लिया ही नहीं।'

जवाब सुन कर देवकीनाथ बाबू गुस्से में लाल हो गये। तमतमा कर बोले—'तुम्हारी इतनी सोखी? मैं झूठ बोलता हूँ? मेरा बही-खाता झूठा है?'

'झूठ सच की बात मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे पिता जी का नाम न लीजिए। उनका अपमान न कीजिए।'

'तुम्हारे बाप लाट साहेब थे क्या, जो उसका नाम न लिया जाय? घर में खर्ची नहीं बाहर डकार!'

'मेरे घर में खरची न सही, लेकिन आप से मांगने तो नहीं आया?'

'फिर मुंह लगा जा रहा है! बोलने की तमीज नहीं! कहे देता हूँ ..... '

देवकी बाबू कुछ कहने ही जा रहे थे कि युवक सभा के दफ्तर से एक लड़का दौड़ा हुआ आया और हाँफते हुए बोला—'एक बड़ा भारी मुकदमा आया है बाबूजी! सब पंच लोग जमा हो गये हैं, सिर्फ आपके जाने की देर है। भुवन बाबू ने कहा है, कि बाबूजी को जल्दी बुला लाओ।'

'चलो, मैं तो वहीं जा रहा था। लेकिन ठीक यात्रा के वक्त कहाँ से यह अभागा ..... ' आगे कुछ कहे बगैर ही वे युवक-सभा के दफ्तर की ओर चल पड़े।

दफ्तर में एक बड़ा गम्भीर मुकदमा पेश हुआ था। भगमन्ती धोबिन की लड़की रमकलिया (रामकली) जब सरेह में

घास काट रही थी, तो रंगी लोहार का लड़का जँगी भी वहीं घास काट रहा था। आस-पास किसी को न देख कर जंगी ने रमकलिया से कुछ अनुचित प्रस्ताव कर दिया। रमकलिया बड़बड़ाती-भनभनाती उसी क्षण घर वापिस आई, और अपनी मां भगमन्ती से नमक-मिर्च लगा के सारी घटना कह सुनाई। बस क्या था? सुनते ही भगमंती आग बन गई, और रँगी के सतपुरुखों का बखान करती युवक-सभा के दफ़्तर में हाजिर हो गयी, और दो आने पैसे के साथ चट अभियोग-पत्र पेश कर दिया।

उसी क्षण पंचों की मण्डली आ डटी। भुवन, भवनाथ, देवकीनाथ, बीरट और शुकदेव स्थायी पंच थे। या यों कहिये, कि कुछ दिनों से हरिहरपुर के असली भाग्य-विधाता! रमकलिया हाजिर थी ही। जंगी के साथ रंगी को भी पकड़ मगवाया गया। पारी २ से पंचों की जिरह शुरु हुई। क्या बूढ़े, क्या जवान, सब को रस आ रहा था। लगभग सारा गांव जमा हो गया था। आखिर मामला था भी तो जमा होने के लायक ही! एकाँत की घटना होने के कारण गवाहों की कमी थी। फिर भी काफी जिरह और बहस के बाद पंचगण इस निर्णय पर पहुंचे, कि रंगी के बेटे जंगी की एक-दो बार पहले भी शिकायत सुनी जा चुकी है। अतः रमकलिया पर उसका बलात्कार या बलात्कार करने की चेष्टा सही साबित होती है। और चूंकि रंगी गाँव का पौनी है, गरीब है, इसलिये उस पर केवल दस रुपये जुर्माना किया जाता है। और यह पंचायत युवक-सभा और बाल-सभा को आदेश देती है, कि जुर्माने की रकम तुरंत वसूल की जाय।

फैसला सुनते ही रंगी तो भोकार पारकर रो पड़ा। छाती कपार पीटने लगा। लेकिन पंचों के फैसले पर इसका जरा भी असर न पड़ा। पंच परमेश्वर जो होता है। अतः उसका फैसला भी परमेश्वर की भांति ही अटल, अकाट्य, सत्य और सनातन होता है।

इधर पंचों का आदेश पाते ही बाल-सभा के बंदर खुशी से नाच उठे, किलकिलाने लगे। बाल-सभा में पंद्रह साल तक की उम्र के लड़के होते। पंचों के निर्णय को कार्यान्वित करने में इन का सहयोग बड़ा ही अमूल्य साबित होता। ये लोग चट अपराधी के घर पहुंच कर सत्याग्रह छेड़ देते। किंतु इनका सत्याग्रह गांधी जी के सत्याग्रह की भांति अहिंसक न हो कर उपद्रव और उत्पात से भरा होता। अपराधी से जुर्माना वसूल किये बिना ये वापस नहीं आते।

रंगी वहीं मौजूद था, अतः उसके घर पर जा कर सत्याग्रह छेड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ी, बंदरों ने उसे घेर लिया। किसी ने हाथ पकड़ा, किसी ने चोटी पकड़ी और किसी ने धोती। रंगी के पास जायदाद कहने के लिये केवल एक भैंस थी। बड़ी दुधार थी, दोनों बेला मिला कर आठ सेर दूध दिया करती। इसी दूध को बेच कर रंगी अपने दस आदमियों के परिवार का पोषण करता। युवक-सभा और बाल-सभा के कुछ सदस्य दौड़े उसके घर पर गये और भैंस खोल कर पंचायत के सामने ले आये। भैंस की कीमत आँकी जाने लगी। देवकीनाथ की जीभ से लार टपक रही थी, इसलिये उन्होंने उस सत्तर रुपये के धन की कीमत पचीस रुपये आँकी। किंतु भुवन भी दृढ़ संकल्प था, अतः उसने तीस आँकी, और फिर देवकीनाथ ने बत्तीस। इस प्रकार डाक बढ़ते २ चालीस तक पहुंच गया। अंत में हार कर देवकीनाथ को पीछे पग हटाना पड़ा। भुवन ने उसी क्षण जुर्माने के दस गिन दिये। बाकी बाद में देने का वादा कर भैंस अपने दरवाजे पर बंधवा ली। उसका एकमात्र सर्वस्व लूट लिया।

पंचायत के उठने से पहले ही सत्यदेव खड़ा हो कर पंचों को सम्बोधित करते हुए बोला— 'पंच परमेश्वर से मुझे भी कुछ अर्ज करना है।'

"क्या अर्ज करना है ?"—भुवन ने बायें हाथ की अंगुलियों से मूछें मरोड़ते हुए पूछा।

"अर्ज यही है कि पंद्रह दिन हो गये। मैंने सभा में एक मुकदमा दायर किया। लेकिन अब तक उसकी पेशी नहीं हुई।"

भुवन ने भवनाथ की ओर मुड़कर पूछा—"इस ने कौन सा मुकदमा दायर किया था भव नाथ ?"

जवाब में भवनाथ ने कहा — "कोई मुकदमा नहीं, यों ही झूठ बोलता है।"

सत्यदेव ने कहा – "मुकदमा खुद भवनाथ बाबू पर है। इसी से उन्हों ने दबा रखा है भुवन बाबू !"

"बक बक मत कर बेवकूफ !" गुस्से में लाल हो कर भवनाथ ने उसे फटकारा।

सत्यदेव जरा भी विचलित न होकर बोला—"बक बक नहीं रहा हूँ मंत्री जी ! सच बता रहा हूँ।"—फिर पंचो को उद्देश करके वह बोला —"पंच परमेश्वर ! भवनाथ बाबू पर मेरी दुकान का १५≡) बकाया गिरता है। अब तब कर रहे थे। मैंने सौदा देना बंद कर दिया। अब खीझ कर कहते हैं कि मेरे बाप ने उन से कर्जा लिया था, उसी में मेरे रुपये उन्हों ने काट लिये। लेकिन गांव भर को यह पता है कि मेरे पिता जी ने जीते जी कभी किसी से कर्जा-उधार नहीं लिया।"

देवकीनाथ बाबू अब तक चुप थे। एकाएक लाल होकर बोले—"तो क्या मेरा बही खाता झूठा है ?"

सत्यदेव ने बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया—"फिर वही पुरानी दलील ! आपके बही-खाते की सचाई में सबूत ही क्या है ?"

"सबूत ! सबूत खोजने चला है नंगे ! कंगाल कहीं का ! घर में खर्ची नहीं बाहर डकार ! मुँह सम्हाल कर बोल ! नहीं तो ....."

"नहीं तो क्या कर लें गे आप ? गाँव से उजाड़ देंगे क्या ?"

"देखते हो न भुवन ! देखते हो न शुकदेव ? इस नंगे की हिम्मत ? भरी सभा में एक बड़े आदमी की इज्जत ले रहा है, और तुम लोग चुप चाप बैठे देख रहे हो !"—कह कर देवकीनाथ अपने सहयोगी पंचों की ओर ताकने लगे।

पिता को हारते देख पुत्र ने मोर्चा सम्हाला। भवनाथ सत्यदेव को फटकारते हुए बोला —"देख सत्ते ! तू दिन-पर-दिन शोख बनता जा रहा है। गाँव के धनियों को लूट-लूट कर दो-चार सौ रुपये अब तेरे हाथ पर हो गये हैं न ! उसी की यह गरमी है ! क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई।"

सत्यदेव ने भी कस कर जवाब दिया—"धनियों को नहीं, गरीबों को लूटता हूँ भुवन बाबू ! मैं और आप सभी गरीबों को लूटते हैं। और हम जैसों को लूटते हैं आप लोग। गाँव में ऐसा कौन धनी है जिस पर मेरा दस-पांच का बकाया न गिरता हो। अगर एक रुपये के सौदे में गरीबों से मुझे छे पसेरी अनाज मिलता है, तो उतने ही सौदे में धनियों से तीन पसेरी। सो भी बहुत दिन बाद ! अब आप ही बताईये कि मैं किन लोगों पर जीता हूँ ?"

भुवन अब तक चुप था। धनियों को बेईमान और लुटेरे का दर्जा देते देख वह आपे से बाहर हो गया। कड़क कर बोला — "देख सत्ते ! जबान को इतना तेज मत चला ! नहीं तो जीभ खींच ली जायगी। क्या धनी लुटेरे और बेईमान होते हैं ?"

सत्यदेव भी ताव में आ गया था। अभी चन्द मिनट पहले उसी पंचायत में एक निरीह गरीब को लुटता देख चुका था। और लुटेरा था स्वयं भुवन। उसके मुंह से ऐसी बात सुन कर उसकी देह में आग लग गयी। वह बोला — "हाँ जनाब !

बेईमान-लुटेरे और कहते हैं किसे ? अभी चन्द मिनट पहले इसी पंचायत में क्या एक गरीब को आपने लूटा नहीं है ? भगमंती धोबिन की छोकड़ी, जो राह चलते आप लोगों के हाथ अपनी इज्जत लुटाती फिरती है, उसी की इज्जत का बहाना बना कर क्या आपने एक गरीब के मुंह की रोटी नहीं छीन ली ? छिः ! इतने पर भी आप को शरम नहीं आती ?"

आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतनी देर तक अपने मन का मलाल निकालने का मौका सत्यदेव को मिला ही कैसे ? कुछ देर पहले केवल देवकीनाथ पर आक्षेप होते देख गांव के दूसरे धनी-मानी मन-ही-मन खुश हो रहे थे। सत्यदेव की बातों का रस ले रहे थे। लेकिन जब वह सारे धनी समाज पर आक्षेप कर बैठा, और सब के सामने ही भुवन के मुंह पर कस-कस कर बातों की चपत लगाने लगा, तो वे भी नाराज हो उठे। भुवन से अब रहा नहीं गया। 'ठहर साले हरामजादे' — कहते हुए वह सत्यदेव की ओर लपका। उसने ज्यों ही उसे मारने के लिये थप्पड़ उठाया कि सत्य देव ने अपने मजबूत हाथों से कस कर उसकी कलाई पकड़ ली।

उधर रंगी लोहार दौड़ा हुआ पार्वती बहिन के पास पहुंच चुका था। रो रो कर उसने सारी कहानी कह सुनाई थी। सुन कर मारे क्रोध के पार्वती का अङ्ग २ काँपने लगा। वह उसी क्षण अपने दस-पाँच लठैत मजदूरों को लिये पंचायत की ओर चल पड़ी। कुछ दूर से ही वह सत्यदेव की बातें सुनती आ रही थी। उसने भुवन को लपक कर आगे बढ़ते, और सत्यदेव को कसकर उसका गट्टा पकड़ते भी देखा। उसी क्षण तमतमाती हुई पहुंची, और मुँह से मानो घृणा के घड़े उड़ेलती हुई बोली—'तुम लोगों ने यह क्या पाखंड रच रखा हैं ? वृद्ध-सभा, बाल-सभा और युवक-सभा ! गरीबों को लूटने और सताने का एक अच्छा जरिया

कायम कर लिया है ! गाँधी जी के सत्य और अहिंसा का अच्छा पालन हो रहा है ! राम-राज्य का अच्छा नमूना दिखाया जा रहा है ! पापी, बेशरम, बेहया !"—और फिर अपने लठैत मजदूरों को उद्देश करके बोली —"हाँ बेटा सुरजीत ! हाँ भई रंगी ! चलो, भैंस खोल कर ले चलो ! देखूँ कौन रोकने आता है ?"

इस बीच सत्यदेव ने भुवन का हाथ छोड़ दिया था। भुवन पार्वती से गुस्सा भरे स्वर में बोला — "देखो पार्वती ! अब हम लोग तंग आ गये हैं तुमसे ! तुम्हारी इस तरह की ज्यादती अब बर्दाश्त नहीं की जा सकती !"

पार्वती ने उसी प्रकार कठोर और कड़कते स्वर में जवाब दिया—"बर्दाश्त नहीं की जा सकती तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो तुम लोग ! यह दुनिया तुम लोगों से जितनी ही जल्दी खाली हो जाय उतना ही अच्छा ! काँग्रेस के नाम पर धब्बा लगा दिया तुम लोगों ने ! गांधी के नाम को कलंकित कर दिया तुम निर्लज्जों ने !"

पार्वती की चंडी मूर्ति, लठधर मजदूरों, तथा जनता के रुख देख पंच परमेश्वरों की नस ढीली पड़ने लगी। मारे डरके कइयों को कपड़े में ही पेशाब आने लगा। और रंगी लोहार बड़े तपाक से खूँटे में बँधी भैंस को खोलकर टिटकारी भरते हुए उसे अपने घर की ओर ले चला।

: २६ :

सन १९३९ की पहली सितम्बर ! दूसरे विश्वयुद्ध का आरंभ ! संसार ने बड़ी निराशा और आश्चर्य के साथ सुना कि हिटलर की दानवी सेना अपने पड़ोसी पोलैंड पर चढ़ दौड़ी है। मानवता और विश्व की आजादी के ठेकेदार भला ब्रिटिश जाति इसे क्यों बर्दाश्त करने लगी ? ब्रिटिश टोडी प्रधान मंत्री मिस्टर

चेंबरलेन ने बृटिश पार्लमेंट में बड़े अभिमान और अहंकार के साथ उद्घोष किया—'मेरा जन्म ही हिटलर और हिटलरवाद के विनाश के लिये हुआ है।' और बृटिश राष्ट्र अपने सारे साम्राज्य के साथ इस युद्ध में कूद पड़ा। किंतु बड़े दुख की बात! हिटलर और हिटलरवाद के विनाश के पहले ही इस टोडी प्रधान मंत्री का विनाश हो गया। हर जगह हर मोर्चे पर अंग्रेजों की हार होने लगी। अंग्रेज जनता ने दूध की मक्खी की भांति चेंबरलेन को शासन की गद्दी से हटाकर फेंक दिया। लेकिन वाह रे चेंबरलेन! तू भी एक ही स्वाभिमानी निकला! हमारे देश की इतनी बड़ी जमात कांग्रेस की तू ने जरा भी परवाह न की। काँग्रेस से सलाह लेने की तूने जरा भी जरूरत न समझी, और हिंदुस्तान को इस युद्ध की धधकती आग में तू ने झोंक ही तो दिया।

किंतु, भारत की राष्ट्रीय काँग्रेस! देश की आन और शान पर मर मिटने वाली कांग्रेस! इस अपमान की ठोकर से तिलमिला उठी। पूरे सात प्रांतों की शासन-सत्ता ठुकरा कर मैदान में आ डटी। उसकी आंखें खुल गयीं। वास्तविकता का उसे पता चल गया। अपने को सर्वशक्तिमान और सर्वसत्ताधिकारी समझने वाले कांग्रेसी मंत्रियों और नेताओं की आशाओं पर पानी फिर गया। कांग्रेसी शासन समाप्त! गांवों का पंचायती राज्य समाप्त! और बहुतेरों के मन के मोदक भी समाप्त!

कांग्रेस अपने छब्बीस महीने के स्वल्प शासन-काल में स्कूल कालेजों में अनिवार्य सैनिक शिक्षा के लिये बड़ी सचेष्ट थी। देश पर बाहरी हमले का खतरा था। किंतु गोरे गवर्नर जेनरल लिनलिथगो ने इसे बेवकूफों का वहम समझा। और गोरे जंगी लाट ने तो बड़े गर्व के साथ शिमले में एक कांग्रेसी मंत्री को फटकारते हुए कहा — 'सर्वशक्तिमान बृटिश सेना के रहते हिंदुस्तान को खतरा किस बात का? हमारी सेना जर्मन सेना को सिर्फ बारह घंटे में, इटालवी सेना को छः घंटे में, और जापानी

सेना को सिर्फ दो घंटे में परास्त कर सकती है।' लेकिन हाय रे घमंड ! तुझे जिसने अपनाया उसका सर्वनाश किये बिना तू छोड़ता भी तो नहीं। हिटलर ने कहा—'हम अंग्रेज गुण्डों को यूरप के कोने कोने से भगा देंगे।' और उसने चुटकी मलते भगा भी दिया। जापान युद्ध में कूदा और उसने घोषित किया—'हम एशिया के हर हिस्से में गोरे गुण्डों को हटा के दम लेंगे।' और दुनिया ने देखा, और सुना, असीम आश्चर्य और विस्मय के साथ ! अमेरिका, इंगलैंड, फ्राँस और हालैंड—इन विश्व-विश्रुत शक्तियों की सत्ता तास के महलों की तरह, बालू की दीवालों की तरह ढहती और विनष्ट होती जा रही है। सारा प्रशाँत मानो जापानियों की क्रीड़ा का निर्बाध प्राँगण बन गया ! वही जापानी ! वही ठिगने कदों और चिपटी नाकों वाला जापानी ! एशिया का रहने वाला जापानी ! गोरों के घमंड पर घोर प्रहार ! सिंगापुर का पतन, फिलिपाइन्स का पतन ! जावा-सुमात्रा का पतन, बर्मा और मलाया का पतन ! और देखते ही देखते जापानी सेना भारत और आसट्रेलिया के दरवाज़े पर आ धमकी !

अब तो राजनीति-महारथी अंग्रेजों को भी नानी याद आने लगी। अब वे खुलकर अपने अपराध स्वीकार करने लगे। अपने अतीत के पापों पर आँसू बहाने लगे। किसी ने कहा — 'हम अंग्रेज है। हम भारत में किये अपने अतीत के पापों को अस्वीकार नहीं कर सकते। मगर भारत उन पापों को दिल से भुला दे। हमारी इस मुसीबत पर गौर करे।' किसी ने कहा — 'भारत महान है, उसकी संस्कृति महान है, वह क्षमाशील है, सहिष्णु है, अतः हमें क्षमा कर दे।' कुछेक अंग्रेज युवकों ने गांधी जी के पास इस आशय के पत्र भी लिखे। लेकिन केवल क्षमा-प्रार्थना से काम चलता न देख अंग्रेजों के दिल में हड़कंप मच गया। उधर अमेरिका का दबाव। दुनिया को दिखाने के लिये चर्चिल ने क्रिप्स को यहां भेजा, एक लंबे-चौड़े प्रस्ताव के साथ दिल्ली में

समझौते का अभिनय खूब हुआ, खूब सरगर्मी के साथ। कूट-नीतिक मनोरंजन खूब हुआ, लेकिन हाथ आया सिफर और सुन्ना के सिवा कुछ नहीं।

× × ×

१९४२ का ८ अगस्त ! भारत स्वातन्त्र्य-संग्राम का महान ऐतिहासिक दिवस ! काँग्रेस का महान अधिवेशन ! गाँधी जी का 'भारत छोड़ो' नारा ! सारा देश उत्सुक मन से निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था। गाँधी जी के तूफानी आह्वान का इंतजार कर रहा था।

एकाएक वज्र-निर्घोष ! बृटिश साम्राज्य शाही का अंतिम प्रहार ! मरता क्या न करता।

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने से पहले ही नौकरशाही ने हमला बोल दिया। अपनी पूरी शक्ति के साथ। अपने काले नौकरशाहों की पूरी वफादारी के साथ। एक साथ देश के सारे नेता जेलों में ठूंस दिये गये। भारत-सचिव एमरी ने सन्तोष की सांस ली। उसने बड़े विश्वास के साथ ऐलान किया — "हम ने भारत को बड़ी मुसीबत से बचा लिया। हम ने कांग्रेस नेताओं को जेल में डाल कर उपद्रव की सम्भावना मिटा दी।"

पर हाय रे एमरी ! भारत में पैदा होकर भी भारत को पहचानने में तू ने भूल कर ही डाली। आखिर तेरी आशा और विश्वास पर पानी फिर ही तो गया।

नेताओं की गिरफ्तारी की खबर बिजली की भाँति सारे देश में फैल गयी। जनता की क्रोधाग्नि भभक उठी। बंबई, पूना, मद्रास, बंगाल, बिहार, बनारस और बलिया, कहीं भी अछूता न रहा। क्या गांव, क्या शहर, जनता ने जी भरकर बदला लेना शुरू किया। और बृटिश नौकर शाही इस जन-आंदोलन को कुचलने में जी-जान से भिड़ पड़ी। महाभारत मच गया। आजादी की देवी शहीदों के रक्त में गोते लगाने लगी।

: २७ :

गौरी शंकर चाचा के सेवाश्रम में आज बड़ा गंभीर वातावरण मौजूद था। यह वही आश्रम था जिसे बाबू गौरीशंकर ने अभागे प्लेग-पीड़ितों की सेवा के लिये बनाया था। लेकिन कौन जानता था कि आगे चलकर यही आश्रम देश भक्त क्राँतिकारियों का अड्डा बन जायगा! यह किसे पता था कि वे गँवार अनाथ विधवाएँ आज सभ्य, सुशिष्ट और समझदार बनकर आश्रम की शोभा और सम्मान बढ़ायेंगी? वे निरक्षर निरीह बच्चे आज साक्षर और शिष्ट बन कर आश्रम को सजीव और सौम्य बनायेंगे? गौरीशङ्कर अपने हाथों से लगायी लता को फूलती-फलती देख फूले नहीं समा रहे थे। अपने द्वारा संचालित आश्रम को हँसता-चहकता देख गौरी स्वयं हँस और चहक रही थी। गौरी इस आश्रम की प्राण थी, जीवन थी, और गौरीशङ्कर थे उसके जीवन दाता पिता। आश्रमस्थ लोगों के मुखसे 'बहिन' संबोधन सुन कर गौरी का हृदय पुलकित हो उठता। उन छोटे अनाथ शिशुओं के मुख से 'बहिन जी' की मीठी पुकार पर वह निछावर हो जाती। दिल के अरमानों की कली खिल उठती। मानवता का भावी सौभाग्य आँखों के आगे नाचने लगता।

रामगोपाल की उम्र अब दस साल की है। आश्रम में प्रविष्ट होते समय वह चार ही साल का तो था। प्लेग में मां बाप दोनों मर गये। कोई नहीं कह सकता था, कि वह बचेगा; लेकिन गौरी ने उसे बचा ही लिया। ऐसे अनेक बच्चों को वह बचा चुकी थी। अपने इन धर्मपुत्रों के मुख से 'बहिन जी' शब्द सुन कर न जाने कितने भाव उसके हृदय में हिलोरें लेने लगते।

रामगोपाल दौड़ा आकर गौरी के गले से लिपट गया। बोला—'सत्याग्रह कब शुरु होगा बहिन जी?'

'जब गांधी जी आज्ञा देंगे भैया !'

'गांधी जी क्यों आज्ञा देंगे, तुम्हीं दो न। हम सत्याग्रह शुरु कर दें।'

'मैं कैसे दूं भैया ? आज्ञा तो सेनापति देता है न।'

'हमारे सेनापति तो तुम ही हो न, चाचाजी बता रहे थे।'

'सब से बड़े सेनापति गाँधी जी हैं भैया ! वे हम लोगों को आज्ञा देंगे, और हम तुम लोगों को।'

रामगोपाल गौरी की गर्दन पकड़े ही बड़ी अधीरता से बोला —'तो बताओ न गांधी जी कब आज्ञा देंगे ?'

'कल शायद कुछ फैसला हो जायगा, उसके बाद।'

'कहाँ फैसला होगा ?'

'बम्बई में।'

'बम्बई में क्यों होगा ?'

गौरी उस बच्चे की प्रश्नावली से ऊब उठी। झुं झला कर बोली—'चुप पगले ! सिर खाये जा रहा है। हट, गर्दन छोड़ कर अलग बैठ !'

किंतु रामगोपाल डिगा नहीं, अडिग बना रहा। गौरी फिर बोली — 'बम्बई में इन्हीं बातों पर विचार के लिये कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा है। अधिवेशन में देश भर के प्रतिनिधि शामिल हुए हैं। क्या तुझे याद नहीं, अपने आश्रम की ओर से रामचन्द्र भैया वहीं गये हैं।' फिर रामगोपाल की पीठ थपथपाते हुए मीठे स्वर में बोली —'अच्छा रामू ! यह तो बता, तू सत्याग्रह कैसे करेगा ?'

रामू उत्साहित होकर बोला—'झण्डा लेकर सरकारी कचहरी में घुस जायेंगे, और ऊपर चढ़ कर झण्डा गाड़ देंगे।'

'अगर पुलिस वाला रोके, तब ?'

'तब नहीं रुकेंगे, आगे बढ़ते जायेंगे।'

'अगर लाठी चलाये, गोली मारे तब !'

'तब भी नहीं रुकेंगे।'

'मरने से क्या तुझे डर नहीं ?'

'तुम्हीं ने तो बताया था कि मरने से डरते हैं डरपोक, कायर। मैं कायर-डरपोक थोड़े ही हूँ, जो मरने से डरूंगा ? और तुम्हीं ने तो उस दिन बताया था, कि देश के लिये मरना बड़ी शान की बात होती है।'

गौरी ने चट उसका मुख चूम कर उसे छाती से चिपका लिया, और कुछेक क्षण बाद उसे पुचकारते हुए बोली—'अच्छा रामू, जाओ खेलो। मैं अभी चाचाजी के पास जा रही हूँ।' कह कर वह गौरीशङ्कर जी के कमरे की ओर चल पड़ी।

'आओ बिटिया, बैठो ! हम तुम्हारा ही इंतजार कर रहे थे।'—कह कर गौरीशङ्कर जी ने गौरी को अपनी बगल में बैठने का इशारा किया।

'क्यों चाचा ?'—कह कर गौरी उनकी बगल में बैठ गई।

'एक बड़ी सनसनी खेज खबर सुनी है बिटिया ! रमेश अभी शहर से आ ही रहे हैं। किसी गुप्त और विश्वसनीय सूत्र से इन्हें पता चला है कि आज-कल तक में देश के सारे काँग्रेसी नेता और कार्यकर्ता जेलों में ठूंस दिये जायेंगे। देश के कोने २ में सरकारी अधिकारियों के पास इस आशय के गुप्त आदेश पहुंच चुके हैं, सीधे वाइसराय के यहाँ से।'

सुन कर एकाएक गौरी के चेहरे पर चिंता की छाया छा गयी। गौरीशङ्कर जी उसके चिंतित चेहरे को देख पुनः गम्भीर स्वर में बोले — 'चिंता करने से तो अब कुछ बनता नहीं है, बिटिया ! अभी शाम के सात बज रहे हैं, समय है। आश्रम के अबोध बच्चों को शहर के अपने क्रांति-कर्मी युवकों के घरों में पहुंचवा दो। वहां इनका जीवन सुरक्षित रहेगा।'

'और दूसरों का क्या किया जायगा ?'

'सयाने लड़के-लड़कियों और महिलाओं का मुझे फिकर नहीं। स्वावलम्बन की शिक्षा उन्हें दी जा चुकी है। वे कहीं भी किसी भी स्थिति में अपने को कायम रख सकते हैं' — कह कर गौरीशंकर जी ने एक गहरी साँस ली।

गौरी चट वहां से बाहर हो गयी। बीसेक मिनट बाद वापस आकर पुनः चाचाजी की बगल में बैठ गयी।

उसे बहुत जल्द वापस आयी देख गौरशङ्कर जी बोले — 'सब ठीक हो गया बिटिया ?'

'हाँ चाचाजी !'

'बड़ी जल्दी हो गया !'

'किसी आडम्बर की जरूरत तो थी नहीं चाचा ! चतुर्भुज और दुण्ढिराज के साथ बच्चों को भेज दिया है। आवश्यक हिदायतें देती आयी हूँ। आश्रम के दूसरों को भी सावधान कर दिया है।'

तब तक वहाँ आश्रम के चार-पाँच और अंतरंग सदस्य उपस्थित हो गये थे। रमेश भी मौजूद था। फिर गौरीशङ्कर जी सब को लक्ष्य कर के बोले — 'हां पुत्रो ! बताते जाओ अब क्या किया जाय ? समय बहुत कम है ! कुछ-न-कुछ निश्चय अवश्य हो जाना चाहिये।'

'हाँ, अवश्य हो जाना चाहिये।' विनोदशङ्कर ने चाचाजी के साथ सहमति जताते हुए कहा।

'बोलो भई रमेश ! अब तुम्हारी क्या राय है ?' गौरीशङ्कर ने रमेश की ओर अमने चिंतित नेत्र फिरा कर पूछा।

'मेरी राय तो आप सबों को पहले से ही पता है चाचाजी ! अब मैं क्या बताऊं ? मैं तो इस समय सत्याग्रह आन्दोलन चालू करने के खिलाफ हूँ।'

'कैसी बातें करते हो रमेश भाई ! कम्युनिस्टों की मति तो नहीं मारी गयी ?' गौरी चिढ़ कर बोली।

'नहीं गौरी बहिन, मति नहीं मारी गयो। कम्युनिस्टों की नीति बिल्कुल दुरुस्त है।' रमेश ने जवाब दिया।

'दुरुस्त कैसे है ? यह कौन सी नीति और बुद्धिमानी है कि युद्ध में अंग्रेजों को मदद की जाय, और अपनी गुलामी की जंजीर को और भी मजबूत बना लिया जाय ?'

'जरा ठण्डे दिल से विचार करो बहिन ! आवेश में मत बहो। आखिर तुम तो अपने को सोशलिस्ट कहती हो न ? तुम्हारा लक्ष्य भी तो हिंदुस्तान में मजदूर-राज्य कायम करना है न ?'

'जरूर मैं सोशलिस्ट हूँ। जरूर मेरा लक्ष्य हिंदुस्तान में मजदूर-राज्य कायम करना है। लेकिन यह तो मेरी समझ में किसी भी तरह नहीं आ रहा कि युद्ध मे अंग्रेजों की मदद करने से मजदूर-राज्य कैसे कायम हो जायगा ? बल्कि इस से तो गुलामी की कड़ी और मजबूत बन जायगी। उसे तोड़ना और भी कठिन बन जायगा।'

'नहीं बहिन, जरा गहराई में पैठो। गहराई से समझने की कोशिश करो। न गुलामी की कड़ी मजबूत होगी, न उसका तोड़ना कठिन बनेगा, बल्कि बहुत आसान बन जायगा। मजदूर-राज्य की तत्काल स्थापना भले ही दूर दीखे, लेकिन उसकी ओर कदम हम अवश्य बढ़ायेंगे।'

'अजीब सी बातें कर रहे हो !'

'अजीब सी बातें नहीं कर रहा हूँ बहिन, बिल्कुल ठीक कह रहा हूं। देखो और सोचो ! इस समय सत्याग्रह आँदोलन छेड़ना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जापान-जर्मनी की मदद करना है। यदि इस युद्धमें जर्मनी-जापान की विजय हुई, तो यह गांठ बांध लो गौरी बहिन, कि मजदूर-राज्य-स्थापना की आशा और सम्भावना पर सदियों के लिये पानी फिर जायगा। और हिंदुस्तान तो एक की जगह दूसरे की गुलामी में बंधेगा ही। इस झूठी

धारणा को दिल से सदा के लिये दूर कर दो, कि जापान हिंदुस्तान को आजाद कर देगा, या आजाद होने में मदद करेगा। एशिया एशियावालों के लिये, और सह-समृद्धि का उसका नारा केवल धोखा है, बेईमानी है, आँखों में धूल झोंकने का एक कुटिल प्रयत्न है। यदि 'एसिया एसिया वालों के लिये' उस के इस नारे में सचाई होती, तो वह कोरिया को क्यों हड़प गया? चीन को हड़पने के लिये क्यों जन-धन का स्वाहा कर रहा है? वास्तव में इस नारे का अर्थ तो यह है कि एसिया केवल जापानियों के लिये है, किसी और के लिये नहीं।"

"लेकिन जर्मनी और जापान की विजय से मज़दूर-राज्य-स्थापना की आशा पर पानी क्यों फरेगा?"

"पानी यों फिरेगा कि जर्मनी-जापान की विजय का अर्थ है रूस की पराजय; और रूस की पराजय का अर्थ है मज़दूर क्राँति की पराजय, मज़दूर-राज्य के आदर्श की पराजय, और सारे विश्व में मज़दूर-क्राँति की आशा और संभावना की पराजय।"

"हम आजाद होकर रूस की मदद करेंगे।"

"इस रास्ते से न आजादी, मिलेगी, न तुम लोग रूस की मदद कर सकोगे। उलटे उसका सत्यानाश करोगे। और रूस के सत्यानाश से सारे विश्व के मज़दूरों का सत्यानाश होगा। तुम सोचते हो कि आंदोलन छेड़ देने से अंग्रेज डरकर तुम्हें आजाद कर देंगे। ऐसा सोचने वाले एक अनोखी दुनिया में निवास करते हैं। तुम इस बात को गाँठ में बाँध रखो गौरी, कि अंग्रेज यहां से तभी भागेंगे, और झख मार कर भागेंगे, यदि मजदूरों का महान सोवियत राष्ट्र इस युद्ध में विजयी होगा, और तभी तुम इस देश में आशा और आस्था के साथ मजदूर-राज्य की स्थापना की बात भी कर सकोगी।" — कह कर रमेश चुप हो गया।

रमेश को चुप होते देख गौरी बड़ी गंभीरता से बोली— 'देखो रमेश भाई ! तुम लोग राष्ट्रीयता के आगे अंतर्राष्ट्रीयता को मुख्य मानते हो। किसी विशेष परिस्थिति में मैं भी इसे मानती हूँ, लेकिन सब समय नहीं। जहां राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता का प्रश्न आयेगा, वहां सदा राष्ट्रीयवाद की विजय होगी। यह प्रवृत्ति जब-तब अंतर्राष्ट्रीयता के पुजारी कम्युनिस्ट रूस में भी प्रगट हो जाती है। इस लिये पहले राष्ट्र को, बाद अंतर्राष्ट्र को देखेंगे। जापान भले ही फासिस्ट हो, लेकिन हमें इन फासिस्टों से भी लाभ उठाना ही चाहिये। यदि कम्युनिस्ट स्टालिन फासिस्ट हिटलर से हाथ मिला सकता है, तो सोशलिस्ट हिंदुस्तान को फासिस्ट जापान से हाथ मिलाने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। हमारा दुश्मन अंग्रेज इस समय मुसीबत में है। नीति का यह तकाजा है कि हम शत्रु की मुसीबत से लाभ उठायें, हम उसे अपनी मातृ भूमि से खदेड़ दें। और ....'

गौरीशङ्कर जी गौरी को बाधा देते हुए बोले — 'नहीं बिटिया, तुम्हारी यह नीति मुझे बिल्कुल पसंद नहीं। मैं तो गांधी जी का कट्टर अनुयायी हूँ। उनके वचन में विश्वास करता हूँ। उनका सिद्धांत है कि मुसीबत में शत्रु को भी तंग न करना चाहिये।'

'लेकिन चाचा ! उन्हीं गांधी जी ने तो आज हफ्तों से 'भारत छोड़ो' का नारा लगाना शुरू कर दिया है। इसे तुम लोग जो भी समझो, लेकिन मैं तो इसे दुश्मन की मुसीबत से फायदा उठाना ही समझूँगी।'

'नहीं बिटिया, वे तो अंग्रेजों से समझौता करना चाहते हैं, उन्हें सीधे रास्ते पर लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि अंग्रेज रहें, यहां रहकर जापानियों से लड़ें, लेकिन अधिकार हिंदुस्तान के हाथ सौंप दें।'

गौरी एक सूखी हँसी हँसकर बोली—'तुम जीवन भर सीधे और सरल ही रह गये चाचा जी ! तुम सीधे हो, तुम्हारा दिल सीधा है, इस लिये समझते हो कि दुनिया सीधी है। चाचा जी ! गांधी जी के इस नारे में कूट नीति का तत्व कूट-कूटकर भरा है। इसे समझता है चर्चिल, इसे समझता है एमरी, और इसे समझती है सारी अंग्रेज जाति। और ... ... '

गौरी कुछ और कहने ही जा रही थी कि आश्रम का जासूस त्रिभुवनपति बेतहाशा साईकल दौड़ाता हुआ आश्रम में पहुंचकर सीधे चाचा जी के कमरे पहुंचा, और हांफते हुए बोला —'जल्दी कीजिये, सावधान हो जाइये ! दस मिनट के अंदर पुलिस पहुंच जायगी ! जो सोचना हो सोच लीजिये, जो करना हो कर लीजिये।'

गौरीशङ्कर जी गौरी और रमेश आदि के मुँह की तरफ एक नजर दौड़ाकर फिर बोले—'मैं तो गांधी जी का कट्टर अनुगामी हूँ। न भाग सकता हूँ, न छिप सकता हूँ। पुलिस के हाथ अपने सहित आश्रम को सौंप देने के सिवा और कोई चारा नहीं। क्यों बेटा रमेश, तुम्हारी क्या राय है ?'

रमेश कुछ न बोला। नीचे शिर झुकाये चुप चाप बैठा रहा।

गौरी बोली—'लेकिन मैं तो गिरफ्तार होने की नहीं चाचा। जेलों को भरने में मेरा कतई विश्वास नहीं। मैं एक कट्टर गांधी-वादी की गोद में पली, जो मेरा सर्वस्व है, मेरा देवता है। लेकिन हाय, मैं उसके आदर्श की अनुगामिनी न बन सकी। गांधीवाद में अपने विश्वास को न जमा सकी।' क्षणभर रुक कर फिर चाचा जी के चरणों में गिर गयी, और रोती हुई बोली — 'लो चाचा जी ! अब समय नहीं है। जल्दी आदेश दो। मैं आजादी के युद्ध में कूदने जा रही हूँ। देश में आजादी की आग लगाने जा रही हूँ। या तो बृटिश साम्राज्य को जलाकर राख कर दूंगी, या उसी

में जलकर स्वयं भस्म हो जाऊंगी। यदि बची रही तो फिर तुम्हारी गोद में ..... '

गौरी आगे कुछ न बोल सकी। निःशब्द आंसुओं की धारा से चाचाजी के चरणों को भिगोने लगी। चाचाजी का हृदय सहस्रधार होकर फूट पड़ा। अपने पैरों पर पड़ी गौरी के शिर को छाती से लगा बड़े करुणा पूरित स्वर में बोले — 'इस बूढ़े की मूर्खता माफ करना बिटिया! तुमने मेरी गोद सनाथ कर दी, मुझे सनाथ कर दिया। जाओ बिटिया जाओ, अपने संकल्प में सफल होकर फिर मेरी गोद में लौट आओ!' कहकर वे रोने लगे।

गौरी चुपचाप आँसू भरी आँखों से ही बारबार उनके चरण छूकर बिजली की भाँति वहाँ से [illegible] में अदृश्य हो गयी।

: २८ :

"इन्कलाब जिंदाबाद!"

"क्रांति चिरजीवी हो!"

"हर हर महादेव!"

इन उद्‌घोषों से भारत का आकाश गूँज उठा। आजादी की देवी अट्टहास कर उठी। भारतमाता पुलक उठी। गुलामों का हृदय किलक उठा। नौकरशाही दहल उठी। और बृटिश साम्राज्यशाही का अभिमान तड़फ उठा।

'आगे बढ़ो साथियो! डरना कायरों का काम है!' कहकर एक छब्बीस साला महिला हाथ में तिरंगा फहराते आगे बढ़ी।

'इन्कलाब जिंदाबाद! क्राँति चिरजीवी हो! हर हर महादेव!' के नारे लगाती हुई भीड़ उस के पीछे पीछे आगे बढ़ी।

अपार जन-समुद्र ! क्रुद्ध और हिंसक जन-समुद्र ! देखकर पुलिस सुपरिंटेंडेंट को छटी का दूध याद आ गया। वह पुलिस की ओर मुड़ा, और हुक्म दिया—'वन, टू, थ्री—फायर !'

लेकिन वही पुलिस, जो अब तक जनता के प्रदर्शनों पर भूखे भेड़िये की भाँति टूट पड़ने की आदी थी, आज टस से मस नहीं हुई। न जाने उसकी वह आदत एकाएक कहां हवा होगयी।

'हथियार छीन लो साथियो।'

और लहमे भर में जनता ने पुलिस के हथियार छीन लिये। हथियार-खाने पर कब्जा कर लिया गया ! कोतवाली अब जनता के कबज़े में थी ! उस पर शान के साथ तिरंगा लहराने लगा। पुलिस सुपरिंटेंडेंट अब जनता का बंदी था।

'इन्कलाब ज़िंदाबाद ! हर हर महादेव ! महात्मा गांधी की जै ! गौरी की जै !' के उद्घोषों से धरती और आकाश को कंपाती हुई सारी भीड़ अब कलक्टरी की ओर बढ़ी। उस भीड़ समुद्र को बढ़ते देख गोरे डिप्टी कमिश्नर ने फोन उठाया। कोतवाली और छावनी को फोन करने की चेष्टा की। किंतु हाय ! फोन और तार के संबंध पहले ही काटे जा चुके थे। साहेब बेचारा बगलें झाँकने लगा। चतुर्दिक निराशा और घोर अंधकार ! सामने क्रुद्ध और सशस्त्र जनता की अपार भीड़ ! आत्म समर्पण के सिवा कोई चारा नहीं। बिना किसी प्रतिवाद के साहेब ने आत्म समर्पण कर दिया।

किंतु स्कूल-कालेज के छोकड़े केवल आत्म समर्पण मात्र से कब संतुष्ट होने लगे। उन में से एक ने आगे बढ़ कर कहा—'बोलो साहेब, महात्मा गांधी की जै !'

बगैर किसी हिचक के साहेब के मुख से निकला—'महाट्मा गाँडी की जै !'

'महात्मा गाँधी कहो भाई !'

'महाट्मा गांडी।'

'अच्छा उठो !'

साहेब उठ खड़ा हुआ।

'बैठो !'

साहेब बैठ गया।

'दोनों हाथ से कान पकड़ो !'

साहेब ने अपने कान पकड़ लिये और अपनी वीरता की पोल खोल दी।

× × ×

सन ४२ का आंदोलन ! बिहार का हर नगर और हर गांव इस समर में जूझ रहा था, तो भला हरिहरपुर क्यों अछूता रहता ! बूढ़ों में जवानी आ गयी, जवानों में नौजवानी, और नौजवानों में मर मिटने की अडिग भावना ! 'क्राँति चिरजीव हो ! हर हर महादेव ! भारत की जै ! अंग्रेज़ों की क्षय।' आदि नारे लगाती जनता की अपार भीड़ तहसील (सब डिविज़न) की ओर बढ़ रही थी। हरिहरपुर के अतिरिक्त आस-पास के अन्य कई गांवों के लोग भी इस भीड़ में शामिल थे। विचार था, थाने और अन्य सरकारी भवनों पर कब्ज़ा जमाने का।

उस थाने के बड़े दारोगा पं० रामचन्द्र मिश्र हरिकीर्तन के बड़े प्रेमी थे। शहर के कुछेक वकील-मुख्तारों और कुछेक सरकारी कर्मचारियों ने मिलकर एक हरिकीर्तन-भवन का निर्माण भी कराया था। प्रति दिन रात के आठ बजे हरिकीर्तन-भवन में इन भक्तों की गोष्ठी जमा करती। फिर कीर्तन का दंगल शुरू हो जाता। घंटे डेढ़ घंटे झूम झूम कर कीर्तन करने के बाद सब अपने घर आते, और दिन भर के किये कुकर्म कीर्तन-भवन में समाप्त कर विशुद्ध चित्त से जीमने बैठते, और फिर बिछौने की शरण लेते। हमारे समाज की इस सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत अंग की यह प्रवृत्ति देश के अन्य बड़े नगरों की भाँति इस क्षुद्र नगर

में भी ज़ोर पकड़ रही थी। पता नहीं, भक्त-भावन भगवान की चित्तवृत्ति पर इस प्रवृत्ति का क्या प्रभाव पड़ रहा था।

थानेदार रामचन्द्र भी इस कीर्तन-भवन के प्रमुख सदस्यों में से थे। बड़े भगवद्भक्त थे। रोज़ चंदन तिलक लगाते, हाँ किसी अंग्रेज़ साहिब से समागम के समय चंदन तिलक अवश्य मिटा लेते। रोब इनका बहुत था। सारे थाने के लोग इन के नाम से थर थर कांपते। झूठ को सच और सच को झूठ बनाना आपके बायें हाथ का खेल था। और इसी गुण की बदौलत छोटी तनखाह पाकर भी कई गांव खरीद लिये थे। देखते ही देखते विशाल संपत्ति के स्वामी बन गये थे।

अस्तु! वहाँ के अधगोरे एस० डी० ओ० के आदेशानुसार पूरब की तरफ से शहर की ओर बढ़ती हुई भीड़ को रोकने के लिये मुट्ठी भर कॉंस्टेबलों के साथ रामचन्द्र जी आगे बढ़े। रेलवे लाइन के पास भीड़ से आमना सामना हुआ। थानेदार रामचन्द्र चट घोड़े से उतर गये, और हाथ जोड़ कर भीड़ को संबोधित करके बोले—'आप लोग रुक जाइये! आपका भला इसी में है। मैं आपका हिंदुस्तानी भाई हूँ। मुझ पर विश्वास कीजिये।'

'हम तुम जैसे कुत्तों पर विश्वास नहीं करते।' भीड़ में से एक साथ कई आवाज़ें बोल पड़ीं।

'यहाँ का गोरा साहेब बड़ा बदमाश है। वह आप लोगों को गोलियों से भुनवा देगा।'

'हम उस के साथ तुम्हारी भी जान ले लेंगे।'

'रेलवे लाइन से इस पार मत बढ़िये। नहीं तो.....'

'नहीं तो क्या होगा?'—कहकर भीड़ ने ईंट पत्थरों की बौछार शुरू कर दी।

देखते ही देखते सब कॉंस्टेबल भीड़ में आकर मिल गये। 'इनकलाब ज़िंदाबाद' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगाने लगे। अब बच गया अकेला बेचारा रामचन्द्र। ईंट कंकड़ों की

बोछाड़ ने उसे अधमरा बना दिया। भुवन भी इस भीड़ में प्रमुख भाग ले रहा था। थानेदार रामचन्द्र से उसकी बड़ी मित्रता थी। रामचन्द्र हाथ जोड़े गिड़गिड़ा कर भुवन से बोला—'मुझे बचाइये भुवन बाबू! आप मेरे दोस्त हैं।'

'इस वक्त दोस्ती नहीं'—कह कर भुवन सामने से खिसक गया। भीड़ को उसने इशारा किया। भीड़ टूट पड़ी। रामचंद्र ने देखा, मौत सामने खड़ी है। फिर भी गोली चलाने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। चट हाथ की पिस्तौल फेंक कर भीड़ के बीच उछल-उछल कर 'हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे' कहकर कीर्तन करने लगा। और दूसरे ही क्षण किसी के भाले की चोट से आहत हो निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। भाला मारने वाला दूसरा कोई नहीं, रामचन्द्र का मित्र स्वयं भुवनचंद्र था।

अब भीड़ एस० डी० ओ० अल्फ्रेड एंथोनी के बंगले की ओर बढ़ी। रेल की पटरियाँ उखाड़ी जा चुकी थीं। तार के सँबंध काटे जा चुके थे। बाहर से तत्काल मदद की कोई उमीद नहीं। एंथोनी घबड़ाया। चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा। अब भीड़ बिल्कुल उसके बंगले के निकट पहुंच गयी। उन ने चट खिड़कियां और दरवाज़े बँद कर दिये। स्वयं परिवार के साथ छत पर जा चढ़ा। पाकेट से पिस्तौल निकाली और भीड़ को लक्ष करके अंधा धुन्ध गोलियाँ दागनी शुरू कर दीं। भीड़ में भगदड़ मच गयी। दो तीन व्यक्ति गोली के निशाने बन वहीं ढेर हो गये। उसी बीच उसकी कनपट्टी में नीचे से फेंकी गयी ईंट का एक अचूक निशाना बड़े ज़ोर से आ लगा। ईंट बड़ी भारी और कड़ी थी। एक ही चोट में वह छत के कगारे पर मुंह के बल बेहोश हो गिर पड़ा। उसके हाथ की पिस्तौल नीचे आ गिरी।

अब भीड़ का साहस पलट आया। भुवन, जो गोलियों के डर से किसी आड़ में जा दबका था, अब भाला भांजते अपनी बहादुरी दिखाते आगे आ पहुंचा। बंगले की खिड़कियां और किवाड़ तोड़ कर लोग अंदर घुस गये। बहुतेरे एस० डी० ओ० का सामान असबाब लूटने में लग गये। भुवन बर्छा लिये ऊपर छत पर जा चढ़ा। छत के कंगारे पर मुंह के बल बेहोशी की दशा में पड़े एंथोनी की ओर बढ़ा। एंथोनी की कनपट्टी से खून की धारा निकल रही थी। उसकी पत्नी पति के उपचार में लगी थी। भाले के साथ भुवन को उस ओर बढ़ते देख वह हाथ जोड़ गिड़गिड़ाती हुई बोली—'रहम करो बाबू जी! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।' कहकर चट उसने भुवन के पैर पकड़ लिये। किंतु भुवन पर इस आकुल निवेदन का ज़रा भी प्रभाव न पड़ा। 'चुप! अलग हट हरामज़ादी।' कहकर बड़ी निर्ममता के साथ मूर्छित एंथोनी को छत के कंगारे से नीचे धकेल दिया।

अब एंथोनी की पत्नी क्रोध में पागल हो गयी। गालियां देती आगे बढ़ी। 'हैवान, हरामज़ादे, कुत्ते' कहकर भुवन की ओर बड़े ज़ोर से लपकी, किंतु बीच में ही भुवन के भाले से आहत होकर नीचे गिर पड़ी। और भुवन ने उसके अल्प प्राण शरीर को उठा कर बड़े ज़ोर से नीचे फेंक दिया!

पिता को बेहोश होकर नीचे गिरते देख एंथोनी की एक मात्र सुकुमार कन्या बड़े ज़ोर से चीख कर छत के एक कोने में मूर्छित हो गिर पड़ी थी। अब भी उसकी बेहोशी दूर नहीं हुई थी। वहीं पड़ी थी। लेकिन हाय रे भुवन! तेरा इतना अधःपतन किस ने सोचा था कि हरि हरपुर हाई स्कूल का वह प्रतिभाशाली छात्र आगे चल कर एक घोर नरपशु बन जायगा! अब इस नरपशु की दृष्टि उस अनन्त सुन्दरी पर, उसके निःसंज्ञ शरीर पर जा लगी। ललचाई आंखों से उस ओर बढ़ा, और उसके अंग को छूने ही जा रहा था, कि पीछे से किसी की कड़कती

आवाज आयी—'खबरदार ! यह गुँडों का आंदोलन नहीं है ! यह गुँडों का स्वराज्य बनने नहीं जा रहा है !'—कहकर सत्यदेव ने भुवन के हाथ से भाला छीन लिया, और उसे पीछे की तरफ धकेल दिया।

यह वही सत्यदेव था, हरिहरपुर का एक मामूली केराना दुकानदार, और छोटा किसान। गांव के बाबू भैया भी उसके चरित्र का लोहा मानते थे। इस स्वातंत्र्य संग्राम का वह प्रमुख योद्धा था। इस लिये आज कल नवयुवक मंडली में उसका सम्मान बहुत बढ़ गया था।

सत्यदेव के हाथ से अपमानित होकर भुवन तिलमिला उठा। आंखें लाल पीली करके बोला—'तुम आजकल बहुत बनते जा रहे हो सत्ते !'

सत्यदेव ने क्रोध और घृणा से काँपते स्वर में जवाब दिया—'नीच कहीं का ! तू हमारी इस आज़ादी की लड़ाई को गंदा करना चाहता है ? तेरे हाथ कट कर क्यों नहीं गिर जाते ? एक अनाथ अबला के प्राण लेते तुझे ज़रा भी हिचक नहीं हुई ! और इतने पर संतोष नहीं हुआ तो उसके मरे शरीर को नीचे लुढ़का दिया।'

भुवन कुछ लड़खड़ाती सी ज़बान में बोला—'तुम ने एस० डी० ओ० को नीचे से ईंट क्यों मारी ?'

सत्यदेव फटकार भरे स्वर में बोला—'और इसी लिये तुम भी बहादुरी बघारने ऊपर आ पहुंचे ! अरे नीच ! मैं ने एक हथियारबंद शत्रु पर निशाना लगाया, जो हमारे आदमियों को गोलियों से भून रहा था। और तिस पर तू उस अधमरे बेहोश की लाश को ऊपर से नीचे लुढ़का कर अपनी वीरता का परिचय दे रहा है ! छिः।'

'कहे देता हूँ छी-छी मत करो !'

'अरे राक्षस ! तेरे लिये छी-छी भी कोई चीज़ नहीं। शरम नहीं आती तुझे बोलते ? चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरते ?' और उस कोने में बेहोश पड़ी युवती की ओर संकेत करके बोला 'और अभी दो मिनट पहले सारी मनुष्यता को तिलाँजलि देकर एक मूर्छित युवती के बदन में हाथ लगाने चला था ?'

अब तक नीचे से काफी लोग ऊपर आ पहुंचे थे। भुवन बगैर कुछ जवाब दिये चट वहां से खिसक गया। और सत्यदेव कुछ युवकों की मदद से उस बेहोश तरुणी के उपचार में जुट पड़ा।

: २६ :

उस रात के घने अंधेरे में माँ अन्नपूर्णा एक फर्लांग आगे जाकर पुनः एक बार मुड़कर अपने जलते घर की ओर ममता भरी, हसरत भरी और आँसू भरी आंखों से देख चंद्र भानुपुर को सदा के लिये नमस्कार कर अनंत की ओर चल पड़ी। लक्ष्य निश्चित था, दिशा अनिश्चित थी।

चंद्र भानुपुर से रातों-रात चलकर कुछ दिन चढ़ते माँ दरभंगा पहुंची। एक पोखर के तट पर बैठी सोच रही थीं, कहां किस ओर जाया जाय। एकाएक उन्हें याद आ गया। एक दिन बातचीत के प्रसंग में सुरेंद्र ने कहा था—'मां, आतक वादियों के अड्डे अधिकतर दक्षिण बिहार के पर्वतीय और जंगली प्रदेशों में हैं, जिनका अब तक अंग्रेजों को पता नहीं चला है।' माँ स्टेशन पर आ गयीं। गाड़ी आयी। राजगीर का टिकट कटा वे गाड़ी में बैठ गयीं। दो दिन बाद राजगीर पहुंची। गर्भकुंड में स्नान कर वहां के विष्णु मन्दिर के ओसरे पर चुपचाप मन मारे बैठी थीं। सोच रही थीं, क्या करूं, किस से पूछूं ? पूछने पर भी बतायेगा कौन ? आतंकवादी खुलकर तो काम करते

नहीं कि उनके दफ़्तर या अड्डे का किसी को पता हो। रह रह कर उनकी आंखों से आंसू ढुलक पड़ते। निराशा दिल में जड़ जमाती जा रही थी।

इस बीच एक युवक कुछ दूर से रह रह कर मां अन्नपूर्णा की ओर गहरी निगाहों से देख रहा था, इस चेहरे को अवश्य कहीं देखा है। कुछ देर बाद ही उसकी वह धूमिल स्मृति एकाएक प्रकाश की भाँति स्पष्ट बन गयी। चट निकट पहुंच कर उसने माँ के चरण छुए।

मां चौक पड़ीं। चकित नेत्रों से उस युवा को देखने लगीं। पहचानने की लाख चेष्टा करने पर भी पहचान न सकीं। बड़े असमंजस में पड़ गयीं। बोलीं—'तुझे ... ं बेटा!'

'पहचानोगी कैसे माँ? पाँच साल पहले की बात है। और सो भी सिर्फ दो दिन तुम्हारे घर में मैं रहा था।'

मैं बुढ़िया हो गयी बेटा! कोई बात बहुत जलद भूल जाती हूँ। बताओ न अपना परिचय।'

'मेरा नाम रवीन्द्र है मां। सुरेंद्र के शहीद होने से पहले मैं तुम्हारे घर गया था।'

माँ की सोयी स्मृति एकाएक जाग पड़ी। रवीन्द्र का नाम सुरेंद्र के मुख से वे अनेक बार सुना करतीं। और अपने घर पर उसके दो दिन-दो रात ठहरने की बात भी उन्हें याद आ गयी।

माँ की आंखें डबडबा आयीं। रुंधे गले से बोलीं—'याद आ गया बेटा, सब कुछ याद आ गया। सुरेंद्र और तुम एक ही थाली में जीमने बैठे थे न? जब मैं ने हंस कर पूछा था कि, तुम लोग जात-पांत, धर्म-कर्म नहीं मानते तो तुम ने ही तो हंस कर जवाब दिया था, मानता क्यों नहीं मां! हमारी जात, हमारी पांत, हमारा धर्म, हमारा कर्म सब कुछ क्रांति है। और इस क्रांति मार्ग पर चलने वाले ही हमारे सहधर्मी, सहकर्मी और

सहजाति हैं। फिर आपस में भेद भाव कैसा ? छूआछात कैसी ? अब मैं तुझे पहचान गयी बेटा।'

रवीन्द्र आश्चर्य चकित होकर बोला—'देखता हूँ कि स्मृति तुम्हारी बहुत तीखी है मां। मगर माँ, पूछना चाहता हूँ। तुम यहाँ कैसे आयीं ? तुम्हें देखने से तो लगता है, तुम पर मुसीबतों का पहाड़ टूट रहा है।'

मां ने उदासीन भाव से जवाब दिया—'सुरेंद्र की मां को मुसीबतों से क्या डर ? जब सुरेंद्र के रास्ते पर पैर रखा है, तो मुसीबतों से घबड़ाना क्यों ? अच्छा, चल बेटा ! किसी एकांत जगह में बैठकर अपनी राम कहानी तुझे सुनाऊं।'

'चलो मां ! यहां एकांत स्थान की कमी नहीं।' फिर ज़रा रुक कर वह बोला—'मगर पहले कुछ खा लो माँ, तब।..... नहीं नहीं, ऐसा नहीं। देखने से लगता है कि तुम कई दिन की भूखी हो। ज़रा देर बैठो मां !' कहकर चट लापता हो गया। फिर दसेक मिनट बाद भोजन की सामग्री लिये उपस्थित हुआ। और हाथ पैर धुला कर बड़े प्रेम और श्रद्धा से मां को जमाने बैठा

रवींद्र बड़े प्रेम से एक एक चीज़ मां के पत्ते पर परोसता जा रहा था, उनसे खाने को आग्रह करना जा रहा था। इस प्रेम, इस अनुनय और विनय ने माँ के मन की बीती स्मृतियाँ एक एक कर जगा दीं। लाख चेष्टा करने पर भी उमड़ते आसुओं को वे दबा न सकीं।

उनकी यह दशा देख रवींद्र बड़े ममत्व भरे स्वर में बोला—'तुम तो रो रही माँ ! अभी तो कुछ खाया नहीं।'

माँ आँचल के छोर से आँखें पोंछ कर बड़ी कठिनाई से बोलीं—'सुरेंद्र याद आ गया है बेटा ! वह भी जब तब इसी तरह हठ करके मुझे खिलाने बैठता।' कहते कहते पुनः उनका गला भर आया।

रवींद्र ने कहा—'सुरेंद्र मरा नहीं है मां ! आज भी उसकी आत्मा हम लोगों में मौजूद है।' फिर बड़े दुखी स्वरों में वह बोला—'तुम क्या मुझे सुरेंद्र से भिन्न समझ रही हो मां ?'

माँ के दिल को बड़ी चोट लगी। वह तड़फड़ बोल उठी—'नहीं नहीं बेटा ! ऐसा तो मैं सपने में भी नहीं सोचती। घर बार छोड़ कर सुरेंद्र को ही तो ढूंढने निकली हूँ। सो सुरेंद्र मिल गया। इसी से रोकने पर भी आंसू नहीं रुकते।' कहकर उन्हों ने आँखें पोंछीं और बोलीं—'अच्छा तो अब आकर यहां बैठो ! खुद भी कुछ खा लो ! माँ के पेट में जगह नहीं।' कहकर उठी खड़ीं हुईं।

हाथ मुंह धो कर माँ रवीन्द्र को खिलाने बैठीं। किस एकाँत जगह में जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। लोगों के चले जाने पर अब वही जगह एकांत बन गयी थी। रवींद्र धीरे धीरे खाता जा रहा था, और माँ के मुख से उनकी राम कहानी भी सुन रहा था। रह रह कर उस के चेहरे पर क्रोध, घृणा, और वितृष्णा के चिह्न आविर्भूत और तिरोभूत हो रहे थे। सारी कहानी सुन लेने के बाद रवींद्र बड़े धीर गंभीर स्वर में बोला :—

'क्रांतिकारी की माँ बनना आसान नहीं है मां ! अच्छा मां, अब चलो आश्रम में। यहाँ से चार मील दूर घन-घोर जंगल में हमारा क्राँति-आश्रम है। एक गुफा के रास्ते उस में प्रवेश करते हैं। हमारे दल के अन्तरंग सदस्यों के सिवा वहाँ कोई ज नहीं पाता। वहां तुम्हें दर्जनों सुरेन्द्र मिलेंगे मां ! मिलकर तुम्हें बड़ी खुशी होगी।' — कहकर वह पत्तल पर से उठ खड़ा हुआ। हाथ-मुँह धो मां को साथ ले वह आश्रम की दिशा को चल पड़ा।

× × ×

पूरे दस साल बाद की घटना है। मां अन्नपूर्णा इस वन-प्रदेश के चप्पे चप्पे से परिचित हो चुकी थी। उन के पैर रखते ही क्राँति-आश्रम में एक नयी चेतना, एक नयी सजीवता आ गयी थी। मां आश्रम की पूज्या परमाराध्या बन गयी थीं। उन के इशारे पर उनके क्राँति-कुमार सब कुछ करने को तैयार थे। कुछेक क्रांति-कुमारियाँ भी आश्रम की शोभा और व्यापकता को बढ़ा रही थीं। पर्वत के मूल से एक बड़ा जल-स्रोत निकल कर आश्रम के बीचों-बीच कल कल करता बह रहा था। उसके दोनों किनारे फल-फूल से लदे वृक्षों की पंक्तियां सौंदर्य में चार-चाँद लगा रही थीं। इस आश्रम की उपमा किसी प्राचीन कालीन तपोवन से क्यों न दी जाय? आखिर उस काल में भी तो ऐसे स्थानों में क्रांति और प्रतिक्रांति के घात-प्रतिघात सोचे जाने की कहानियाँ आज भी सुनी जाती ही हैं।

अस्तु! सन ४२ के जन-आँदोलन की खबर तीर की तरह गहन अरण्यों को भेदती अन्त में पहुंच ही गयी। पहुंचती क्यों न? आश्रम के जासूस कहां नहीं थे? आज आश्रम के हर निवासी से चेहरे पर अपूर्व तेज और उत्साह विराजमान था। सभी अपनी परम पूज्या नायिका मां अन्नपूर्णा के आदेश का इंतजार बड़ी उत्सकतापूर्वक कर रहे थे।

प्राची लाल हो उठी। उषा अंबर के आवरण को चीरती प्रियतम से मिलने निकल पड़ी। दिवस अपने ओठों पर मुस्कराहट लिये प्रियतमा की अगवानी को चल पड़ा। इस मङ्गलमय मुहूर्त में चिड़ियों ने कलगान आरम्भ कर दिया।

सभी स्वातंत्र्य-योद्धा कतार-बद्ध खड़े थे। माँ क्राँति का झण्डा लिये उन के समक्ष अविचल भाव से खड़ी थीं। इस साठ-साला वृद्धा तपस्विनी के चेहरे पर मानो आज साक्षात् आग खेल रही थी। 'वंदे मातरम' की स्वर लहरी सारे आश्रम को गुंजाती अनन्त आकाश में गूंजने लगी। पंक्तिबद्ध खड़े

योद्धाओं को लक्ष्य करके माँ ने अत्यन्त ओज गम्भीर स्वर में कहना आरम्भ किया :—

"प्यारे वीर पुत्रो और पुत्रियो !

"वह शुभ घड़ी आ पहुंची, वह शुभ मुहूर्त आ पहुंचा, जिस की हम वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे। अरुणोदय हो चुका है। स्वातंत्र्य-सूर्य का उदय होने ही वाला है।

"लेकिन पुत्रो ! वह देखो ! आजादी की देवी अपनी जिह्वा को लपलपाती खड़ी हमें झाँक रही है। हमें बलि के लिये बुला रही है।

"और वह देखो ! सब की मां भारत मां बेड़ियों में जकड़ी कातर नेत्रों से हमें निहार रही है।

"और वह देखो, और जहां तक तुम्हारी मन की आंखें जा सकती हैं उनसे देखो — देश के करोड़ों भूखे-नंगे किस आशा और आस्था से तुम्हें देख रहे हैं।

"पुत्रो ! चल पड़ो ! युद्ध-दुंदुभि बज चुकी है। समर-देवता आह्वान कर रहा है।

"मां की लाज रखना बेटा ! अपने राष्ट्र-ध्वज का मान रखना पुत्रो !"

माँ की वाणी एकाएक आग बन गयी :—

"जाओ, जाओ, ओ क्रान्ति के कुमारो, जाओ ! कश्मीर से कन्याकुमारी, और अरब सागर से बङ्ग सागर तक क्रान्ति की आग लगा दो ! हर नगर में, हर शहर में, हर ठौर में और हर ठिकाने में क्रान्ति की चेतना फैला दो ! दलितों की आत्मा को सोने से जगा दो ! अज्ञान के अन्धेरे से उन्हें बाहर प्रकाश में ला दो !

"लो, यह तुम्हारी माँ भी मैदान को चल पड़ी। हर नगर में, हर गाँव में क्रांति की आग भड़काने। या तो सफल होगी,

या उसी में जलकर भस्म हो जायगी। भारत माँ की जै! भारत के भूखे-नंगों की जै!"

एक साथ सब के मुख से :—

"इन्कलाब जिन्दाबाद! क्रांति की जै हो! भारत माता की जै हो! मां अन्नपूर्णा की जै हो!"

: ३० :

सत्यदेव तथा अन्य नवयुवकों के काफी उपचार के बाद अल्फ्रेड एन्थोनी की पुत्री कुमारी रोज एन्थोनी की चेतना वापस आयी। उसकी आंखें खुलीं, किन्तु अपने को इन हिंदुस्तानी खूंखारों से घिरा पाकर पुनः उसका माथा चकराने लगा। इन्हें वह खूंखार क्यों न समझे? उसे अब तक ऐसा ही समझाया जो गया था। और आज अपनी आंखों से इनके कृत्य भी देख ही चुकी थी। कुछ ही देर पहले थानेदार रामचन्द्र की नृशंस हत्या का विवरण सुन चुकी थी। फिर ऐसे नृशंसों स अपन क घिरी पाकर क्यों न उसका माथा चकराये? उसकी आँखें बंद हो गयीं। मूर्छा ने पुनः उस पर अधिकार जमा लिया।

कुछ देर बाद पुनः उस की चेतना लौटी। आंखें खुलीं, किंतु इस बार उन पर भय की गहरी छाया विद्यमान थी। पुनः उसकी आँखें बंद हो गयीं। सत्यदेव उस की मनोदशा भांप गया। बड़ी व्यथा और सहानुभूति के स्वर में बोला — "डरो मत बहिन! तुम्हें कोई खतरा नहीं।"

'डरो मत बहिन! तुम्हें कोई खतरा नहीं।' सत्यदेव का यह वाक्य तीर की तरह उस भयभीत तरुणी के हृदय में जा चुभा। मन में विश्वास का संचार होने लगा। वह सोचने लगी— 'डरो मत बहिन! तुम्हें कोई खतरा नहीं।' इस वाक्य में, इस

की शैली में धोखे या कपट की कोई गंध तो मालूम नहीं पड़ती। लेकिन मुझे बचाने की इन्हें चिंता क्यों आ पड़ी ? मैं भी तो आखिर उसी समाज का अङ्ग हूँ जिस से इन्हें बेहद नफरत है ! तो फिर इनकी अकारण करुणा का मेरा रूप-यौवन तो कारण नहीं ? तब, 'डरो मत बहिन !' इस बहिन शब्द का उच्चारण क्यों ? कहते हैं, हिंदुओं में 'बहिन' शब्द का उच्चारण एक विशेष अर्थ से भरा होता है। तो फिर...तो फिर...

आँखें बन्द किये कुमारी रोज इस प्रकार के उधेड़बुन में लगी ही थी कि सत्यदेव पुनः वैसे ही मृदु स्वर में बोला-'जल्द तैयार हो जाओ बहन ! हम तुम्हें निरापद स्थान में ले जाना चाहते हैं ! यहां तुम्हारी जान और इज्जत दोनों ख़तरे में हैं।'

रोज घबड़ा कर उठ बैठी, लेकिन चेहरे की व्याकुलता और बढ़ गयी। सत्यदेव ने इस बार बड़ी दृढ़ता से उसे संबोधित करते हुए कहा—'डर क्यों रही हो ? हम हिंदु 'बहिन' शब्द का इस्तेमाल यों नहीं कर बैठते ! उसकी गहरी जिम्मेवारी भी समझते हैं। विश्वास करो ! हमारी जान रहते तुम पर जरा भी आंच न आने पायेगी। चलो, उठो ! जल्दी करो !' कहकर उठ खड़ा हुआ।

सत्यदेव की इस वाणी का रोज के हृदय पर बड़ा ज़बर्दस्त असर हुआ। विश्वास करना ही पड़ा। और विश्वास करने के सिवा दूसरा कोई चारा भी तो नहीं था। रोज उठ खड़ी हुई, और चुप चाप सत्यदेव के पीछे पौड़ियों पर चलती छत से नीचे उतरी। हसरत भरी आँखों से एक बार उस भग्न बिलुंठित बंगले का ओर उसने देखा, और फिर सत्यदेव तथा अन्य नवयुवकों के बीच घिर कर चुपचाप चलने लगी।

शहर से करीब पाँच मील इक्के पर चल कर घड़ी भर रात बीतते बीतते सत्यदेव कुमारी रोज तथा दूसरे युवकों के साथ सीधे पार्वती के दरवाजे पर पहुंचा, और पहुंचते ही

'बहन जी बहन जी' कहकर पुकारने लगा। पार्वती लालटेन लिये घर से बाहर निकली। सत्यदेव के साथ पश्चिमी पोशाक में खड़ी एक अज्ञान तरुणी को देख वह एकाएक चौंक पड़ी। बोली—'कहो सत्यदेव, कैसे आये ? यह तुम्हारे साथ कौन है ?'

'एक अनाथ अबला। कुछ देर पहले माँ बाप दोनों मार डाले गये। बेचारी की जान और इज्जत दोनों खतरे में देख तुम्हारे पास ले आया हूँ।'

'यह तो अंग्रेज है न ?'

'लेकिन अंग्रेज क्या इन्सान नहीं होते बहिन जी ? अगर तुम इन्हें आश्रय देने से डरती हो तो मैं अपने घर ले चलता हूँ। मेरी जान रहते इनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।' कहकर फिर उस निरीह कातर तरुणी की ओर मुड़ कर बोला—'चलो बहिन ! मेरे घर चलो ! मैं गरीब हूँ तो क्या, एक अबला को शरण देने के लिये मेरे घर में जगह की कमी नहीं।'

पार्वती अपने पूछने के ढंग पर मन ही मन पछता कर चट आगे बढ़ी, और उस तरुणी का हाथ पकड़ के बड़े प्रेम से बोली—'चलो बहिन, अंदर चलो ! मेरे पूछने में जरा भूल हो गयी। मेरा सत्ते उसका उलटा मतलब ले बैठा।' फिर सत्यदेव की ओर घूम कर उलाहना भरे स्वर में बोली—'न जाने तुम्हारी यह तुनक मिजाजी कब दूर होगी सत्ते ! क्या तुम अपनी बहिन जी को इतनी नीच, इतनी डरपोक समझते हो ? एक ईश्वर को छोड़ पार्वती और किसी से नहीं डरती सत्ते !' फिर रोज का हाथ बड़े प्रेम से खींचती हुई बोली —'चलो बहिन ! अब देर न करो ! मेरे और सत्ते के रहते तुम्हें डर किस बात का ?'—कहकर उसे घर के अंदर ले गयी।

पार्वती उस अंग्रेज या एंग्लो इंडियन कन्या को घर में तो ले गयी, उसे एकांत कमरे में ठहराया भी ; पहनने के लिये सूट-केस से चट दो धुली साड़ियाँ निकाल के उसे दीं भी ; नहा-धुला

खिला पिला के उसे एक सुन्दर पलंग पर सुलाया भी, लेकिन जिस संस्कार में वह पली थी, उसका प्रभाव तो उसके दिल से दूर नहीं हुआ था। निस्संदेह उसका हृदय महान था, उदार था। गाँव के दीन और दुखियों का वह बड़ा सहारा थी। मगर इस प्रकार की समस्या कभी उसके सामने आयी नहीं थी। एक इसाइन विधर्मी! जब घर में रहेगी निरंतर छुआ छूत की संभावना बनी रहेगी। और छुआछूत हिंदु धर्म और समाज का बड़ा प्रबल अँग है। एक तो हिंदु, तिसपर ब्राह्मण का घर! और सब से ऊपर समाज! समाज तो इसे कभी बर्दाश्त नहीं करेगा। और एक अबला को सम्मान के साथ आश्रय देकर फिर उसको अछूत बनाके रखना कहाँ की मनुष्यता है? उस पढ़ी लिखी बड़े घर की लड़की के दिल पर इसका कैसा असर पड़ेगा? सँभव है, इस के बजाय वह मर जाना पसंद करे'—रातभर बिछौने पर पड़ी पड़ी वह यही सब सोचती रही। फिर एक समय अनजाने मां निद्रा की गोद में समा गयी।

सवेरा हुआ। यह खबर गांव में बिजली की तरह फैल गयी। पार्वती के घर तमाशा देखने वालों की भीड़ जम गयी। लेकिन पार्वती ने किसी को अन्दर घुसने नहीं दिया। उधर गांव के भले लोगों में काना फूसी शुरू हो गयी। धर्म और समाज पर मानो संकट का पहाड़ टूट पड़ा।

भुवन गांव और समाज का मुखिया ठहरा। भला इसे वह कब बर्दाश्त करने लगा। और कल इसी विधर्मी छोकड़ी को लेकर सत्यदेव जैसे एक नंगे कंगाल ने सब लोगों के सामने उसके मुंह पर चपत लगाई थी। सत्यदेव और उन जैसे कंगालों के समर्थक पार्वती से बदला लेने का मौका तो यह अच्छा है। इस अवसर से चूकना मूर्खता होगी। भुवन अपने बैठकखाने में चहल कदमी कर रहा था, और इस गंभीर समस्या के समाधान ढूंढ रहा था। अंत में मूंछों पर ताव देते हुए वह गुनगुनाया—

'अच्छे फंसे हैं यार ! दोनों को मजा चखाऊंगा। समाज से बहिष्कृत न करा दूं, तो मेरा नाम भुवन नहीं।'

भुवन उसी क्षण दवकीनाथ झा के यहाँ पहुँचा। वहां भी इसी संगीन मामले को लेकर बहस छिड़ी थी ! भुवन को आया देख देवकीनाथ नस की गहरी छींक लेकर बोले—'आओ आओ भुवन बाबू ! तुम्हारी ही इंतज़ार कर रहे थे।.....आंक छीं ..... यह तो बड़ा अन्याय है भुवन बाबू ! धर्म और समाज पर इतना बड़ा हमला ? एक औरत का इतना दुःसाहस ? यह सब सत्यानास कर देगी। सब कुछ मिट्टी में मिला देगी। हरि भाई को भी बुढ़ौती में क्या सूझ गया ! बेटे के रहते लड़की को बाप की जायदाद में हिस्सा मिलते कहीं नहीं देखा। लेकिन हरि भाई जो गलती कर गये, उसका फल अब धर्म और समाज को भोगना पड़ रहा है। उसकी इस स्वतंत्रता की रोक-थाम तो बहुत जरूरी है भैया !' कहकर हल्के हाथों कपार पीटने लगे।

गांव के धनियों के पक्के जादुबाज और संस्कृत पाठशाला के वर्तमान अध्यापक पंडित कमलाकांत मिश्र भी वहां मौजूद थे। बड़ी अदा के साथ बार बार गर्दन हिलाते हुए बोले—'हां सरकार ! इसी से तो आज से लाखों वर्ष पहले मनु महाराज कह गये हैं कि—न स्त्री स्वातन्त्र्य महंति। त्रिकाल दर्शी महर्षि जो थे ! उनका वचन कहीं मिथ्या हो सकता है।'

भुवन ने कहा—'पंडित जी का कहना ठीक है चाचा ! और इसी लिये तो मैं अभी आया हूँ ! इसका कुछ न कुछ उपाय तो करना ही चाहिये। नहीं तो समाज में अंधेरगर्दी मच जायगी।'

देवकी नाथ बोले—'तो बताओ क्या किया जाय ?'

'किया यही जाय कि इसी क्षण गाँव के पंचों को इकट्ठा किया जाय, और पार्वती के दरवाजे पर ही। और उससे साफ साफ कहा जाय कि उस औरत को घर से निकाल कर शास्त्र

के अनुसार प्रायश्चित्त कर ले और इस सत्ते को तो समाज से निकाल ही देना चाहिये। उसके लिये तो प्रायश्चित्त भी नहीं होना चाहिये।' फिर पंडित जी की ओर मुड़ कर बोला—'क्यों पंडित जी ठीक है न ?'

और पंडित भी उसी प्रकार गदन हिलाते बोले—'हां हां, बिल्कुल ठीक है। शास्त्र में इसका विधान भी है।'

देवकीनाथ ने कहा—'हां, ठीक कहा बेटे! यह सतदेवा बड़ा लंगठा और बदमश है। बड़ा शोख बन गया है। देखते नहीं हम भले आदमियों तक की इज्जत ले छोड़ता है।'

'हाँ चाचा, तभी तो इसको यहां से निकालना चाहता हूँ।' कहकर भुवन उठ खड़ा हुआ, और सब लोग पार्वती के घर की ओर चल पड़े।

गांव भर के पंचों का जमघट जम गया। इस अनोखी पंचायत को देखने की लालसा से गाँव की जनता उमड़ पड़ी। पार्वती पंचायत में बुलाई गयी। वह आयी और बड़ी निर्भीकता और शांति के साथ एक तरफ बैठ गयी।

पार्वती को उद्देश करके सब से पहले देवकीनाथ बोले—'यह तो बड़ा अन्याय है बिटिया!'

'कौन सा अन्याय चाचा जी ?'

'और तिस पर कहती हो कौन सा अन्याय चाचा जी! यह तो बुरी बात है बिटिया।'

'आखिर उस अन्याय का नाम भी तो बतायेंगे ?'

देवकीनाथ अब नाक के पुड़ों में नस घुसोड़ कर दो तीन बार गहरी छींक लेकर स्वस्थ मन से बोले—'यही जो एक मलेच्छय जात की औरत को तुम ने घर में घुसा रखा है! इस से बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है ?'

पार्वती ने शाँत स्वर में जवाब दिया—'अबला अनाथ को शरण देना अन्याय तो नहीं कहा जा सकता चाचा जी!'

'अबला अनाथ यदि अपनी जात की हो तो एक बात भी है, मगर यह तो.....'

पार्वती को अब जरा क्रोध आ गया। वह चिढ़कर बोली—'मगर यह तो क्या ? अगर मगर मैं कुछ नहीं जानती। मैं इतना ही जानती हूँ कि हर इन्सान ईश्वर की संतान है। फिर एक बाप की संतान में जात-पाँत कैसी ?'

'मगर यह जात पाँत तो आज की नहीं है। सनातन से चली आई है। उसी ईश्वर की बनाई हुई है।' फिर पंडित जी की ओर घूम कर बोले-'क्यों पंडित जी ! मैं ने कोई गलत बात तो नहीं कही।'

पंडित जी हाथ में सुरती चुना रहे थे। उसपर हथेली की ठोकर देते हुए बोले—'बिलकुल ठीक कह रहे हैं सरकार। यह तो सनातन है, ईश्वरीय है। शास्त्रों में इसका प्रमाण है।'

अब भुवन मुंह मिचका कर देवकी नाथ को लक्ष्य करके बोला—'देखो चाचा ! हमें अधिक वाद-विवाद में फसने की जरूरत नहीं। सनातन से यह सब चला आया है। यह ईश्वरीय है। शास्त्र में इस का प्रमाण है। जो कोई इसके विरुद्ध, हमारे सनातन धर्म के विरुद्ध आचरण करे, उसके साथ रहने को हम कतई तैयार नहीं।'

सुन कर पार्वती आग बन गयी। मारे क्रोध के थर थर काँपती हुई बोली—'साथ रहने को तैयार नहीं तो कहीं जाके डूब मरो ! दुनिया को मुंह दिखाते तुझे शरम नहीं आती ? कौन सा मुंह लेकर आज तू इस पंचायत में आया है रे ? तू ही तो है, जो कल उस मूर्छित अबला के अंग में हाथ डालने गया था ! बेशरम, बेहया कहीं का !' फिर देवकी नाथ को उद्देश करके बोली—"देवकी चाचा बूढ़े हो गये ! कबर में तुम्हारे पैर लटक रहे हैं, फिर भी तुम्हें भगवान का भय नहीं। तुम्हारा सुपुत्र भवनाथ कल इसी अनाथ के घर से हजारों के नोट ले आया

है। और आज तुम लोग कितनी बेरहमी और अविचार के साथ धर्म और समाज की आड़ लेकर उस अनाथ अबला का खून करना चाहते हो !' कहते कहते वह रो पड़ी।

अब देवकी नाथ अपनी नम्रता की नकाब को एकबारगी ही उठा कर फेंकते हुए बड़ी बेशर्मी से बोले—'इहाँ न लागहिं राउरि भाया। आंसू टपकाने से काम नहीं चलेगा! तुम ने इन भले आदमियों को बेइज्जत करने का ठेका ले रखा है! मगर अब तुम्हारी ज्यादती बर्दाश्त करने को बिलकुल तैयार नहीं। प्रायश्चित्त कराके छोड़ेंगे या समाज से अलग करके दम लेंगे।'

देवकी नाथ की बातें सुनते ही पार्वती की छाती जल उठी। वह अत्यंत तिरस्कार और फटकार भरे स्वर में बोली—'प्रायश्चित्त कराके छोड़ेंगे! समाज से अलग कर देंगे। किसे यह धमकी दिखा रहे हो? किसे डरा रहे हो? मुझे? तुम्हें यह जान रखना चाहिये कि पार्वती ईश्वर के सिवा और किसीसे नहीं डरती। समाज से अलग करदेंगे, तो पार्वती का क्या बिगड़ जायगा? उसे किसी के घर लड़का-लड़की नहीं बयाहना है, किसी के घर पत्तल नहीं बिछाना है।..... मेहरबानी करके आप पंच परमेश्वर यहां से तशरीफ ले जाइये, नहीं तो मेरे आदमी मना करने पर मानेंगे नहीं।'—कहकर उठ खड़ी हुई और तीर की तरह अपने घर के अंदर घुस गयी।

पंच परमेश्वरों की अच्छी खातिर हुई। आये छब्बे बनने, लेकिन बन गये दुब्बे। बकर-बकर एक दूसरे का मुंह ताकते रह गये। सिवा इसके न उनके पास कोई शक्ति थी न सामर्थ्य। अपना अपना सा मुंह लिये एक एक कर वहां से चल दिये।

रोज एग्लो इंडियन कन्या होकर भी वहाँ की भाषा अच्छी तरह समझ लेती थी। अपने कमरे के एक कोने में बैठी वहां से पंचों की सारी बातें सुन रही थी। एकाएक उसके हृदय में पार्वती के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम के भाव उमड पड़े थे।

पार्वती पंचायत से उठ कर तूफान की तरह सीधे उस अनाथ के कमरे में पहुंची। समाज के इन ठेकेदारों की हृदयहीनता ने एका एक उस अनाथ के प्रति उसके हृदय से में वात्सल्य का पारावार उड़ेल दिया। अब उसके दिल से सारी बाधा और हिचक दूर हो गयी। हृदय उसका निर्मल बन गया। उसने चट झुककर रोज का मुख चूम लिया। अश्रु सिक्त स्वर में बोली—'अब से तुम्हें रोज के बजाय सरोज कहा करूंगी बहन। मेरी छोटी बहन सरोजिनी यदि जीवित होती तो वह भी तुम्हारी ही उम्र की हुई होती।' कहकर पुनः उसका मुख चूम लिया, जबर्दस्ती खींच कर अपनी गोदी में बिठा लिया। पार्वती की आंखों से वात्सल्य के स्नेह पूरित आँसू अबाध गति से बहने लगे।

: ३१ :

शहीदो! किस धातु के बने हो तुम? किस तंतुओं से तुम्हारे दिल का निर्माण हुआ होता है? किन अरमानों को लिये तुम दुनिया से जाते हो? छोड़ जाते हो पीछे एक अनोखी परंपरा, भर जाते हो दिल में एक अनूठी परंपरा। कायर तुम्हारा नाम ले, कर छोड़ता कुछ है। दुश्मन तुम्हारे आगे नतमाथ होता है! परवा नहीं तुम्हें दुनिया की वाहवाही की। चिंता नहीं तुम्हें मरने या जीने की। आदर्श को सर्वस्व तुम मानते सदा। हंस हंस के बलि देना एक जानते सदा। ओ वीरो! धराधाम को न भूलना कभी। न भूलना निरहि नहपुंज को कभी।

× × ×

अन्य अनेक स्थानों की तरह हरिहरपुर से भी डेढ़ दो महीने बृटिश सत्ता का उच्छेद हो गया था। अराजकता बढ़ने लगी थी। और इस अराजकता को बढ़ाने में भुवन, भुवनाथ शरीफ कांग्रेस कर्मियों में होड़ सी लग गयी थी। जब भुवन

ने सुना कि भवनाथ अल्फ्रैड एन्थोनी के बंगले से २० हजार रुपये के नोट लूट लाया है, तब उसकी छाती जलने लगी। उसका मन मसोसने लगा। क्यों उस दिन वह नीचे न रहकर एक औरत के मोह में नाहक ऊपर छत पर दौड़ गया ? क्यों उसने अकेले भवनाथ को लूटने का मौका दिया ? लेकिन हाय ! उस औरत के अंग स्पर्श का वह आनन्द भी तो न ले सका ! उस बेईमान सत्यदेव ने बीच में आकर टांग अड़ा दी।

अब भुवन ने क्षति पूर्ति के प्रयत्न में लग गया। बृटिश सत्ता नष्ट हो चुकी थी। डर किसी का था नहीं। अपने कुछ साथी गुंडों की मदद से अब वह धनियों को लूटने लगा, राही बटोहियों को लूटने लगा। गरीब भी बिचारे लुटने और पिसने लगे। परिणाम यह हुआ कि जनता को इस आजादी और आँदोलन से अरुचि और घृणा होने लगी।

सत्यदेव की शिक्षा केवल मिडल स्कूल तक की थी। छात्र-जीवन में वह प्रतिभाशाली छात्रों में से गिना जाता था। भुवन का लंगोटिया साथी था। लेकिन अचानक पिता की मृत्यु ने उसकी आगे की शिक्षा में बाधा डाल दी। बेचारा आगे न बढ़ सका, किंतु उसकी प्रतिभा और चरित्र के सभी कायल थे। खासकर इस जन आँदोलन ने बड़ों बड़ों के दिल पर उसकी धाक जमा दी थी। स्कूलों के अधिकाँश छात्र उस समय उसके अनुगामी बन गये थे। गाँव के गरीब-गुरबा उसके साथ थे। पार्वती उसके साथ थी। अब वह कमर कस कर तैयार हुआ। अपने अनुगामी नवयुवकों की मदद से हरिहरपुर में उसने वह शाँति और व्यवस्था कायम कर दी जिस के आगे किसी भी शासन की व्यवस्था फीकी प्रतीत होती।

अन्य प्राँतों की अपेक्षा बिहार में आंदोलन का जोर अधिक था। अतः बृटिश दमन भी वहाँ अधिक जोर पकड़ रहा था। अंग्रेज सम्भल चुके थे। अपनी पूरी सैनिक शक्ति के साथ अब

वे निहत्थी जनता पर टूट पड़े। दमन का तूफान उठ खड़ा हुआ। सभ्य वृष्टिश जाति के अत्याचार के आगे पशुता भी लजाने लगी। घर घर घुस कर तालाशी लेना, औरतों के जेवर-जेवरात लूटना, उनकी इज्जत पर हमले करना रोजमर्रे का काम बन गया। मनुष्य के प्राणों की कीमत गोलियों से आँकी जाने लगी। बाल, वृद्ध नर और नारी में कोई अंतर न रखा गया।

हरिहर पुर का तिरंगा झंडा मस्तक ऊंचा किये आसमान में हँस रहा था, खेल रहा था, नाच रहा था। झंडे के नीचे प्रति दिन शाम सवेरे लोग इकट्ठे होते। 'यह राष्ट्र ध्वजा धन मेरा तन मन कुरबान करेंगे' इस राष्ट्र गीत की सामूहिक स्वर लहरी में हरिहरपुर का आकाश गूंज उठता। क्षण भर के लिये सब के दिलों में उमंगें उमड़ पड़तीं।

अब हरिहरपुर दमन की पारी आयी। हरबे हथियार से लैश होकर गोरी फौज वहां आ पहुंची। फौज के आगमन की खबर बिजली की भांति सारे गांव में फैल गयी। जो जहां था भाग निकला। कोई गन्ने के खेतों में छिपा, कोई झाड़ियों में जा छिपा। और भुवन सरीखे देश भक्त औरतों की साड़ियां पहन कर घर के तहखानों में जा छिपे।

गांव एका एक सुनसान बन गया। गोरे सब से पहले वहां पहुंचे जहाँ तिरंगा लहरा रहा था। झंडे के उस गड़े लम्बे बाँस पर वह ठोकरें मारने लगे। उसे हिलाने लगे और नीचे गिराने का प्रयत्न करने लगे।

एकाएक एक पैंतीस साला नौजवान कहीं से बिजली की तरह चमकता वहां आ पहुंचा। हजामत बना रहा था। अभी आधी ही बनी थी। झंडे का अपमान वह बर्दाश्त न कर सका। आते ही कड़क कर बोला—'खबरदार! झंडे का अपमान मत करो।'

गोरे सैनिक चौंक पड़े। मुड़कर उन्होंने देखा, एक काला हिंदुस्तानी छाती ताने उनके सामने खड़ा है।

'तुम बाग जाओ। हम तुमको गोली मार देगा!'

'चुप हरामजादे! मैं जीते जी तुझे झंडा छूने नहीं दूंगा।' कहते वह आगे बढ़ा और उस गोरे के मुंह पर कसकर एक ऐसा घूसा दे मारा कि वह तलमला कर दो गज आगे जा मुंह के बल गिर पड़ा।

और दूसरे ही क्षण एक दूसरे गोरे की गोली उस युवा के सीने में आ लगी। 'भारत माता की जै' कहकर वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उसकी छाती से खून की नदी निकल पड़ी। उसके प्राण पंछी को बड़े सम्मान के साथ अंबर ने अपने अनंत आवरण में छिपा लिया।

सत्यदेव! अब तू नहीं रहा! नहीं नहीं तेरा शरीर नहीं रहा। तेरी आत्मा आज भी क्रोड़ों के दिलों में मौजूद है। हरिहरपुर की जनता तुझे कभी न भूलेगी सत्यदेव! वहाँ आज भी तेरा नाम मान और अभिमान के साथ लिया जा रहा है। भारत माँ को तेरे ही जैसे पुत्रों पर गर्व हो सकता है। भारत की आत्मा सत्यदेव! तेरी जय हो।

: ३२ :

'मुझे ऐसी उमीद नहीं थी नीलू भाई!' नरेंद्र जरा चेहरे पर गंभीरता के भाव लाकर नीलकंठम् से कहा।

'कैसी उमीद नरेन?' नीलकंठम् ने मुस्करा कर पूछा।

'यही कि तुम इतने गिर जाओगे।'

नीलकंठम् बड़े जोर से ठठा कर हंस पड़ा। फिर बोला—'वाह भई नरेन! तुम अब तक उसी ख्याली दुनिया की सैर कर रहे हो। तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुनते सुनते कान पक गये।

कुछ काम की बातें करो। इन व्यर्थ की बातों से तुम्हारा क्या फायदा, और मेरा क्या फायदा ?'

'तुम्हारे फायदे की ही बात कह रहा हूँ नीलू भाई ! लेकिन दुख तो इस बात का है कि तुम्हारे पतन के साथ तुम्हारा दिमाग भी उलट गया है।'

नीलकंठम् फिर अट्टहास कर उठा, बोला—'ठीक ठीक ! दिमाग उलट गया है, तभी तो देखते ही देखते कंगाल से लाखा पति बन गया हूँ। मैं तो तुम्हें सलाह दूंगा नरेन, कि मेयो हौस्पिटल में जाकर एक बार अपना मेंटल सर्वे (दिमागी जाँच) कराके देख लो।'

नील कँठम् के इस व्यंग्य पर नरेंद्र का दिल तिलमिला उठा। फिर भी अपने को सम्भाल कर व्यंग्य का जवाब उसने व्यंग्य में ही दिया—'मेरे पास मुफ्त का पैसा कहाँ जो मेंटल सर्वे कराऊं ? लेकिन इस कहावत को चरितार्थ होते अवश्य देख रहा हूँ कि अपनी नाक कटने पर नाक कटा नाक वालों को मखौल उड़ाने लगता है।'

नरेंद्र की अधीरता को खिल्ली उड़ाते हुए नील कंठम् ने हंस कर कहा—'पता नहीं नाक किस की कटी ! लेकिन 'अंगूर खट्टे' वाली कहावत तो तुम पर पूरी तरह चरितार्थ हो सकती है। खैर ! लेकिन छोड़ो इन बच्चों जैसी बातों को। मेरे लंगोटिया दोस्त है। वैसा दोस्त कि जिस की निरंतर फटकार खाकर भी मैं उसे प्यार करना छोड़ न सका हूँ। तुम्हारे चंचल जीवन को अब मैं स्थिर बनाना चाहता हूँ। कल्पना की दुनिया से तुम्हें वास्तव जगत में लाना चाहता हूँ। अपने कारखाने में मैं तुम्हें साँझीदार बनाने को तैयार हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि जिस प्रकार हम दोनों का मिलित छात्र-जीवन बड़ा ही शानदार रहा, इसी प्रकार सम्मिलित कारोबारी जीवन भी बहुत ही शानदार रहेगा। बोलो क्या कहते हो ?'

नरेंद्र ने बारंबार माथा हिलाते और मुस्कराते हुए जवाब दिया—'ठीक नीलू भाई ठीक ! क्यों नहा ? अब देख रहा हूँ कि बनियों की सारी कला में तुम दिन पर दिन निपुण बनते जा रहे हो। तुम बनियों की कौम किसी आदर्शवादी की स्थिति बर्दाश्त करने को तैयार नहीं, बशर्ते कि वह आदर्शवादी क्रांतिकारी हो। रुपये पैसे से, या जिस प्रकार भी हो तुम लोग उसकी आत्मा खरीदने की कोशिश जरूर करोगे।'

नीलकंठम् ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—'अरे यार ! मैं बनिया थोड़े हूँ ? मै तो ब्राह्मण हूँ ! कैसी बातें कर रहे हो ?'

'अब ब्राह्मण कहाँ रहे भाई ! अब तो पक्के बनिया बन गये हो।'

'खैर, बनिया ही सही। लेकिन इस बनिया से लोगों का उपकार कितना हो रहा है ? देखते नहीं ?'

'कैसा उपकार भैया ?'

'अरे इसे भी समझाने की जरूरत। हजारों गरीबों को मैं ने अपने यहाँ काम दे रखा है। उनके बाल बच्चे पल रहे हैं। संस्थाओं को दान देता हूँ। सार्वजनिक कार्यों में कितना खर्च करता हूँ। आज ही देखो, बंगाल-अकाल सहायता फंड में दस हजार दिये हैं।'

इस बार नरेंद्र ठठा कर हंसा और बोला—'बिल्कुल वही बनिया पंथी दलील ! इन गरीबों को तुम पाल रहे हो, या स्वयं इन से पल रहे हो ? तुम्हारी यह रंगरेली आखिर इन्हीं गरीबों की बदौलत है न ? अगर यह तुम्हारे यहाँ काम नहीं करें तब ?'

'तुम्हारा माथा खराब हो गया है नरेन ! ये मेरे यहां न काम करें तो क्या होगा ? मैं इन्हें बुलाने तो नहीं जाता ! खुद मेरे यहाँ दौड़े आते हैं, आते रहेंगे।'

'सो तो पेट की आग इन्हें तुम लोगों के पास दौड़ाती है नीलूभाई ! और तुम पूंजीपति इनकी मजबूरी का जी भर कर लाभ उठाते हो।'

'दुनियां लाभ उठा रही है, मैं भी उठाता हूँ। इस में मेरा क्या कसूर ?'

'कसूर तुम्हारा नहीं। कसूर है उस दानवी व्यवस्था का जिसकी आड़ में मनुष्य बड़ी निर्दयता से दूसरे मनुष्य का खून चूसता रहता है और उलटे अपने को उसका पालक और पोषक समझता है। यदि तुम वास्तविक स्थिति जानना चाहो, जब तब रात को वेश बदलकर अपने मजदूरों की बस्तियों में घूम आया आया करो। पता चल जायगा कि तुम्हारे मजदूर तुम्हें कैसा पालक और पोषक समझते हैं।'

'सो तो तुम जैसे लोगों ने उनका माथा खराब कर रखा है।'

'लेकिन शहर के और लोगों का माथा किस ने खराब कर दिया है ? वे सब तुम्हें क्यों गालियाँ देते हैं ? कहते है, बड़ा कसाई है। मजदूरों को कम से कम मजदूरी दे कर अधिक से अधिक काम लेता है।'

इस बार नीलकंठम् का चेहरा तमतमा उठा। अब तक की गंभीरता को तिलाँजलि दे खिसिया कर बोला—'तो यह साले शहर के लोग हमारे दरवाजे माथा रगड़ने आते क्यों हैं ? कसाई से पैसे माँगने आते क्यों हैं ? आज ही तो नगर के बड़े मानी सनातनी नेता श्री.....सांई जी भूखे बंगाल के नाम पर मेरे आगे हाथ पसारने आये थे। और अभी दिल्ली में जो महायज्ञ हो रहा है, उस में भी मैं ने हजारों का चंदादिया है।'

नरेंद्र ने हंस कर जवाब दिया—'इतने में ही नाराज हो गये नीलूभाई ! शहर के मानी नेताओं की बात मैं नहीं कहता भाई ! यह तो मैं भी जानता हूँ, तुम भी जानते हो कि यह मानी नेता लोग तुम धनियों के खाऊ-बजाऊ हैं, तुम लोगों से लेना

और सभाओं तथा उत्सवों में तुम बनियों की उदारता का ढोल पीटना। मैंने तो शहर की आम जनता की बात कही है भाई।'

'लेकिन दिल्ली महायज्ञ के रचयिता श्री.....स्वामी जी तो खाऊ नहीं हैं? बेचारा एक लंगोटी मात्र पहनता है। रेल मोटर पर पैर नहीं रखता। सारे भारत वर्ष का पैदल परिभ्रमण कर आया है।'

नरेंद्र ने हंस कर जवाब दिया—'अरे भाई! इस स्वामी को भी प्रसिद्धि की हवस लग गई है। बेचारा २०वीं शती का शंकराचार्य बनने की धुन में पागल बन गया है।'

'महात्माओं पर ऐसा लांछन लगाना ठीक नहीं। तुम नास्तिकों की मति खराब हो गयी है।'

'महात्मा शब्द को तुम लोगों ने इतना सस्ता क्यों समझ रखा है नीलू भाई? उधर बंगाल भूख से दम तोड़ तोड़ कर मर रहा है, मगर इस महात्मा की आत्मा को जरा भी टीस नहीं? हजारों मन अन्न और घी अग्नि में निरर्थक फूंकने की शरारत कर रहा है, लेकिन इन्हीं चीजों से बंगाल की तड़फती और दम तोड़ कर मरती आत्मा को जिलाने की बात इसे नहीं सूझती?'

'लेकिन तुम्हीं क्या कर रहे हो? बड़े आदर्शवादी, मानवता प्रेमी, और न जाने क्या क्या बने बैठे हो! यहां बैठकर मेरे साथ झगड़ने और हम लोगों को कोसने के सिवा क्या कर रहे हो, जरा सुनूं तो?'

इस व्यंग्य से नरेंद्र की आत्मा तिलमिला उठी! बोला—'आज मैं तुम्हारे पास झगड़ने या तुम लोगों को कोसने नहीं आया था नीलू भाई! आया था तुम से कहने कि कुछ दिनों के लिये इन झंझटों से अलग होकर हम दोनों भूखे बंगाल की सेवा के लिये चलें!'

नीलकंठम् मुंह बना के बोला—'भूखे बंगाल की सेवा ! और आज दस हजार रुपये मैंने दिये हैं किस लिये ? भूखे बंगाल की सेवा के लिये ही तो ?'

'रुपये के द्वारा सेवा करने और स्वयं जाकर सेवा करने में बड़ा अंतर है नीलू भाई ! वहाँ स्वयं जाकर सेवा करने से तुम्हें वह दृष्टि मिलेगी, जो केवल रुपये भेजने से नहीं मिल सकती। वहाँ की तड़पती आत्मा को देखकर संभव है तुम्हारी आंखें खुल जायें, और तुम इस पूंजीवाद की दानवी व्यवस्था के जाल से अपने को मुक्त कर लो। तुम्हें समझ लेना चाहिये कि बंगाल का अकाल अंग्रेजों की बदमाशी के अलावा बनियों की हृदयहीनता का भी परिणाम है।'

अब नीलकंठम् आपे से बाहर हो गया। चट दोनों हाथ जोड़ कर क्रुद्ध स्वर में बोला—'बस, बहुत हो गया ! अब माफ करो नरेन ! तुम्हारे साथ बकवास करने की अब मुझे फुर्सत नहीं'। कहकर नीलकंठम् उठ खड़ा हुआ और चट से दूसरे कमरे का चिक अलगा कर अंदर चला गया।

शाम के सात बजे थे। लाला किशनचंद और गार्गी नरेंद्र की प्रतीक्षा में बैठे थे। खाना अभी किसी ने नहीं खाया था। इसी समय अपने प्रिय सखा से तिरस्कृत हो विक्षुब्ध मन से नरेंद्र वहां पहुंचा। उसके उदास चेहरे को देख लाला जी ने पूछा—'इतनी देर कहां रहे बेटा ? तबियत तो तुम्हारी ठीक है न ?'

'ठीक है चाचा जी ! जरा नीलकंठम् के यहाँ चला गया था' नरेंद्र ने जवाब दिया।

'उस से झगड़ कर आये हो क्या ? चेहरा तो कुछ ऐसा ही कह रहा है।'

'अब उसके यहां कभी नहीं जाऊंगा चाचा जी !'

'क्यों ?'

'अब वह सेठ बन गया है। और बड़ा नीच भी बन गया है।'

'लेकिन जो भी कहो नरेन, मैं तो उस से बहुत खुश हूँ। देखते देखते लाखों का मालिक बन गया !'

नरेंद्र के कुछ बोलने से पहले ही गार्गी बोली—'अच्छा नरेन भाई, पहले खाना खा लें। बात चीत बाद में होगी।' फिर पिता को उद्देश करके बोली—'हाँ चाचा तुम्हारी थाली यहीं ला दूं ?'

लाला जी ने कहा—'हां हां, यहीं ला दो ! नरेन के लिये भी यहीं ला दो !.....हां, बैठ जाओ नरेन ' पहले रोटी खा लो। फिर बाद में कुछ और।'

'लेकिन मेरी तो आज रोटी खाने की तबियत नहीं है चाचा जी !'

लाला जी हंस कर बोले—'आज शायद नील कंठम् पर बहुत गुस्सा हो गये हो ! लेकिन रोटी ने क्या कसूर किया है ?'

'मैं आज इसी बारह बजे की गाड़ी बंगाल जाने की सोच रहा हूँ।'

लाला जी चौंक उठे। बोले—'ऐं ! बंगाल ! बंगाल क्या करने जाओगे ?'

'क्या आप ने वहां के अकाल के बारे में नहीं पढ़ा है ?'

'जरूर पढ़ा है। लेकिन तुम्हारे वहाँ जाने से होगा क्या ? अकाल तो तुम्हारे डर से भाग जायगा नहीं ?'

'अकाल न भागे न सही, लेकिन कुछ मनुष्य का कर्तव्य तो निभा पाऊंगा। शायद उस पीड़ित मानवता की कुछ सेवा तो कर सकूं !'

'सेवा वेवा तो कुछ कर सकोगे नहीं, नाहक अपने सिर पर एक वबाल मोल लोगे।'

'जो भी हो चाचा ! जाने का निश्चय मैं ने कर लिया है। केवल आपकी आज्ञा भर की देर है।'

बीच में ही चट गार्गी बोल उठी—'मैं भी जाऊंगी चाचा !'

चाचा झुंझला कर उसकी नकल उतारते हुए बोले—'मैं भी जाऊंगी चाचा ! नरेंद्र जो करे गार्गी उसे जरूर करेगी। तुम भला पीछे क्यों रहने लगी ? तो क्या मैं अकेले इस घर में माला जपने को रह जाऊंगा ?'

'नहीं, तुम भी चलो चाचा ! मैं, तुम और नरेन भाई तीनों जने चलेंगे।'

चाचा जी ने जब और कोई चारा न देखा, तो बोले—'दुनिया चाहे इधर से उधर हो जाय, मगर तुम दोनों अपनी जिद से हटोगे नहीं। अच्छा तो चलो। अपने पीछे नरक में भी ले जाना चाहो तो जाना ही पड़ेगा। दूसरा चारा ही क्या है ?' कहकर चुप हो गये और भोजन की प्रतीक्षा करने लगे।

: ३३ :

लाला किशनचन्द, नरेंद्र और गार्गी ज्यों ही सवेरे हावड़ा स्टेशन पर उतरे भूखों की भीड़ ने अन्य यात्रियों की तरह इन्हें भी घेरा। कुछ दे-दिला कर उनसे पिंड छुड़ा किसी तरह स्टेशन से बाहर आये। वहाँ भी वही भूखों की भीड़। रक्त-मांस विहीन उन नर कंगालों को देख लाला जी का दिल दहल उठा। जीवन में ऐसा दृश्य कभी देखा भी तो नहीं था। अन्न-धन से परिपूर्ण पंजाब के रहने वाले ठहरे। पंजाब से बाहर कभी निकले न थे। अन्य पंजाबियों की तरह उनका भी विश्वास था कि गैर-पंजाबी भुक्खड़ होते हैं। सो आज अपनी आँखों के सामने इन भुक्खड़ों की भीड़ ने उनके विश्वास को और भी दृढ़ बना दिया।

वे बड़े व्याकुल होकर नरेंद्र से बोले—'मेरा तो सर चकरा रहा है नरेन ! जल्दी कहीं ठहरने का इंतजाम करो।'

'घबड़ाइये मत चाचा जी ! अभी मिनटों में सब ठीक हुआ समझिये।'

कुली के शिर पर सामान रख के तीनों जने हावड़ा की ही एक धर्मशाला की ओर चले। धर्मशाला स्टेशन से करीब थी, कुल दो फर्लांग पर। पहुंचे। अब धर्मशाला के मुंशी ने नखरे दिखाने शुरु किये—'जगह नहीं है बाबू जी ! सब भरा पड़ा है !'

नरेंद्र ने अनुनय के स्वर में कहा—'सिर्फ दो घंटे के लिये मुंशी जी ! फिर शहर में चले जायेंगे।'

मुंशी जी ने मुंह बना के जवाब दिया—'कह तो दिया बाबू जी, कि जगह खाली नहीं है। दो घंटे के लिये हो, चाहे दो दिन के लिये हो।'

सुनकर लाला किशनचन्द का पारा गर्म हो गया। लम्बी सफर से आये थे। भूख प्यास से व्याकुल थे। चिढ़ कर बोले—'तुम भी क्यों नरेन, ऐसी वाहियात धर्मशाला में ले आये ! किसी होटल में ले चलते !' और चट पाकेट से मनी बेग निकाल कर दस का नोट नरेंद्र के हाथ थमाते हुए बोले—'जाओ, किसी पुलिस वाले को बुला लाओ ! धर्मशाला की तालाशी ली जाएगी कि सचमुच जगह खाली है या नहीं।' फिर मुंशी जी की ओर मुड़ के आँखें लाल करके बोले—'हम पंजाब के हैं ! किसी को छोड़ते नहीं ! तुम्हारी और तुम्हारे सेठ सब की खबर लूंगा ! देखो, अभी तुम्हें हवालात में भिजवाता हूँ।

लाला जी की बंदर घुड़की ने काम कर दिखाया। मुंशी जी की नस ढीली पड़ने लगी। हाथ जोड़ कर वह बोला—'बाबू जी, हम गरीब हैं। आप हो लोगों का दिया खाते हैं। तनखाह तो सिर्फ कहने के लिये है। अच्छा बाबू जी, एक कमरा देखता हूँ।

एक बाबू उसे रिजर्व करा गये हैं। रात को आयेंगे। चलो, तब तक उसी में आपको ठहरा दूं। उनके लिये फिर देखा जायगा। तब तक दूसरी जगह खाली हो जायगी।'

नहा-धो खा पी कर तीनों जने बड़े बाजार में आ गये। हावड़े की उस कुंभी पाली धमशाला में उनका दम घुटने लगा था। बड़े बाजार के एक अच्छे से होटल में एक सुन्दर सा कमरा किराये पर लिया। घण्टा दो घण्टे आराम करने के बाद शहर की सैर को तीनों जने निकले और उन्हों ने जो कुछ देखा, उसकी छाप सदा के लिये तीनों के दिलों पर पड़ गयी।

'बाबू पैसा दो'—नरणोन्मुख भूखे कंगालों के मुख से अति धीमे आर्त स्वर में करुणा याचना! आगे बढ़े; देखा, धनियों के घरों से फेंके गये रोटियों के टुकड़ों पर कुत्तों और कंगालों में घनघोर लड़ाई! आगे बढ़े; देखा, एक भूखा कंगाल किसी की कै को बड़ी तत्परता से अपना जीभ से चाट रहा है और आगे बढ़े और देखा, माँ मरी पड़ी है, बच्चा उसके निष्प्राण सूखे स्तन को अब भी मुंह में लियेउसकी छाती से चिपका पड़ा है।

कलकत्ते की सड़कों और गलियों में ऐसे अनेक करुण और बीभत्स दृश्य देखते हुए एक समय तीनों जने चितरंजन एवेन्यू की एक मोड़ पर पहुंचे। उस से सटी एक गली में जो दृश्य उन्हों ने देखा, देखकर घृणा, वितृष्णा और क्रोध से हृदय उनका भर उठा। गार्गी तो मारे शरम के गड़ गयी, और साथ ही नरेंद्र और लाला जी भी मुड़ गये। तीनों जने एक साँस में एक पास के मन्दिर में आकर बैठ गये। चुप चाप शिर झुकाये बैठे रहे। शर्म के मारे एक दूसरे का मुह तक देखने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

उन्हों ने देखा यही था, यद्यपि उस दृश्य का वर्णन करते लेखनी लजाती है। लेकिन उसका वर्णन करने से पहले उसके मूल कारण पर थोड़ा प्रकाश डाल देना अप्रासंगिक न होगा।

युद्ध में जापान के उतर जाने के कारण हिन्दुस्तान कुछ समय के लिये गोरी फौजों का जबर्दस्त अड्डा बन गया था। और कलकत्ते की बात ही क्या। सारे बर्मा पर जापानियों के अधिकार हो जाने के कारण सैनिक दृष्टि से कलकत्ते का महत्व बहुत बढ़ गया था। अंग्रेज, अमेरिकी — — अंग्रेजी उपनिवेशों की सेना से कलकत्ते की गली गली भरी दीख रही थी। अपनी जान हथेली में रखने वाले इन सनिकों की सुख-सुविधा का ख्याल हर सरकार को रखना पड़ता है। तिसपर यह ठहरी अमेरिका और इंगलैंड की गोरी सेना! महा मेहमान! तो भला बृटिश सरकार का ऐजेंट हिंद सरकार इनके स्वागत सत्कार का ध्यान क्यों नहीं रखती?

पहले तो इन गोरों का ख्याल था कि हिंद जैसे गरीब और असभ्य देशों में औरतों की कमी क्या? पैसे पास में हैं। दुनिया की सारी चीजें मिल सकती हैं। यही सोच कर हिंद की भूमि पर पैर रखते ही इन गोरों ने दिन दहाड़े खुले आम शहर की महिलाओं पर बलात्कार की चेष्टा शुरू कर दी, किंतु हर जगह उनका सत्कार भी शुरू हो गया—घूसों और जूतों से। सारे भारत के नारीत्व को वेश्या समझने की भूल की कीमत गहरी साबित हुई। गोरों की इस बदतमीजी के खिलाफ कुछ अंग्रेज भक्त हिंदुस्तानियों ने भी शिकायत करनी शुरू की! इस छोटी सी बात को लेकर हिंद सरकार जन मत को अपने विरुद्ध उभाड़ना नहीं चाहती थी। अतः एक नया औपन्यासिक तरीका सोचा गया।

Women's Auxiliary Force—अर्थात् स्त्री सहायक सेना का निर्माण कर के भारतीय पैसे द्वारा ही भारत के नारीत्व का घोर अपमान ही नहीं अपितु हरण करने का सरल उपाय ढूंढा गया। चितरंजन एवेन्यू को उस मोड़ से सटी उस गली में उन तीनों ने गोरों की पशुता का ही चित्र देखा था।

किंतु मँदिर का नजारा देख उन्हें कम आश्चर्य और कष्ट न हुआ। यद्यपि यह नजारा उस पशुता का न होकर धार्मिक था। भक्त गण ताली बजा बजा कर, नाच नाच कर और झूम झूम कर कीर्तन करने में इस प्रकार लवलीन थे, मानो उन्हें पता ही नहीं कि सारे संसार में, और बिल्कुल बगल की गली में क्या हो रहा है। कीर्तन में नगर के बड़े बड़े धनी मानी, जज, कलक्टर और बैरिस्टर जैसे संभ्रांत सुसंस्कृत व्यक्ति शामिल थे। बड़े घरों की कुछेक महिलाएं भी शामिल थीं। और कीर्तन के नेता थे उत्तरा खंड के एक महातपा महर्षि! कहते हैं, भगवान ने इन्हें साक्षात् दर्शन देकर सारे धर्म-प्राण भारतवर्ष में कीर्तन धर्म प्रचार का आदेश दिया है। महातपा महर्षि उसी ईश्वरीय आदेश के परिपालन में लगे थे। इस में उनका व्यक्तिगत स्वार्थ रञ्चमात्र भी न था।

यहां से भी एक जबर्दस्त घृणा और वितृष्णा के भाव लेकर वे कुछ ही दूर आगे बढ़े कि उसी चितरंजन राजमार्ग से सटे एक बगीचे में एक महान समारोह का दृश्य दिखायी दिया। बगीचे के द्वार पर दो बड़े हरे केले के स्तंभ गाड़े थे। नीचे से ऊपर तक अशोक के हरे पत्तों का बंदनवार इस ढग से सजाया था कि देखते एक घना निकुंज सा लग रहा था। और इसी के सामने टंगे दो गज लंबे लाल कपड़े पर गोंद के सहारे रुई के बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था—**विजय यज्ञ**—अर्थात् इस विश्व युद्ध में अंग्रेज बहादुर की विजय के निमित्त नगर के राजभक्त प्रजा जनों के द्वारा आयोजित यज्ञ।

कहते हैं नगर के व्यापारी समाज को केवल भारत की राजधानी दिल्ली में हो रहे महायज्ञ से तृप्ति नहीं हो रही थी, अतः भारत की सर्वोत्तम नगरी कलकत्ते में भी एक यज्ञ का आयोजन उन्हों ने रच दिया। सेठों ने मुक्त हस्त से चंदा दिया। और दिल्ली तथा कलकत्ते के इन यज्ञों के फोटो गोरे संवाद दाता

अमेरिका और बृटेन में भेज भेज कर यह साबित कर रहे थे, कि बंगाल में अकाल कहाँ ? यह तो कांग्रेस अखबारों का शरारत भरा प्रचार है।

अस्तु ! वहां से बस में सवार होकर वे सीधे Horse Race Ground (घोड़ दौड़ का मैदान) को पहुंचे। वहाँ उन्हों ने नगर की सारी भद्र मंडली को विराज[illegible]। घुड़दौड़ अभी समाप्त ही हुआ था। रेस के इहाते से बहुरंगी भड़कीली पोशाकों में सजे हर उम्र के काले गोरे नर नारी निकल रहे थे। बाहर उनकी निज कीकारों की कतारें लगी थीं। बड़ी शान और शौकत के साथ सभी अपनी कारों पर सवार हो रहे थे। इनके वेश विन्यास और तड़क भड़क देख इंद्र पुरी के निवासी भी शायद तुच्छ लगें। इन्हें देख कर कौन कह सकता था कि इसी कलकत्ते की गलियों और सड़कों पर लाखों नर नारी भूख से दम तोड़ कर मौत की भेंट हो रहे हैं ? कौन कह सकता था कि इस स्वर्ग की छाती सड़ कर कुंभी पाक नरक से भी बदतर बन गयी है ? लेकिन कलकत्ते के इस स्वर्गीय भाग में कुंभी पाक के इन अभागे कीड़ों का पैर रखना भी तो अपराध था। समाज के इस भद्र मुहल्ले की उन कीड़ों से रक्षा के लिये पुलिस सदा सतर्क रहती थी।

वहां से चल कर डलहौज़ी स्कायर में पहुंचे। स्कायर के तटों पर हर श्रेणी के लोग बैठे थे। वहीं एक जगह हरी घास पर ये तीनों जने थके दिल से बैठ गये। रग्घू पाँडे शिर में तिलक लगाये वहीं एक तरफ चाट का सरंजाम लगाये बैठा था। उधर से गजुआ पासी शराब के नशे में कुछ झूमता हुआ सा आके उसकी बगल में बैठ गया। आँख मुंह मटका के बोला—'कहो पाँडे जी कैसी कट रही है आज कल ? माल तो तुम्हें अच्छा हाथ लगा है यार !'

पाँडे जी तुनक कर बोले—'चुप हरामजादे ! छोटी जात बोलने की तमीज नहीं !'

'नराज क्यों होते हो पाँडे जी ? मैंने बुरा क्या कहा ?'

'नराज क्यों न होऊं साले ? अब वह मेरी इज्जत जो बन गयी है ? मैंने उस से शादी जो कर ली है ?'

'शादी करो, या जो कुछ करो, है तो वह अनेरी धुनेरी ही ? उसकी जात पांत, कुल गोत का तो कोई पता नहीं ?'

'चुप साले ! फिर जबान चलाई तो जीभ खींच लूंगा ।'

अब गजुआ गुसा गया। बोला—'इतनी शोखी काहे बघारते हो पांडे जी ? गजुआ पास भी ऐसी बावन गंडा आई थी ! हाथ जोड़ के कह रही थी—'अपने पास रख लो भैया ! रसोई बनाके खिला दूंगी। जो कहोगे करूंगी।' मगर मुझे तो जानते ही हो पांडे जी, कि अपने राम एक कुएं का पानी नहीं पीते। आजकल अकाल की दया से सोना गाछी की परियों की तादाद सत्तर हजार से बढ़ कर दो लाख हो गयी है।'

पाँडे जी ने उसे फटकारा—'चुप हरामजादे ! बोलते शरम नहीं आती ?'

गजुआ ने बड़े तपाक से जवाब दिया—'क्या औरत हूँ जो शरम आयेगी ?' और कहकर कुछ दूर पर बैठी गार्गी की ओर देख कर उसने आंख मारी।

इधर लाला किशनचन्द न जाने किस विचार में भूले हुए थे। नरेंद्र भी खोया हुआ सा बैठा था। गार्गी नरेंद्र को उद्देश्य करके बोली—'चलिये नरेन भाई ! उठिये यहाँ से !'

नरेंद्र अकचका कर उठ खड़ा हुआ और बोला—'हां हां, चलो। बहुत देर हो गयी है।' फिर लाला जी को सचेत करते हुए बोला—'चलिये उठिये चाचा जी ! अब देर हो रही है ! बासे पर चलना चाहिये।'

लाला जी मानो सोने से जागे। तड़फड़ उठ खड़े हुए और बोले--'हां चलो। बहुत थक गया हूँ।'

रात को भोजन से निवृत्त होकर तीनों जने अपने अपने बिछौने पर लेट गये। लेकिन क्यों आज इतनी थकावट के बावजूद भी नींद नहीं आ रही थी ? एक लम्बी सांस लेकर लाला किशनचन्द जी बोले--'बेटा नरेन अब कुछ कुछ तुम्हारी बातें समझने लगा हूँ। सचमुच अमीरों के हृदय नहीं होता। परले दर्जे का स्वार्थी होता है यह समाज !'

नरेंद्र उत्साहित हो कर चट बिछौने पर उठ बैठा। बोला-'मैं दिन रात इन्हीं बातों पर सोचता रहता हूं चाचा जी। मौजूदा समाज की हृदय हीनता दिखाने के ख्याल से ही आज मैंने तुम को इतनी लम्बी सैर करायी है। नहीं तो कहने पर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता।'

'ठीक कहते हो बेटा ! आँखों से देखे बिना ऐसी बातों पर विश्वास होता ही कहां है। लेकिन आज तुम ने मेरी आँखें खोल दीं। इसके लिये मैं बड़ा एहसानमंद रहूँगा बेटे ! क्या कहा जाय ? अब बूढ़ा हो गया हूँ। तन के साथ मन भी कमजोर हो गया है। नहीं तो.....' कहकर लाला जी ने एक लम्बी गहरी साँस ली।

नरेंद्र का मन खुशी के मारे उछलने लगा। बोला--'मुझे सब से खुशी इस बात की है चाचा जी, अब तक जो तुम मुझे गलत समझते थे, आज सही समझने लगे हो। लेकिन सच्चे दिल से आशीर्वाद दो चाचा, कि हम तुम्हारी संतान अपने संकल्प पर कायम रहें। पिसी और चुसी मानवता को ऊपर उठाने के लक्ष्य की ओर निर्धोक बढ़ते जाएं। हमें दुनिया का कोई प्रलोभन न हिला सके, कोई बाधा न डिगा सके।'

लाला जी अश्रुरुद्ध स्वर में बोले--'अशीर्वाद देता हूँ, सच्चे दिल से अशीर्वाद देता हूँ बेटे! तुम्हारा संकल्प पूरा होवे। भगवान तुम्हारी मदद करें।'

नरेंद्र चट अपने बिछौने पर से उठ कर लाला किशनचन्द के पैताने में जा पहुंचा और बारंबार उनके पैर छू छू कर अपनी आँखों से लगाने लगा।

लाला जी भी उठे, और नरेंद्र को अपनी ओर खींच कर उसे छाती से लगा उसका मस्तक सूंघने लगे।

फिर नरेंद्र वापस आ कर अपने बिछौने पर बैठ गया। और बोला—'देखा चाचा! अंग्रेज किस बेरहमी से हम से पिछले साल (सन ४२) के आजादी आंदोलन का बदला ले रहे हैं। और इस बदला लेने के काम में मदद कर रहे हैं धनी जागीरदार और शहर के बड़े बड़े बनिये।'

'कैसे बेटा?'

'अंग्रेजों ने किसानों से जबर्दस्ती लाखों मन अनाज छीन कर बाहर भेज दिया। इस में कारण यह बताया गया कि जापानी हमले का खतरा है इस लिये खतरे की जगहों से अनाज हटा देना जरूरी है। इधर बनियों ने इस स्थिति से फायदा उठाना शुरू किया। जो चावल पहले पांच रुपया मन बिकता था, एकाएक उसकी कीमत तीस, चालीस और पचास रुपया मन हो गयी। खरीदने के लिये गरीबों के पास इतने पैसे कहां? नतीजा अपनी आँखों से आज हम देख ही आये हैं।'

'हाँ बेटा! स्वार्थ ने सब को अंधा बना दिया है। रातों-रात धन्ना सेठ बनने की हवस ने सबको पागल बना दिया है।'

'जब तक यह पूंजीवादी व्यवस्था रहेगी, यह हवस कभी दूर होने की नहीं चाचा जी!'

'हाँ बेटा ! यही हवस अब नीलकंठम् पर भी सवार हो गयी है। तभी तो मजदूरों के साथ उसका सलूक बड़ा बुरा है। सब पीठ पीछे उसे गालियां देते हैं।'

'तभी तो मेरी उसकी बनती नहीं है। वह दिन पर दिन पतित होता जा रहा है।'

'पतित तो जरूर होता जा रहा है। सुनते हैं बड़ा बदचलन बन गया है।'

'पैसा अपने साथ निर्दयता और नीचता के अलावा दुनिया के और अनेक ऐबों को ले आता है चाचा जी !'

'हाँ बेटा ! आज देखा नहीं, कि इसी कलकत्ते की गलियों और सड़कों पर लाखों इन्सान भूख से दम तोड़-तोड़ कर मर रहे हैं, और अमीरों की रङ्ग-रेलियां बगैर किसी हिचक और कसक के जारी हैं। मानो उनकी नजरों में भूख से मरते इन इनसानों की कोई कीमत ही नहीं। बेरहमी और कमीनेपन की हद हो गयी बेटा !'— कहते २ लालाजी का चेहरा लाल हो गया। वे अब बड़े जोश से बोले — 'देखो बेटा ! हम आये हैं यहां इन्सानियत की सेवा करने, तमाशा देखने नहीं। अलग रह कर हम कुछ नहीं कर सकेंगे। बेहतर तो यह होगा, कि सेवा-कार्य में लगी किसी संस्था में शामिल होकर स्वयं-सेवक के रूप में हम काम शुरू कर दें। और इसका इंतजाम कल ही हो जाना चाहिये।'

नरेंद्र दुगने उत्साह से बोला — 'जरूर चाचाजी ! कल जरूर इंतजाम कर लेंगे ! अपने पञ्जाब की 'रिलीफ सोसाइटी' यहां काम करने आयी है। काम करना शुरू भी कर दिया है। कलकत्ते से बाहर भी कैंप खोलने का उसका विचार है। हम भी इसी रिलीफ सोसाइटी में शामिल होकर काम शुरु कर दें यह अच्छा होगा।'

'बिल्कुल ठीक बेटे ! अच्छा अब सो जाओ। रात काफी हो गयी है। तड़के ही हमें उठना होगा।'—कह कर लालाजी चुप हो गये, और कुछेक क्षण बाद ही खर्राटे भरने लगे।

: ३४ :

फरीदपुर जिले में अकाल अपनी सोलहों कला से नङ्गा नाच रहा था। मदारीपुर के आस-पास के इलाकों का बड़ा बुरा हाल था। गांवों के गरीब कीड़े-फतिंगों की मौत मर रहे थे। जमीनदारों और धनी किसानों ने अपना अनाज छिपा लिया। बनियों ने बाजार को काला बना दिया। स्वार्थ नङ्गा नाचने लगा। मानवता रोनेलगी, दम तोड़ने लगी और मौत की भेंट होने लगी।

गाँवों की भूखी और नङ्गी जनता का विशाल कारवां आहार की खोज में शहरों की ओर चल पड़ा था। रास्ते में वृक्षों के पत्ते चबा चबाकर वे भूख को दबाते आ रहे थे। पर शहरों में पहुंचकर तो उनका और भी बुरा हाल होता। वहां तो पत्ते भी नदारद ! इन भूखों को अध्यात्मवाद की शिक्षा भी तो नहीं मिली थी, कि जिसके सहारे हंसकर भूख का मुकाबला करते ! परिणाम वही हुआ जो कलकत्ते की गंदी गलियों और सड़कों पर लाला किशनचन्द, नरेंद्र और गार्गी देख चुके थे।

बहुतेरी संस्थाओं ने मदारीपुर पहुंचकर काम करना शुरु कर दिया। पद्मा के किनारे आधे दर्जन के करीब कैंप पड़ गये। हिंदू, मुस्लिम, मारवाड़ी आदि कई सेवा-संस्थाओं के साईन-बोर्ड अपने २ कैंपों के आगे लटक रहे थे। लेकिन क्या मजाल कि कोई मुसलमान अकाल-पीड़ित हिंदू सेवा-समिति के कैंप में घुस सके, और क्या मजाल कि कोई काफिर कंगाल मुस्लिम-रिलीफ-लीग के दफ्तर में जाकर हाथ पसारने की हिम्मत करे ! मारवाड़ी

सेवा सङ्घ के हर कोने में हिंदू पैर पसार सकते थे, तो मुसलमान अभागों के आगे दूर से ही कुत्तों की तरह एक-आध मुट्ठी अनाज फेंक दिया जाता। इस प्रकार प्रत्येक संस्था अपनी समझ-बूझ के अनुसार इस सेवा कार्य में लगी थी।

पञ्जाब रिलीफ सोसाइटी की ओर से कुछ स्वयंसेवकों के साथ लाला किशनचन्द, नरेन्द्र और गार्गी अकाल-पीड़ितों में काम करने मदारीपुर पहुंचे। इन्होंने भी एक तरफ अपना कैंप गाड़ दिया। पहले उन संस्थाओं में जाकर इन्होंने काम करने का तरीका अध्ययन किया। उन तरीकों से लाला जी के दिल पर बड़ी चोट पहुची। वे नरेंद्र तथा अन्य स्वयंसेवकों को लक्ष्य कर के बोले—'हम यहाँ मजहब की सेवा करने नहीं आये हैं बेटो! इनसानियत की खिदमत करने आये हैं। अपने कैंप में भी हिंदू-मुस्लिम भेद खड़ा कर के ईश्वर के आगे हम कसूरवार नहीं बनना चाहते।'

नरेन्द्र ने जवाब दिया—"तुम्हारे नरेन के रहते यह रोग इस आश्रम में नहीं घुसने पायगा चाचा जी!"—फिर वह अन्य स्वयं सेवकों की ओर मुड़ कर बोला—"क्यों भाइयो, आप लोगों की क्या राय है?"

"हम आप से सोलह आने सहमत हैं नरेन भाई! जो आज्ञा कीजिये, पूरा करने को तैयार हैं।"—सब ने एक साथ जवाब दिया।

नरेन्द्र का दिल गद्गद हो उठा। पारी पारी से स्वयं सेवकों को गले लगा फिर चाचा जी की ओर मुड़ कर बोला—"चाचा जी, तुम हमारे सेनापति हो। जैसी आज्ञा करो वैसा करें।"

चाचा जी बोले—"हां बेटे, अब अपना काम शुरू कर दो। यद्यपि हमारे साधन थोड़े हैं, लेकिन तुम लोगों का उत्साह देख कर मेरी तो छाती गद्गद हो उठी है। हम यहाँ सदावर्त बांटने

नहीं आये हैं, पीड़ितों की सेवा करने आये हैं। एक तरफ भोजन का इंतजाम रहेगा, दूसरी तरफ दवा-दारु का भी। इसके लिये कुछेक झोंपड़ियां बना लो।" फिर गार्गी को उद्देश करके बोले--"हाँ बिटिया गार्गी! यही तुम्हारे इम्तहान का समय है। तुम्हें जो मैं ने डाक्टरी की तालीम दिलवाई है उस के पूरा इस्तेमाल का यही मौका है। इसके इलावा, कैम्प घरेलू इंतजाम की जिम्मेदारी भी तुम्हीं पर रहेगी।'

पञ्जाब कैम्प ने काम शुरू कर दिया। उसकी उदारता और सुप्रबन्ध की ख्याति फैलने लगी। हिन्दू-मुस्लिम अकाल-पीड़ित बिना किसी हिचक और बाधा के इस कैम्प में आते। एक पांत में बैठकर भोजन करते। क्योंकि कैम्प का नियम ही ऐसा था। और खासकर पेट की आग ने कुछ दिन के लिये सब के दिलों की छुआछूत और जात-पाँत को बीमारी को जलाकर राख कर दिया था। इस दशा में भी जिनके मन से यह बीमारी दूर नहीं हो पायी थी, उनके लिये मारवाड़ी सेवा-संघ शायद सब से उपयुक्त था। लेकिन जब दूर से खड़े होकर पंजाब-कैम्प के पीड़ितों को एक पाँत में बैठकर आराम से जीमते और गार्गी जैसी त्रिभुवन-सुन्दरी को बड़े प्रेम और ममता से उन्हें परोस-परोस कर जिमाते देखते, तो उनका भी जी ललक उठता। तब छुआछूत के भूत को एक बारगी ही अपनी गर्दन से झिटक कर फेंक देते, और पाँत में शामिल हो जाते।

गार्गी के आदर्श से प्रेरित होकर बड़े घरों की कई शिक्षित बंग-महिलाएं भी कैम्प के सेवा-कार्य में शामिल होने लगीं। इन माताओं और बहनों के आते ही कैम्प की सजीवता बढ़ने लगी। कैम्प यद्यपि अनाथ औरत-बच्चों से भर गया, लेकिन व्यवस्था वहां की सुन्दर से सुन्दरतर बनती गयी।

एक दिन शाम के चार बजे लाला किशनचन्द, नरेंद्र और गार्गी कैम्प के काम से निपट कर बैठक में बैठे थे। कुछेक

दूसरे स्वयं-सेवक भी थे। जहाँ-तहां की बातें चल रही थीं। इसी समय एक चार साला शिशु दौड़ा हुआ आके गार्गी के गले से लिपट गया, और अपनी समान उम्र के एक दूसरे शिशु के खिलाफ शिकायत करते हुए अपनी अस्पष्ट तुतली बोली में बोला—'दीदी! अलिंद अमको मालता है।'

उधर से हरिपद भी दौड़ा आया, और दूसरी तरफ से दीदी के गले में लिपट कर उस अभियोग का [illegible] हुए बोला—'नईं दीदी! सादुल्ला ने अमारा कान ऐंट दिया है। और कह कर फिर उसने सादुल्ला के गाल पर एक चपत लगा दी।

दोनों में महाभारत मचने ही वाला था कि गार्गी दोनों के गाल पर एक हल्की सी चपत लगा के पुचकारती हुई बोली—'दुत् पगले! लड़ते नहीं! लड़ाई तो कमीने करते हैं। तुम लोग तो अच्छे लड़के हो न!'

दोनों ने एक साथ जवाब दिया—'आँ, अम अच्चे ललके ऐं।'

गार्गी ने मुस्कराते हुए कहा—'मगर तुम लोग लड़ते जो हो।'

'अब नहीं ललेंगे।'

गार्गी ने दोनों के मुख चूम लिये। उनकी पीठ थप-थपाती बड़े प्रेम से बोली—'अच्छा, अब जाते जाओ। खेलो।'

दोनों बच्चे हिरनी की तरह छलांग मारते वहाँ से निकल पड़े।

इस प्रकार दोनों बच्चों के चले जाने पर लाला जी बोले—'बुराई से भी जब तब किसी के लिये भलाई निकल ही आती है बेटे! और बगैर बुराई के भलाई की कीमत कोई समझ भी तो नहीं पाता!' कहकर कुछेक क्षण चुप रहे। फिर बोले—'यही जैसे बंगाल का अकाल! इन्सान की बेरहमी और नृशंसता का ही तो यह नतीजा है। इस बेरहमी और नृशंसता ने इन्सानियत से मुझे प्रेम करना सिखा दिया है। इस से पहले मैं बिल्कुल एक उदासीन आदमी था। इन्सानियत को ऊपर उठाने, साम्यवाद

या समाजवाद को लागू करने की बातें मुझे वाहियात मालूम पड़तीं। लेकिन वही बातें अब बिल्कुल सही और दरुस्त मालूम पड़ती हैं। अब दिल तो ऐसा करता है कि इन आदर्शों के लिये अगर कोई इस बूढ़े की गर्दन भी माँगे, तो बूढ़ा जरा भी उज्र न करेगा, हालाँकि बुढ़ापे में जीने का मोह बढ़ जाता है।'

नरेंद्र चट उनके चरण छू कर बोला—'अब मेरा विश्वास और भी मजबूत बन गया चाचा जी, कि हिंदुस्तान में हकूमत कायम होके रहेगी। जब कि तुम्हारे जैसे बूढ़े भी गर्दन देने को तैयार हैं।'

लाला जी बारंबार गर्दन हिलाते हुए बोले—'कायम होके रहेगी बेटे, जरूर कायम होके रहेगी! भला इन्सानियत कब तक इतना जुल्म बर्दाश्त करती रहेगी? आखिर बर्दाश्त की भी तो कोई हद होती है।'

नरेंद्र ने कहा—'लेकिन मेहनतकशों के राज्य कायम होने के रास्ते में कांटों के बड़े बड़े जंगल अभी मौजूद हैं। इन्हें काट कर साफ किये बिना मजदूर-राज्य केवल एक सपना ही रहेगा चाचा जी!'

'काँटों के यह कौन कौन से जंगल हैं बेटे?'

यही जैसे साम्प्रदायिक और मजहबी संस्थायें। सेठों के संरक्षण में चलने वाली और भी कई जमातें।'

'बात तो तुम्हारी ठीक है बेटा! संप्रदाय या मजहब इन्सान को इन्सान नहीं रहने देते। अभी जो ये दोनों बच्चे आये थे, सादुल्ला और हरिपद, एक मुसलमान का बच्चा है और एक हिंदू का। दोनों अनाथ हैं। दोनों को अभी दुनिया का कुछ पता नहीं। अभी न यह हिंदु हैं, न मुसलमान। बिल्कुल एक खालिश इन्सान हैं। लेकिन बाद में इन्हीं के दिलों में मजहब का जहर भर कर बड़ी आसानी से पशु या हैवान बनाया जा सकता है। आगे चलकर ये ही लोग दुनिया को.....'

'नारायण !'

लाला जी की बात अधूरी ही रह गयी। नरेंद्र ने इस परिचित स्वर के कान में पड़ते ही मुंह घुमा कर पीछे देखा—स्वामी सर्वज्ञानन्द खड़े हैं। लेकिन इस समय उनके लिबास में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। बिलकुल लाल रंग में रंगी लुंगी पहने और लाल चादर ओढ़े तथा हाथ में दण्ड की जगह मजदूरों का लाल झंडा लिये हुए हैं।

नरेंद्र तड़फड़ उठ खड़ा हुआ और आगे बढ़ कर उसने स्वामी जी के चरण छुए। लेकिन स्वामी जी ने नरेंद्र को अभी पहचाना नहीं। अब से दस साल पहले बँबई में नीलकंठम् के साथ एक सतरह साला किशोर के रूप में उन्हों ने देखा था। लेकिन अब उसके आकार-प्रकार में काफी अंतर हो गया था। उसके निर्लोमश चेहरे पर दाढ़ी मूंछें घनी हो उठी थीं, यद्यपि सदा साफ रहतीं। यौवन के विकारों के साथ अंग-प्रत्यंग विकास के उत्कर्ष पर पहुंच चुका था। स्वामी जी ने 'नमोनारायण' कह कर उसे आशीर्वाद दे सदय स्वर में पूछा—'कभी कहीं देखा है तुम्हें बेटा !'

'हाँ गुरु जी ! आज से दस साल पहले कलकत्ते और बंबई में। समुद्र के किनारे चौपाटी के मैदान में !'

स्वामी जी की स्मृति एकाएक जग उठी। खुशी के मारे उछल कर बोले—'ओ ! तुम तो नरेंद्र, और नीलकंठम् कहाँ है ?'

'नीलकंठम् अब समाप्त हो गया गुरु जी।'

'एं, क्या कह रहे हो ? क्या वह मर गया ? कैसे मरा ?'

स्वामी जी के पूछने के ढंग पर नरेंद्र को हंसी आ गयी। हंसते हुए वह बोला—'शरीर से वह अब भी जिंदा है गुरु जी ! लेकिन आत्मा उसकी मर चुकी है।'

'आत्मा उसकी मर चुकी है ! क्या कह रहे हो ? जरा साफ करके कहो !'

नरेंद्र ने सारी कहानी कह सुनाने के बाद कहा—'आज देखते ही देखते दो तीन साल के अंदर वह लाहौर के धन-सेठों में गिना जाने लगा है। युद्धोपयोगी सामान सप्लाई करने का आज वह एक बहुत बड़ा ठेकेदार है। कई कारखाने खोल लिये हैं। मजदूरों को चूसने में अपना सानी नहीं रखता। चरित्र की दृष्टि से भी गिरा जा रहा है। इसी से मैंने कहा कि वह समाप्त हो गया।' कहकर नरेंद्र चुप हो गया।

स्वामी जी एक लंबी आह भर कर निराशा भरे स्वर में बोले—'हाँ बेटा! सचमुच समाप्त हो गया।'

नरेंद्र ने कहा 'लेकिन मुझे कतई आशा नहीं थी कि आगे चलकर नीलकंठम् का ऐसा पतन होगा! उसके विचार कितने ऊंचे थे! हृदय कितना उदार था! लेकिन एकाएक ऐसा अधःपतन उफ्!' कहकर नरेंद्र ने आंखें नीची कर लीं।

स्वामी जी फिर एक उष्ण उच्छ्वास लेकर बोले—'अब तक समाज में धन की इज्जत रहेगी ऐसी दर्दनाक घटनाएं होती ही रहेंगी बेटा! न जाने कितने उच्च हृदय नवयुवा इस धन की लालच में नित्य प्रति गिरते जा रहे हैं, और गिरते रहेंगे। इसीं लिये आज समाज के व्यक्ति-व्यक्ति में धन की हवस इस कदर जड़ जमाती जा रही है कि सभी रातों रात धन्ना सेठ बनने के धुन में पागल बन गये हैं, पागल बनते जा रहे हैं। और इसी पागलपन का परिणाम आज हर जगह बेईमानी, घूंसखोरी चोरबाजारी और बङ्गाल की यह भुखमरी है बेटा!'—कहते कहते स्वामी जी का चेहरा उनके लिबास की तरह ही लाल हो उठा। बोले—'यह पागलपन एक भयानक छूत की बीमारी है बेटा! जब तक इस बीमारी की जड़ को हम निर्दयता पूर्वक उखाड़ कर फेंक नहीं देते, बंगाल जैसी भयानक भुखमरी की संभावना सदा बनी रहेगी नरेंद्र! उफ्! इस प्रकार की हृदयहीनता! मनुष्य इतना पशु बन सकता है!'—कहकर स्वामी जी चुप हो गये।

धर्मवीर नामक स्वयं सेवक एक ओर बैठा चुप चाप स्वामी जी की बातें सुन रहा था। काफी पढ़ा लिखा और समझदार था। उसने बड़े विनय के साथ स्वामी जी से पूछा—'आखिर इस बीमारी की जड़ क्या है स्वामी जी ?'

'इसकी जड़ है पूंजीवाद और वैयक्तिक संपत्ति की व्यवस्था।' स्वामी जी ने उसी प्रकार कड़े स्वर में जवाब दिया।

'इस बीमारी का इलाज किसी और तरीके से नहीं हो सकता ?'

'और किस तरीके से भैया ?'

'यही जैसे सुधार, और गाँधी जी की ट्रस्टीशिप (संरक्षण) पद्धति आदि के द्वारा।'

सुनकर स्वामी जी की देह में आग लग गयी। गर्म होकर बोले—'यही सब धोखा है भाई, निरा धोखा! यह है किसी जहरीले पेड़ को जड़ से न उखाड़ कर उसकी केवल टहनियों को काटने जैसा प्रयत्न, या उस विषैले वृक्ष को स्तुति या उपदेश के द्वारा निर्विष बनाने जैसी एक अजीब दुश्चेष्टा। क्या तुम इन धूर्तों से ट्रस्टीशिप के आदर्श पर चलने की आशा करते हो ? इतने दिनों के अनवरत उपदेशों के बावजूद कितने धनी सेठ अब तक इस आदर्श पर चलने को तैयार हैं ? हां, कुछेक धूर्त धनकुबेर अब ऊपर से अपने को ट्रस्टी या संरक्षक कहने अवश्य लग पड़े हैं। इन्हें दानी कर्ण और दानी वीर के रूप में प्रख्यात करने के लिये इनके कितने वेतन भोगी एजंट तपोमूर्ति धर्म मूर्ति बनकर जन मत को गुमराह भी कर रहे हैं। लेकिन जरा गहरी नजर से इनके कुकृत्यों को देखो, तो शरम को भी शरम आ जाय। इन सेठों की कई रिलीफ सोसाइटियाँ इस अकाल में सदावर्त बांट रही हैं, और दूसरी तरफ ये ही सेठ साहुकार अनाज की चोरबाजारी से करोड़ों कमा रहे हैं। और इस समय इसी चोरबाजारी का परिणाम यह बंगाल का अकाल है।

माना कि इसमें अंग्रेजों की भी शरारत है, लेकिन उनकी शरारत में मददगार कौन हैं ? किन लोगों ने अन्न की कीमत पांच से पचास कर दी ? बंगाल के इन पचास लाख निरीह प्राणियों की हत्या का पाप किसके शिर है ? क्या केवल अंग्रेजों के ही शिर ? कभी नहीं ?' कहकर स्वामी जी चुप हो गये।

धर्मवीर ने पुनः हाथ जोड़ बड़े मृदु स्वर में पूछा—'लेकिन अध्यात्मवाद के द्वारा इनके हृदय को सद्भावित करने की चेष्टा क्यों न की जाय ?'

स्वामी जी ने कहा—'खूब चेष्टा करो, तुम्हें रोकता कौन है भाई !' और कहकर बड़े जोर से ठठा कर हंस पड़े। फिर बोले—'किस को अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाने चले हो बच्चू ? इन सेठों को ? जो इन्हें अध्यात्मवाद की शिक्षा देने जायगा, उसे यह स्वय अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाने लग पड़ेंगे। धन कमाने की कला में निपुण होने के साथ ये इस वाद में भी परम प्रवीण बन जाते हैं। इसका जीता जागता उदाहरण मैं पेश करता हूँ। भारत के एक महा धन सेठ वर्षों से काशी वास कर रहे हैं। सेठ जी आज कल बानप्रस्थ आश्रम में हैं, क्योंकि लड़कों ने बड़ी योग्यता से उनके कारोबार को सम्भाल लिया है। अब वह दिन रात अध्यात्म चर्चा में मशगूल रहते हैं। प्रतिदिन काशी के बड़े विद्वानों को निमंत्रित कर अपने पास बुलाते हैं। सेठ जी प्रश्न करते हैं, और पंडितवृंद उत्तर देने की चेष्टा में लग पड़ते हैं। लेकिन आज तक किसी भी पंडित के उत्तर से सेठ जी संतुष्ट नहीं हो सके। उलटे उन विद्वानों को ही गूढ़ दुर्बोध अध्यात्मवादी उपदेश देने लग पड़ते हैं। सारी विद्वन्मंडली बड़े ध्यान से सेठ जी के उपदेश सुना करती है। अपने लम्बे उपदेश के अंत में सेठ जी प्रत्येक पँडित को दो दो चार चार रुपये देकर पुनः कुछेक जीवनोपयोगी उपदेश के साथ विदा कर देते हैं। और पंडित मंडली उन उपदेशामृतों का मंथन करती अपने घर लौट आती

है। फिर हम और तुम किस खेत की मूली हैं भाई ? किस विरते पर इन सेठों को उपदेश देने की धृष्टता करेंगे ? करने पर भी क्या सफल हो सकेंगे ?' कहकर पुनः बड़े जोर से स्वामी हंस पड़े और उनके साथ वहां की सारी मंडली भी हंस पड़ी।

'तो फिर ?'

'तो फिर यही कि इस धन-शाही व्यवस्था को नष्ट करने के प्रयत्न में लग पड़ो। गाँव गाँव में, नगर नगर में गरीब मजदूरों को जगाओ। वैसे तो आज कल तीन तीन चार चार हजार रुपया लेने वाले भी अपने को मजदूर कहते हैं। ऐसे मजदूरों को जगाने की जरूरत नहीं। यह लोग पहले ही जरूरत से ज्यादा जाग्रत् हैं। और इनसे सदा सावधान रहने की भी जरूरत है।

'केवल जगाने मात्र से ही क्या धन-शाही व्यवस्था खत्म हो जायगी ?'

'हां बेटे ! जाग्रत् और आत्मशाली श्रमिक-समूह के आगे यह धनशाही टिकेगी ही कितने दिन ?'

'और रचनात्मक कार्य ?'

'यह बहुत जरूरी है। यह जगाने का काम ही बहुत बड़ा रचनात्मक कार्य है बेटा ! बिना जाग्रत् आत्मा के रचनात्मक कार्य कैसा ? लेकिन एक बात। थोथे प्रोपेगैंडा या प्रचार से कुछ होने का नहीं ? उन दलितों में रहकर काम करना, उन्हें हर पहलू से परिचित कराना और अपने अधिकार के लिये मर मिटने की कला में निपुण बनाना ही वास्तविक रचनात्मक कार्य है बेटे ! और एक बात ! देश की ८५ फी सदी जनता गाँव में ही रहती है। इस लिये रचनात्मक कार्य का केंद्र गावों को ही बनाना जरूरी है।' फिर अपने झंडे की ओर इशारा करते हुए बोले—'देखते हो न यह झंडा ? यह मजदूरों का झंडा है। अब मैंने अपना लिबास भी इस झंडे की तरह लाल बना लिया है।

इस झंडे को हाथ में लेकर अब सर्वज्ञानन्द गांव गांव में जाकर गरीबों की आत्माओं को जगाने का संकल्प कर चुका है। बङ्गाल की इस भुखमरी ने मेरी आँखें खोल कर रख दी हैं!' कहकर एक लम्बी आह लेकर स्वामी जी चुप हो गये।

अब नरेंद्र बड़े विनय के साथ हाथ जोड़कर बोला—'लेकिन गुरुजी! माना कि मजदूरों को जगा कर मजदूर राज्य की स्थापना होगी, और अंत में सब की रोटी की समस्या हल हो जायगी। लेकिन इस रोटीवाद से ही तो समाज का कल्याण नहीं हो सकता? भर पेट रोटी खाकर, अच्छे कपड़े पहन कर, और अच्छे मकानों में रहकर भी तो मनुष्य पशु बन सकता है। फिर ऐसी स्थिति में रोटीवाद के आगे अध्यात्मावाद को चुटकी बजाकर उड़ा देना तो ठीक नहीं जंचता गुरूजी?'

स्वामी जी इस बार क्रुद्ध न होकर मुसकरा कर बोले—'इस शंका का समाधान बहुत जरूरी है बेटा! क्योंकि कुछेक बड़े बड़े मार्क्स पंथी नेता भी आज कल अध्यात्म-पंथी आचार्यों की शरण ढूंढने लगे हैं। लेकिन मुझे विश्वास है कि ऐसी वाहियात शंकाएं तुम्हारे अपने दिल में नहीं उठती होंगी। मुझे तरस आता है इन नेताओं पर! मैं पूछता हूँ इनसे—नेता जी क्या इसी बूते पर मार्क्सवाद के तत्त्व वेत्ता होने का दावा करते हैं आप? मैं प्रार्थना करूंगा कि अध्यात्मवाद के चक्कर में पड़कर सामाजिक क्रांति के साथ मखौल न कीजिये नेता जी! ऊंचे सम्मान और जिम्मेवारी के पद पर पहुंच कर ऐसी गलती न करें आप। हां, यदि अध्यात्मवाद की चाट लगनी शुरु हो गयी हो, तो कृपया राज नीति से अलग होकर आप कहीं किसी निराले में जाकर अध्यात्मवाद की एक दुकान खोल लें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि बिक्री खूब होगी। क्योंकि विज्ञापन आपका खूब हो चुका है।' कहते कहते स्वामी जी हंस पड़े उनके साथ दूसरे भी हंसने लगे।

स्वामी जी ने पुनः कहना आरंभ किया—'बेटा नरेंद्र ! सर्वज्ञानन्द सदा से किसी चीज को सीधी आँखों से देखने और सीधी भाषा में कहने का आदी है। वह आज कल के तथाकथित सभ्यों की भाषा से अनभिज्ञ है। भई, बङ्गाल के इन भूखे नर कंगालों और दम तोड़ कर मरती मानवता को देखकर मुझे तो अध्यात्मवाद की सिफारिश करने वालों पर सचमुच तरस आता है। और आखिर यह अध्यात्मवाद है क्या बला ? मनुष्य को मनुष्य बनाना, सभ्य और शिष्ट बनाना, आत्मवत् दूसरे के दुख सुख का ख्याल रखना यही तो अध्यात्मवाद का तत्त्व है। और इस तत्त्व की उपयोगिता और अवश्यकता को कोई रोटीवादी भी अस्वीकार नहीं करता। लेकिन वह पहले रोटीवाद को रखता है बाद में किसी और वाद को। हाँ, रोटीवादी अध्यात्मवादी की उन हरकतों से कभी सहमत नहीं हो सकता जिनके द्वारा वह दृश्य जगत की उपेक्षा कर किसी अदृश्य अनोखे जगत की बातें करके गरीबों की चेतना पर और दलितों की खेलती आंखों में धूल झोंकने की चेष्टा करता हो। रोटीवाद हर वाद की आधार-शिला है बेटे ! कहावत है—'भीतर तब पीतर'--यानी पहले पेट, तब देवता-पितर। तुम क्या सोचते हो कि रोटीवाद का नारा लगाने वाले पेट भरे नर पशुओं का समाज कायम करना चाहते हैं ? छिः ! कितनी बेशर्मी से सेठों के दलाल आजकल प्रचार कर रहे हैं कि मार्क्स रोटी का आचार्य था, और मार्क्सवादी आदर्श पर चलने वाला रूस आज पेट भरे पशुओं से भरा एक देश है ! मार्क्सवाद के चक्के में पड़कर उसकी आत्मा घिस और पिस गई है। आत्मस्वातंत्र्य का वहाँ नामोनिशान नहीं है। लेकिन.....'—कहते कहते स्वामी जी की भाषा एकाएक गर्म बन गयी— 'लेकिन इन पाखंडी प्रचारकों से पूछो कि आज हिटलरी गुंडा फौज को कौन पीछे खदेड़ रहा है ? कौन आज संसार के दलितों और पराधीनों के दिलों में आशा

आस्था का संचार कर रहा है ? क्या इन अध्यात्मवादी देशों की सेनाएं, जो हर जगह हर मोर्चे पर मार खाती पीछे को भाग रहीं हैं ? बेटा ! दुश्मन की चोट पर चोट खाकर भी पराजय न स्वीकार करना, इंच इंच भूमि के लिय गहरी कीमत चुकाते हुए दुश्मन को खदेड़ना, दुनिया के किस अध्यात्मवादी देश ने आत्म-शक्ति, आत्म-त्याग और आत्माभिमान का ऐसा ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है ? बात तो दर असल यह है कि मार्क्सवादी चक्के में घिस और पिस कर सदियों से सोवियत संघ की कुंठित आत्मा आज अत्यंत तेज और चमकीली बन गयी है, जिसे देख कर दुनिया के धन सेठों की आत्मा अब काँप उठी है। इसी से वे और उनके एजेंट ऐसी बातें कहकर संसार के दलितों को क्रांति के पथ पर अग्रसर होने से कुंठित करना चाहते हैं। बेटा ! इन बनियों, बनियों के इन एजेंटों और गुमराह नेताओं से सावधान !'—कहकर स्वामी जी चुप हो गये।

लाला किशनचन्द अब तक चुप थे। हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से स्वामी जी से बोले—'आपकी बातें बड़ी अच्छी हैं, बड़ी ज्ञानदायक हैं। लेकिन आपकी बातों से लगता तो ऐसा है कि आप शायद भगवान को नहीं मानते।'

स्वामी जी ने चट जवाब दिया—'न मानने से हरज क्या है, नुकसान क्या है ? और जो चीज नहीं है उसे मानूं ही क्यों ?'

सुनकर लाला जी अवाक हो गये। शिर खुजलाने लगे। फिर कुछ डरते डरते से बोले, क्योंकि स्वामी जी के तुनक मिजाजी से वे परिचित हो चुके थे—'लेकिन दुनिया तो उन्हें मानती है।'

स्वामी जी उनकी नकल उतारते हुए बोले—'दुनिया उन्हें मानती है ! दुनिया मानती है तो मैं क्या करूं ? दुनिया बेवकूफी करे तो उसके पीछे क्या मैं भी बेवकूफ बन जाऊं ? भेड़िया-धसान है महाशय जी, भेड़िया धसान है। भगवान कल्पना के

पुत्र के सिवा और कुछ नहीं। और सच पूछिये तो इस भगवान की कल्पना ने दुनिया को ऊपर उठाने के बजाय और नीचे धकेल दिया है। धूर्तों और मक्कारों को अपने किये कुकर्म पर पर्दा डालने के लिये भगवान एक बड़ा सहारा साबित हो रहा है। देखते नहीं ? अभी दो ही चार दिन पहले की तो बात है ! भारत मंत्री एमरी ने कितनी बेशर्मी और कमीनेपन के साथ बृटिश जनता के सामने उद्घोष किया कि बङ्गाल का अकाल भगवान के कोप का परिणाम है। न इसमें हमारा कोई हाथ है न इसमें हमारी कोई जिम्मेदारी है।'

लालाजी को फिर कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। बेचारे चुप हो गये।

अब नरेंद्र को भी कुछ पूछने की इच्छा नहीं हुई। क्योंकि इस प्रकार शंकाएं और इस प्रकार के समाधान अक्सर अपने आप उसके हृदय में उठा करते। उसे अब अपने आप पर पूरा विश्वास हो गया। हाथ जोड़ लाला किशनचन्द को उद्देश करके बोला—'मेरे जीवन के सबसे बड़े गुरु ये ही हैं चाचा जी ! इन्हों ने ही मुझे साधु जीवन के पाखंड पूर्ण वातावरण से अलग होने और संसार को वस्तुवादी दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा दी। अध्ययन के लिये उत्साहित किया और मैं बंबई से चलकर लाहौर आया, और तुम्हारे जैसे पिता को प्राप्त किया !'—कहते कहते नरेंद्र की आंखें गीली हो उठीं।

लाला जी भी आर्द्र हो उठे। बड़े विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर स्वामी जी से बोले—'मैं आपका उपकार कभी न भूलूंगा स्वामीजी। आप मेरे नरेंद्र के गुरु हैं, साथ ही इस बूढ़े के भी। अब तक मैं अंधेरे में था। बङ्गाल के अकाल से कुछ कुछ मेरी आँखें खुलनी शुरू हो गयी थीं, लेकिन आप ने आज पूरी तरह खोल दीं।' कहकर लाला जी स्वामी जी के पैर छूने आगे बढ़े,

किन्तु स्वामीजी चौंक कर पीछे हटते हुए बोले—'मैं बूढ़ों को पैर नहीं छूने देता महाशयजी !' और कहकर हंस पड़े।

गार्गी अब तक स्वामी जी की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। अब उसे भी कुछ पूछने की इच्छा हुई। अत्सुकता रोक न सकी। हाथ जोड़ कर बोली-'इस मजदूर राज्य के आँदोलन में स्त्रियों का क्या स्थान है गुरु जी ?'

स्वामी जी ने चट जवाब दिया—'पुरुषों के बिल्कुल बराबर। मेरा तो पक्का विश्वास है बहन, कि जब तक स्त्रियां भी पूरी संख्या में पूरे उत्साह के साथ इस आँदोलन में नहीं उतरतीं, यह आंदोलन सफल न होगा। इस लिये महिलाओं का जागरण उतना ही जरूरी है जितना पुरुषों का। लेकिन एक बात बहन, हमें महामाया देवी जैसी जाग्रत महिलाओं की जरूरत नहीं, जो दिन भर बनाव सिंगार में ही मस्त रहती है।'

स्वामी जी की बात पर सभी हंस पड़े। गार्गी कुछ लजा सी गयी।

नरेंद्र ने कहा—'लेकिन गुरु जी ! वह तो देश की एक बड़ी लीडर है। अपने को सोशलिस्ट भी कहती है।'

सुनकर स्वामी जी का पारा गर्म हो उठा। बोले—'ऐसी औरतें सोशलिज्म (समाजवाद) को भी भ्रष्ट कर देंगी, समाज को तो भ्रष्ट कर ही रही हैं। तुम लोगों ने देखा नहीं ? अभी दो ही तीन घण्टे पहले तो मदारीपुर के कैंपों को देखने आयी थी।'

नरेंद्र ने कहा—'आयी तो थी।'

स्वामीजी—'तो देखा नहीं उसके बनाव सिंगार को ? कितनी नीचता और बेशर्मी है बेटे ! मानवता मर रही है। पीड़ितों की कराहों से यहाँ का आकाश विक्षुब्ध है, लेकिन तब भी वह अपना बनाव सिंगार नहीं भूली। मानो उसके रूप और शृंगार को देख कर इन भूखों का पेट भर जायगा।

एक दूसरा स्वयं सेवक, जो अब तक चुप था बोला—'लेकिन बोलती बड़ा अच्छा है स्वामी जी ! क्या अंग्रेजी, क्या हिंदुस्तानी, और क्या बङ्गला, बोलने में कमाल कर देती है ! सभी मंत्रमुग्ध की तरह उसका भाषण सुनते हैं।'

स्वामी जी ने चिढ़ कर कहा—'बोलते तो मदारी भी बड़ा अच्छा हैं। लेकिन इस से क्या ? इन रंगे लीडरों के पास सिवा भाषणों और वक्तव्यों के और है ही क्या ? 'इस्लाम खतरे में है' का दिन रात नारा लगाने वाले जिन्ना और मुस्लिम लीगियों को देख लो ! इस अकाल में हिंदुओं से अधिक मुसलमान मरे हैं। बंगाल का शासन भी मुसलम लीगियों के हाथ में है। लेकिन मुसलमानों के मसीहा जनाब जिन्ना को जरा भी नहीं सूझा कि भूख से दम तोड़ कर मरते मुसलमानों के आगे अपना शक्ल भी तो दिखा जाएं। उन अभागों से स्वयं सहानुभूति के दो शब्द भी तो कह जाएं। लेकिन नहीं। इस काम के लिये फुर्सत कहाँ ! कितने स्वार्थी, नीच और हृदयहीन होते हैं येह पोलिटीशियन—ये राजनीतिज्ञ।' कहकर एक गर्म आह भर कर स्वामीजी चुप हो गये।

नरेंद्र ने कहा—'बात तो ठीक है गुरुजी ! बड़े स्वार्थी और महत्वाकांक्षी होते हैं ये। जनता की भलाई से भी अधिक इन्हें अपनी भलाई की, यानी अपनी लीडरी की फिक्र होती है।'

स्वामी जी और कुछ न कहकर गार्गी को उद्देश करके बोले—'एक गिलास पानी तो पिलाओ ! बड़े जोर की प्यास लगी है।'

गार्गी चट उठ कर अंदर गयी। एक मिनट बाद ही एक तश्तरी में कुछ रखके बड़े प्रेम और श्रद्धा से एक गिलास पानी के साथ स्वामी जी के आगे उसने रख दिया। स्वामी जी जरा सी मिठाई मुंह में रख कर पानी पी 'नमोनारायण' कहकर

किसी को और कुछ कहने या पूछने का मौका दिये बिना ही लंबे डेग बढ़ाते वहां से चलते बने।

: ३५ :

धीरे धीरे अकाल का कोप शांत हुआ। धान की फसल बड़ी अच्छी आयी। भूखों के दिलों में आशा का संचार हुआ। पचास लाख से अधिक बंगाली गरीब भूख की भेंट हो चुके थे। मजदूरों की बड़ी कमी पड़ गयी। जमीनदार और धनी किसान मजदूरों की खोज में इधर उधर भटकने लगे। लोगों को भय होने लगा कि फसल कहीं खेत में ही न सड़ जाय। लोग कैंपों में आये। अब मजदूरों की खुशामद करने लगे। बहुतेरे कैंपों ने अपना काम बंद कर दिया। हार कर इन भूखों का कारवाँ पुनः गांवों की ओर रवाना होने लगा।

मदारीपुर का पंजाब कैंप भी खाली होने लगा। लेकिन वहां से भूखों को जबर्दस्ती निकाला नहीं गया। लाला जी, नरेंद्र और गार्गी के संपर्क से इस कैंप के शरणार्थी काफी समझदार बन गये थे। अन्य कैंपों के उखड़ने पर बिना कहे ये लोग स्वयं पंजाब कैंप खाली करने और अपने अपने गांव की ओर रवाना होने लगे। इस कैंप के स्वयंसेवकों को भी घर छोड़े बहुत दिन हो गये थे, अतः अब वे भी लाला जी से आज्ञा लेकर अपने घरों को चलते बने। अब रह गये सिर्फ कुछेक शरणार्थी और लाला जी खुद तीनों जने। कुछेक बंगाली महिला स्वयंसेवकाएं उनकी मदद अब भी कर रही थीं।

अब तक गार्गी और नरेंद्र को सांस लेने तक की फुर्सत न थी। मदारी पुर से बाहर देहात देखने को उनका जी ललक रहा था। आज तीसरे पहर फर्सत पा लाला जी से आज्ञा लेकर दोनों

जने गंगा के किनारे किनारे पूरब की ओर चल पड़े। नरेंद्र ने और किसी को साथ नहीं लिया।

खर स्रोता पद्मा बड़े बेग से दौड़ी जा रही थी। सागर से मिलने की अधीरता उसके अधीर प्रवाहों पर नाच रही थी। और समुद्र आ भी तो गया था अति निकट! प्रियतमा से मिलने की उतावली में वह भी बाहें उछाल उछाल कर अपने तट प्रदेशों को भिगो रहा था। पद्मा के उभय तट पर मीलों लंबे धान के लहलहाते खेत मानो क्षितिज के छोर को छू रहे थे। अन्न-समृद्धि से झुके धान के बाल अर्ध परिधि की भाँति प्रतीत हो रहे थे। उनकी हरियाली में पीलापन आने लगा था, जो फसल के तैयार होने की सूचना दे रहा था, किसानों को आगाह कर रहा था। धान के रंग-बरंगी भेदों ने समृद्धि सौंदर्य में चार चांद लगा दिये थे। और गँगा के तट से कुछ हट कर चतुर्दिक फैले बंगाल के गाँव, हरे भरे नारियल निकुंजों से घिरे हुए। दूर से इस अपरूप रूप को निहारते जाइये, आंखें नहीं थकेंगी, दिल नहीं थकेगा।

इस प्रकार इस सुजला-सुफला और शस्य-श्यामला बंग-भूमि की शोभा निरखते दोनों जने दो मील दूर आ गये। कुछ थकावट सी लगी। दोनों जने बैठ गये। यह समीपवर्ती गांव वालों के नहाने धोने का घाट था। थकावट के कारण गार्गी के कपोलों पर असंख्य कण आ गये थे। और अस्तोन्मुख सूर्य की ईषत् रक्त किरणों के सस्पर्श से वे मोती के दाने बन गये थे, गार्गी के स्वभाव-सुर्ख चेहरे पर अ ार के दाने बन गये थे।

एकाएक नरेंद्र की दृष्टि गार्गी के चेहरे पर जा पड़ी, चट लौट आयी, फिर गयी और फिर लौटी। नरेंद्र कुछेक क्षण इस खींचातानी में लगा रहा, पर अंत में दृष्टि की बागडोर सम्हालने में असफल रहा। आखिर गार्गी के चेहरे पर जाकर वह गड़ ही गयी। नरेंद्र की यह दशा देख गार्गी की कनपट्टी तक लाल

हो उठी। उसकी निगाहें नीची हो गयीं। पैरों के अंगूठों से मिट्टी कुरेदने लगी। पास में पड़े एक तिनके को उठाकर खंड खंड करने लगी। और नरेंद्र के नेत्र आज जी भर कर इस त्रिलोक-सुन्दरी के सौंदर्य का पान करने लगे।

गार्गी की छाती धड़कने लगी। नरेंद्र की आज की दशा पर उसे आश्चर्य हो रहा था। मन ही मन सोच रही थी, आज इन्हें हो क्या गया है ? दस साल से इनका मेरा साथ है। कितनी बार मुझे देखा है, लेकिन इनकी आज की इस चितवन से अतीत की उन चितवनों का जरा भी मेल नहीं, जरा भी साम्य नहीं। आखिर मेरी साधना सफल तो नहीं हो गयी ? वरदान का समय निकट तो नहीं आ गया ? सौभाग्य देवता प्रसन्न तो नहीं हो उठे ?

गार्गी अपने तईं इस प्रकार के अनेक प्रश्न कर रही थी, सोच रही थी, पैरों के अंगूठे से धरती कुरेद रही थी, तिनके तोड़ रही थी, और रह रह कर छिपी तिरछी आँखों से नरेंद्र को निहार रही थी।

गार्गी विधवा थी। जिस साल नरेंद्र लाला किशनचन्द के घर प्रविष्ट हुआ, उसी साल कुछ दिन पहले वह विधवा बनी थी। बल्कि विधवा बने एक ही महीना हुआ था। लाला जी आर्य समाजी विचार के थे। विधवा विवाह को जायज समझते थे। लेकिन समाज तो अभी आर्यसमाजी नहीं बना था। अतः इच्छा रहते भी उसे कार्यान्वित न कर सके। और अपनी एक मात्र सुरूपा कन्या को किसी ऐरे गैरे के हाथ सौंप भी तो नहीं सकते थे ! किंतु जब नरेंद्र ने उनके घर में प्रवेश किया, धीरे धीरे उनका हृदय उसकी ओर आकृष्ट होने लगा। और ऐसा था ही कौन जो उसकी ओर आकृष्ट न होता ? नरेंद्र को वह पुत्र से बढ़कर प्यार करने लगे, किंतु इस प्यार में भी कुछ छिपा स्वार्थ था। किंतु नरेंद्र से खुलकर अपने मनोभाव कभी व्यक्त नहीं कर पाते। साहस नहीं होता। गार्गी अपने पिता की

इच्छा जानती थी। वह स्वयं भी नरेंद्र की ओर आकृष्ट थी। नरेंद्र से वह उम्र में साल भर छोटी थी। जोड़ी थी बड़ी अच्छी। लाला जी जब कभी दोनों को पति-पत्नी के रूप में कल्पित करते, हृदय उनका भर उठता। कल्पना के पंख पर सवार हो घण्टों आनंद मयी दुनिया की सैर करते। गार्गी ने नरेंद्र से ही संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। वह मन ही मन नरेंद्र को बड़ा भाई, गुरु और बहुत कुछ समझती थी। और बहुत कुछ समझ कर भी दोनों का बाहरी व्यवहार बहन भाई के सिवा और कुछ न था।

स्वामी सर्वज्ञानंद की अंतिम मुलाकात के बाद से नरेंद्र निरंतर अपने भावी कार्यक्रम पर सोचता रहा। इधर उसकी दृष्टि भी बहुत साफ हो गयी। पिछली रात को बिछौने पर पड़ा पड़ा वह सोच रहा था। एकाएक अपनी जन्म-धरती हरिहरपुर की मिट्टी याद आ गयी। उसने सोचा, क्यों न अपने गांव में ही अपना काम शुरू कर दूं ? वहाँ मुझे अनेक सुविधाएं मिल सकती हैं। एक विशाल संपत्ति का हिस्सेदार हूँ मैं। उसके सहारे अपने स्वप्न को मूर्त रूप देने में बड़ी सुविधा होगी।.....फिर उसने सोचा, गाँव छोड़े दस साल से अधिक हो गये। पता नहीं क्या हाल होगा वहां का ? माँ नहीं रही। पिता जी किस हाल में होंगे ? बहिन जी कैसी होंगी ?.....एक एक कर सारे परिवार का चित्र उसकी आँखों के आगे चलचित्र की तरह चलने लगा। दिल में ममता और मोह का स्रोत उमड़ पड़ा। पलकें गीली हो उठीं। अपनी जन्मभूमि की भूली हुई स्मृति एकाएक सजीव हो उठी। नरेंद्र का हृदय अधीर हो उठा। हरिहरपुर जाने का निश्चय उसने कर लिया।

आज सवेरे कुछ देर से उसकी नींद खुली थी। सबसे पहले उसे गार्गी याद आयी। अब तक उसके हृदय के किसी कोने में अनजाने गार्गी के प्रति उसका आकर्षण तिलतिल करके एकत्र हो

रहा था। सो अब सहसा अलगाव की संभावना ने उस पुंजीभूत आकर्षण को खरोंच दिया। जिस प्रकार नदी के कच्चे बांध में जरा सा छेद हो जाने पर कुछ ही क्षण बाद बांध को तोड़ता और ढाहती प्रबल जल-राशि बड़े वेग से निकल कर कूल-किनारे को आप्लावित कर छोड़ती है, उसी प्रकार उसके हृदय का एकत्रीभूत आकर्षण सहस्रधार होकर फूट पड़ा, और उसके समस्त हृदय को आप्लावित और तरंगित करने लगा। नरेंद्र को इतने दिन बाद आज पता चला कि उसका मन अवश्य कहीं बंधा हुआ है। और उन मन को बांधने वाली सिवा गार्गी के और हो ही कौन सकती है ?

धड़कते दिल से बगल में बैठी गार्गी के कमनीय कोमल हाथ अपने हाथ में लेते हुए लड़खड़ाते स्वर में वह बोला—'आज तुम से एक बात करनी है गार्गी।'

नरेंद्र के कर-स्पर्श करते ही गार्गी के दिल की धड़कन और बढ़ गयी। इतनी बढ़ गयी कि वह अवश होने लगी। सम्हलना कठिन हो गया। लेकिन फिर भी बड़ी कठिनाई से कुछ सम्हल कर एक बार चारों ओर उसने अपने चंचल नेत्र दौड़ा कर देखा कोई है तो नहीं। फिर गले को खखास कर आहिस्ते से वह बोली—'कौन सी बात नरेन भाई ?'

'यही कि अब मैं तुम लोगों से विदा होना चाहता हूँ।'

गार्गी चौंक उठी। उसके दिल की धड़कन, अंगों की अवशता एकाएक न जाने कहाँ बिला गई। वह सम्हल कर बैठ गयी और बोली—'इसका मतलब ?'

'इसका मतलब यही कि मैं अब अपने गांव को जाना चाहता हूँ।'

गार्गी ने फिर वही प्रश्न किया—'इसका मतलब ?'

नरेन्द्र जरा रुक गया। कुछ सोचता रहा। फिर एक लम्बी साँस लेकर बोला—'इसका मतलब यही है गार्गी, कि मैं वहाँ

जाकर अपने आदर्श के अनुसार काम शुरू करूंगा। अपने विचारों को ठोस रूप देने का प्रयत्न करूंगा।'

गार्गी का हृदय सन्न हो गया था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या पूछे, क्या कहे। वह पुनः यंत्रचालित पुतली की भांति बोली—'इसका मतलब ?'

जवाब में उसके मुंह से बार बार वही एक सप्ताक्षरी सुनकर नरेन्द्र ऊब गया। उसे सारी बात स्पष्ट करके बताने को विवश होना पड़ा। खखास कर गला साफ कर वह बोला—'गार्गी ! अब तक मैं तुम लोगों से अपना पूरा परिचय छिपाये रहा। परिचय देने की आवश्यकता भी न थी। तुम लोग शायद अब तक यही समझ रहे हो कि मैं किसी समय साधू था, भगवा-पोश था, और बाद में तुम्हारे संपर्क में आकर सफेदपोश बन गया। संसार में सिवा तुम लोगों के अपना कहने को मेरा कोई नहीं। बात सही भी है। तुम लोगों से जो प्रेम और प्यार मुझे मिला, वैसा जीवन में मिला भी बहुत कम। दो माताएँ थीं, एक मां और दूसरी धर्म माँ। दोनों ही बड़ा प्यार करतीं। लेकिन दोनों मुझे छोड़ चल बसीं।' — कहते-कहते गला उसका भर आया; पलकें गीली हो उठीं।

धोती के छोर से आँखें पोंछकर पुनः वह बोला — 'अपनी माँ की जलती चिता की प्रदक्षिणा कर सब की आँख बचा कर मैं घने अंधेरे में छिप गया। जननी की गोद छिन गयी। जन्म भूमि काट खाने लगी। मैं अनंत की ओर चल पड़ा। पिता मेरे लाखों के मालिक हैं। पता नहीं अब इस लोक में हैं या ..... एक बड़ा भाई, एक बड़ी बहन .... बहन मुझे माँ की तरह प्यार करतीं। दस साल से अधिक हो गये। मैं सब कुछ भूल गया था। अब एकाएक सब याद आ गया है। जन्म धरती का मोह उमड़ पड़ा है।

'गार्गी ! तुम तो जानती ही हो मेरे जीवन का स्वप्न। पढ़-लिखकर तैयार हो गया हूँ। तुम्हारे पिता जी ने, जो मेरे धर्मपिता हैं, जिन्हें पिता से बढ़कर प्रेम और सम्मान करता हूँ, पढ़ा-लिखा कर मुझे मनुष्य बना दिया। मनुष्य बनकर अब मनुष्य की सेवा में लग जाना चाहता हूँ गार्गी ! अपने स्वप्न को साकार होते देखना चाहता हूँ गार्गी ! और इसी लिये अपने गांव को जाना चाहता हूँ।'—कहकर वह चुप हो गया।

अब तक गार्गी की आंखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी। नरेन्द्र को चुप होते देख आँचल के छोर से बार बार आँखें पोंछ कर बड़ी कठिनाई से अश्रु-रुद्ध स्वर में वह बोली—'मगर क्या लाहौर में रहकर तुम्हारा स्वप्न पूरा नहीं होगा ? अपने आदर्श को ठोस रूप न दे सकोगे ? क्या हम लोग बाधक न बनकर साधक नहीं बन सकते ? चाचा जी का बुढ़ापा बरबाद कर दोगे ? मेरे जीवन को उजाड़ बना दोगे ? तुम इतने निष्ठुर हो ? अगर मैं पहले जानता....." कहता कहती वह जोर से रो पड़ी और नरेन्द्र के पैरों पर गिर कर फफक-फफक कर रोने लगी।

नरेन्द्र ने पैरों पर पड़ी गार्गी के मस्तक को बड़े प्रेम से उठा कर अपनी गोद में रख लिया। और आँखों में आंसू भर कर बोला—"क्या तुम मुझे इतना अधम समझ गयी, कि मैं चाचाजी का बुढ़ापा बरबाद कर दूंगा, तुम्हारा जीवन उजाड़ बना दूंगा ?"

गार्गी उसकी गोद में मुंह छिपाये उसी प्रकार रुंधे स्वर में बोली—"तुम्हारे इस निश्चय का और मतलब ही क्या हो सकता है ?"

'नहीं नहीं, तुम मतलब समझने में भूल कर गयीं गार्गी !'

"तो समझा कर बताओ।"

नरेन्द्रने अब अति धीर और मृदु स्वर में कहना आरम्भ किया—'मुझे आज पता चला है गार्गी, कि जीवन में जीवन-संगिनी का क्या मूल्य है। मैं अब तक स्त्रियों के प्रति उदासीन था। मैं यह समझे बैठा था, कि मैं तुमसे भी उदासीन हूँ। लेकिन मेरा मोह भंग हो गया। जब से तुमसे अलग होने का निश्चय किया है, तुम्हारा मूल्य समझने लगा हूँ। मैं समझ गया हूँ, मुझे आज विश्वास हो गया है कि मेरा जीवन तुम्हारे बिना उजाड़ बन जायगा, निष्प्राण बन जायगा। और मुझे सदेह है, कि शायद तुम्हारे बिना मैं अपने उद्देश्य और आदर्श में सफल भी नहीं हो पाऊंगा गार्गी! शायद मेरा स्वप्न स्वप्न ही रह जायगा। और इसी लिये तो आज तुम्हें इतनी दूर एकांत में खींच ले आया हूँ, अपने दिल को तुम्हारे सामने खोलकर रखने के लिये।'

गार्गी नरेंद्र की गोद में अब भी मुँह छिपाये पड़ी थी। नरेंद्र की बातें उसके एकाएक मुरझाये दिलपर अमृत के सेंक का काम कर रही थीं। उसकी क्षण भर पहले की सारी व्यथा एकाएक विनष्ट होकर उसका सारा अंतःकरण प्रफुल्ल हो उठा। वह आनंद-विभोर होकर आंखें बंद किये कुछ देर पड़ी रही। इस सौभाग्य से वंचित होने को उसका जी कर नहीं रहा था। फिर उसकी आँखें खुलीं। खुली आंखें नरेंद्र के मुख पर गड़ा कर धीरे से वह बोली—'सच कह रहे हो? मैं सपना तो नहीं देख रही?'

घड़ी भर रात बीत गयी थी। त्रयोदशी के चाँद की धवल चाँदनी चतुर्दिक अपनी शीतल किरणें बखेर रही थी। पद्मा की अविराम खेलती जलधारा पर चांदनी मानो नाच रही थी। उस नाचने में कहीं विच्छेद नहीं, कहीं टूट नहीं। मानो पद्मा के वक्ष पर रुपहली पन्नियाँ झिल-मिल कर रही थीं। अध-पीले व अध-हरे खेतों पर सफेद किरणों की जालियाँ अद्भुत बहुरंगी पन पैदा कर रही थीं। हरे नारियल-निकुंजों से घिरे गांव दूर से छोटे-छोटे जंगलों की भ्रांति पैदा कर रहे थे। गार्गी की आँखों

से आनन्द के आँसू मोती बन कर लुढ़क रहे थे। शीत-रश्मि की शीत-रश्मियां उसके चेहरे पर पड़ कर उसकी अपरूपता बढ़ा रही थीं। और नरेंद्र के नेत्र जी भरकर इस रूप-रस का पान कर रहे थे।

गार्गी के प्रश्न के उत्तर में नरेंद्र उसके रक्तिम अधरों को चूमकर मुस्कराते हुए बोला —'हां मेरी प्यारी ! सच कह रहा हूँ। सपना नहीं, सच है। अब तो विश्वास करो !' — कहकर उसके अधर, कपोल और नेत्र आदि अंगों पर चुम्बन जड़ना आरंभ कर दिया।

गार्गी का अंग-अंग रोमाँचित हो उठा। उसने रोकने की चेष्टा न की। कुछ देर इस प्रकार रोमांस में डूबी रहने के बाद एकाएक वह चौंककर बोली—'अब छोड़िये ! चलिये ! बहुत देर हो गयी ! न जाने चाचा जी क्या सोच रहे होंगे।'

नरेंद्र मानो तंद्रा से जगा। तड़फड़ उठकर खड़ा होता हुआ बोला—'चलो !'—और कहकर चल पड़ा।

कुछ देर चुप चाप चलती रहने के बाद गार्गी बोली —'हाँ, तो तुमने क्या निश्चय किया ?'

'जो बता चुका हूँ वही।'

'तुम्हारा निश्चय तो हम लोगों को छोड़कर अपने गाँव जाने का था न ?'

'गाँव जाने का निश्चय अब भी कायम है, लेकिन तुम लोगों को छोड़ूँगा नहीं।'

'तो हमें भी वहीं ले चलोगे ?'

'अभी शायद न ले जा सकूँ, लेकिन बिना ले जाये काम भी तो नहीं चलेगा ! तुम्हारे बिना मैं रह भी तो नहीं सकता।'

गार्गी नरेंद्र के मुँह की ओर ताककर बोली—'दिल से कह रहे हो ?'

'नरेन्द्र को कभी झूठ बोलते कभी सुना भी है तुमने ? पद्मा के तट पर मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है। इस के साक्षी हैं आकाश के तारे, और त्रयोदशी का चंद्रमा ! साक्षी हैं माँ पद्मा और बंगाल की यह शस्य-श्यामला भूमि ! साक्षी हैं दिशाएँ, और उपदिशाएँ, तथा नरेन्द्र और गार्गी के अंतरू में छिपे अंतर्यामी ! क्या अब भी तुम्हें विश्वास नहीं ?'

गार्गी कुछ न बोली। चुपचाप चलने लगी। हृदय उसका अनंत में उछलने लगा। चलते-चलते दोनों जने एक समय कैंप में आ पहुंचे, जहाँ किशनचन्द जी बड़ी उत्सुकता और व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

लाला जी मीठी फटकार के स्वर में बोले—'कहाँ इतनी देर कर दी तुम लोगों ने ? मैं फिक्र के मारे मरा जा रहा था। जाड़े का दिन है। पास में कपड़े कम थे। कहीं निमोनिया हो जाय तब ?'

लाला जी के कहने के ढंगपर नरेंद्र को हंसी आ गयी। हंसता हुआ बोला —'यह बंगाल की सर्दी है चाचा जी, पंजाब की नहीं, जो निमोनिया हो जायगा। बंगाल के हरे भरे खेतों को देखते हम काफी दूर चले गये थे। कवि ने क्या ही ठीक कहा है चाचा जी —'सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां मातरं वन्दे'।'

लाला जी फिर मीठे फटकार के स्वर में बोले — 'अच्छा अच्छा कविता पीछे पढ़ना। पहले जाके खाना खा लो। सब लोग तुम्हारे इंतज़ार में बैठे हैं।

भोजन के बाद नरेन्द्र और गार्गी लाला जी के पास पहुंचे। नरेन्द्र के मुख से उसके नये संकल्प की बात सुनकर लालाजी कुछ देर हतप्रभ होकर उसके मुंह की ओर ताकते रहे। फिर एकाएक बोल पड़े—"इसके मानी ? इसके मानी तो यही हैं न, कि तुम हमें छोड़ना चाहते हो ! मेरा बुढ़ापा बरबाद करना

चाहते हो ! क्या इसी लिये तुम्हें पाल-पोस कर....." कहते-कहते लाला जी रो पड़े।

नरेंद्र ने चट उन के चरण छू कर रोते से स्वर में कहना शुरू किया— 'नहीं चाचा जी, मैं इतना बड़ा कृतघ्न नहीं हूँ कि आपको छोड़ कर चला जाऊं ! आपका बुढ़ापा बरबाद कर दूँ ! नहीं नहीं, नरेन्द्र कभी आपको छोड़ नहीं सकता। मरते दम तक नहीं ! और बगैर आपकी आज्ञा के कुछ कर भी नहीं सकता। मैं ने तो सिर्फ अपने विचार आपके आगे रखे हैं। अपनी लाखों की जायदाद क्यों किसी स्वार्थी के हाथ छोड़ दूँ ? क्यों न उस जायदाद से गाँव के गरीबों को ऊपर उठाऊं ? क्यों न उन दलितों के आगे एक नयी दुनिया की जीती-जागती तस्वीर खींचकर रख दूँ ? क्यों न अपने स्वप्न को साकार बना दूँ ? और अपने आदर्श को ठोस रूप में परिणत कर दूँ ?'—कहकर नरेन्द्र चुप हो गया।

नरेन्द्र की बात सुनकर लालाजी को कुछ धीरज बंधा। आँखें पोंछकर वे बोले—'अपनी एक लाख की जायदाद तो लाहौर में भी है। अपना एक बड़ा मकान है, जमीन है। उनके सहारे भी तो तुम अपने विचारों को असली रूप दे सकते हो ? गरीबों की सेवा कर सकते हो ? मैं तुम्हारा हाथ तो कभी रोकूंगा नहीं। मेरा जो कुछ है वह सब तुम्हारा ही तो है ?'

नरेन्द्र ने लालाजी के फिर चरण छुए। बोला—"इसमें मुझे रंच मात्र भी सन्देह नहीं चाचाजी। मगर गाँव के गरीबों को जगाने का काम गांव में ही रहकर पूरा किया जा सकता है, उन गरीबों में रहकर, उन गरीबों में मिलकर। आज यदि गाँव के गरीब जगे होते, तो इस अकाल में वे कीड़े-फतिंगों की मौत नहीं मरे होते चाचाजी ! या तो सुख-चैन से होते, या मारने वालों को मार कर मरे होते।" — कहते कहते नरेन्द्र की वाणी में क्रोध की आग भभक उठी।

"कहना तो तुम्हारा ठीक है बेटा! अच्छा, जो ठीक समझो करो, मैं रोकूंगा नहीं।" कुछेक क्षण चुप रहने के बाद फिर बोले — "लेकिन एक बात। अगर हम सब भी साथ चलें तो कैसा रहे?"

नरेन्द्र सहसा कोई जवाब न दे सका। चुपचाप कुछेक मिनट सोचने के बाद बोला — "मगर चाचाजी! आप लोगों का एकाएक वहाँ जाना ठीक तो नहीं जँचता।"

"अगर-मगर की बात मैं नहीं जानता। मैं तुम्हें अकेले वहां किसी भी तरह जाने नहीं दूंगा।"

लालाजी की बात सुनकर नरेंद्र बड़े असमंजस में पड़ गया। बोला — "गाँव छोड़े दस साल से अधिक हो गये चाचाजी! न जाने इस बीच वहाँ की क्या हालत हो गयी हो! पिताजी जीवित हैं या नहीं? इतना तो मुझे विश्वास है कि मेरा वहाँ पहुंचना कम से कम मेरे भाई को तो अच्छा नहीं लगेगा। दूसरे, वह एक गंवई गाँव है। समाज दूसरा है। उनके रहन-सहन और बात-विचार भी दूसरे हैं। ऐसी हालत में अगर तुम लोगों का किसी ने किसी रूप में अपमान कर दिया, तो मुझसे तो बर्दाश्त नहीं होगा। पहले से बदोबस्त किये बिना एकाएक तुम लोगों को वहाँ ले चलना मुझे तो ठीक नहीं मालूम पड़ता चाचा जी!"

लालाजी झल्ला उठे। बोले — "हमें क्या वहाँ मेहमानी करने जाना है नरेन, जो मान-अपमान का इतना डर हो? जाऊँगा, तुम्हारा गाँव भी देख लूंगा। अगर तुम्हारा भाई जायदाद का हिस्सा देने में आना-कानी करेगा, तो उसे यह भी जताता आऊंगा कि मेरा नरेन असहाय नहीं है। किशनचन्द मौजूद है। अगर जरा भी बेईमानी की तो ईंट से ईंट बजवा दूंगा।"

"लेकिन इससे तो झगड़ा बढ़ेगा चाचा जी! मैं तो ऐसा नहीं चाहता।"

"लाख पढ़-लिख गये, लेकिन इस मामले में तुम अभी निरे बच्चे हो। दुनियादारी का तुम्हें अभी कुछ पता नहीं। यही सब देखते और करते किशनचन्द के बाल सफेद हो गये।" फिर कुछेक दम रुक कर बोले — "या यह सब कहकर हमसे पीछा तो नहीं छुड़ाना चाहते नरेन ?"

लालाजी के आकस्मिक आक्षेप से नरेन्द्र तिलमिला उठा। बोला — "जरूर चलो चाचाजी ! मुझे जरा भी एतराज नहीं।" —कहकर वह उठ खड़ा हुआ, और सीधे अपने सोने के कमरे में चला गया।

: ३६ :

धीरे धीरे पार्वती सरोज के प्रति इस प्रकार आकृष्ट होती गयी, कि सोते-जागते, उठते-बैठते और खाते-पीते एक साथ रहने लगी। सरोज पार्वती को औरों की तरह 'बहिनजी' कहा करती, और पार्वती उसे पहले रोज से सरोज, और अब सरो कहकर पुकारती। सरोज के लिये वह अक्सर सुन्दर से सुन्दर साड़ियां और गहने मधुवनी तथा दरभंगे से मंगवाती। उसे बड़े प्रेम और आग्रह से पहनाती। रोज अपनी गोद में बिठा कर उसके बाल संवारती, जूड़ बांधती, और इस कला में नित नये आविष्कारों की धुन में लगी रहती। आज सरोज को देखकर कौन कह सकता था कि यह किसी एंग्लो-इंडियन एस० डी० ओ० की कन्या है ! वह तो किसी भारतीय सद्गृहस्थ के घर की साक्षात् सौभाग्य-लक्ष्मी सी प्रतीत होती।

एक दिन पार्वती सरोज को गोद में बिठा के उसके बाल संवार रही थी। सरोज का शिर काफी नीचे झुका हुआ था। पार्वती पीछे से बार बार आदेश दे रही थी — "जरा शिर और

उठा सरो !" लेकिन सरोज का शिर उठने के बजाय और नीचे झुका जा रहा था। एक समय क्रुद्ध होके पार्वती ने उसकी ठोडी पकड़ ली और जोर से ऊपर की ओर झटक दिया। उसका चेहरा देख पार्वती एकाएक चौंक कर बोली — "ऐं ! तू तो रो रही है सरो !"

सरोज ने आँसू रोकने की बड़ी चेष्टा की, लेकिन रुकने के बजाय आंसुओं की गति और तेज हो गयी। पार्वती अब घबड़ा गयी। बोली — "रो क्यों रही हो ? मैंने कोई तकलीफ तो नहीं दी ? अगर कोई भूल-चूक हो गयी हो तो माफ करना सरो !"

पार्वती की इस आकुल जिज्ञासा और अनुनय के स्वर ने सरोज के हृदय को एकाएक विगलित कर दिया। वह पार्वती के पैरों पर गिर पड़ी, और फफक-फफक कर रोने लगी।

पार्वती बेचारी किंकर्तव्य-विमूढ़ बन गयी। सरोज की इस रुलाई का कारण उसकी समझ में आ नहीं रहा था। क्या कहकर सरोज के आंसू पोंछे यह भी सोच नहीं पा रही थी। कुछेक मिनट बाद कुछ रोई सी होके बोली — "मैं तो तुम्हारी हर सुविधा का ख्याल रखती हूँ सरोज ! मगर फिर भी अगर तुम्हारा दिल यहाँ न लगता हो, तो जहाँ कहो पहुंचवा दूं। तुम्हारे कोई सगे-सम्बन्धी हों उन्हीं के यहाँ।"

सरोज उसके पैरों पर से अपना मुंह उठाये बिना ही बोली — "ना ना, इस संसार में तुम्हारे सिवा मेरा सगा-सम्बन्धी और कोई नहीं। तुम मुझे इतना क्यों प्यार करती हो बहिन जी ?"

अब पार्वती के जी में जी आया। अब उसकी समझ में आया कि ये आँसू दुख के नहीं। सरोज के हृदय में घनीभूत कृतज्ञता आज एकाएक आंसू बनकर बह चली है। पार्वती चट उसे नीचे से उठाकर अपनी गोद में बिठाती हुई बोली—"इसी

लिये ? दुत् पगली ! कहाँ मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ! जितना चाहती हूँ उतना कहाँ कर पाती हूँ !" — कहकर अपनी आंचल के छोर से उसके आँसू पोंछने लगी।

सरोज पार्वती के मुंह की ओर एक विशेष भंगी से देखती हुई बोली — "तुम किस धातु की बनी हो बहिन जी ?"

"जिस धातु के और लोग बने होते हैं।"

"ना ना, सरासर झूट ! इस छोटी सी उम्र में दुनिया मैंने काफी देखी है। दुनिया के लोग ऐसे नहीं होते ! तुम एंजिल हो बहिन जी, एंजिल !"

सरोज के शिर को बड़े प्यार से सहलाती हुई पार्वती बोली —"मैं भी इसी दुनिया की हूँ सरो ! एक इन्सान ! इसके सिवा और कुछ नहीं। तू एंजिल एंजिल क्या कह रही है, मैं तो समझी नहीं ?"

"ईसाई धर्म में एंजिल कहते हैं स्वर्ग-दूत या ईश्वर-दूत को बहिन जी !"

"हाँ सरो ! एक बात तो मैं पूछना भूल ही गयी थी। तुम लोग तो ईसाई धर्म के हो ? तो मुझ से कहा क्यों नहीं कि तुम्हारे तीज-त्योहार पर तुम्हारे पूजन-अर्चन का इंतजाम कर देती ? मुझे याद नहीं रहा, तो कम से कम तुम तो याद दिला देतीं ?"

"मेरा सब धर्म-कर्म अब केवल तुम हो बहिन जी ! तुम्हारा पूजन-अर्चन मैं जरूर भूल गयी हूँ। अपने प्यार में तुमने मुझे इस कदर बेखबर बना दिया कि मैं अपना कर्तव्य भी भूल गई। अब से मैं सचेत रहूँगी।" — कहकर उसके चेहरे पर मुस्कान की एक हल्की रेखा दौड़ गयी।

सरोज के गाल पर एक हल्की चपत जमा के पार्वती बोली— "चुप पगली ! मेरी पूजा ! अरी मैं एक स्त्री हूँ। केवल एक स्त्री।

तो क्या तू मुझे स्त्री से देवी बना देना चाहती है ? नहीं नहीं, ऐसा न करना ! नहीं तो मनुष्य की सेवा करना भूल जाऊंगी ! अपने कर्तव्य से वंचित हो जाऊंगी।"

"ना बहिन जी, तुम एंजिल हो ! स्त्री नहीं।"

'अरी पगली, फिर वही बात ! मनुष्य को मनुष्य ही रहने देना चाहिये। जहाँ उसे देवता बनाया कि उसका सत्यानास ! जहां दो-चार आदमियों ने उसे देवता कह कर पूजना आरम्भ किया, कि सचमुच उसमें देवत्व का अभिमान आ जाता है। अपनी कमजोरी का शिकार बनकर सचमुच अपने को देवता समझने लगता है। और अन्त में अपने को मनुष्य से अलग समझ कर सच पूछो तो वह पतित बन जाता है।'

एक अपढ़ गँवार औरत के मुख से ऐसी गूढ़ दार्शनिक तत्वभरी बातें सुनकर सरोज दंग रह गयी। वह विस्मित नेत्रों से पार्वती के मुँह की ओर ताकती हुई बोली—'तुम्हारे मुँह से ऐसी गहरी बातें सुनकर मैं तो दंग हो गयी हूँ बहिन जी ! तुम तो पढ़ी-लिखी भी नहीं हो ! मैं स्वयं पढ़ी-लिखी हूँ, काफी पढ़ी-लिखी औरतों में रह चुकी हूँ, लेकिन फिर भी ऐसी गंभीर बात कभी सोच नहीं सकती। और उन शिक्षित महिलाओं की तो बात ही छोड़ो। उनमें सिवा फैशन-परस्ती के और स्वार्थ परता के मुझे तो कुछ दिखाई नहीं दिया दीदी !'

पार्वती चट अपने हाथ से उसका मुँह बंद करती हुई बोली—'चुप ! फैशन परस्ती और स्वार्थ परता कहाँ नहीं है ? इसमें पढ़ी-बेपढ़ी सब एक जैसी हैं। यह स्वाभाविक है सरो !'

'नहीं बहिन जी ! फ़ैशन की ओर आकर्षण स्वाभाविक हो सकता है, फैशन-परस्ती स्वभाविक नहीं यह तो नाटकीय जीवन है बहिन जी, इस में स्वाभाविकता कहाँ ?'

'स्वभाविकता हर जगह है सरो ! नाटक में भी स्वभाकिकता होती है। न होने पर देखने वालों को आनंद भी तो नहीं आता।'

'लेकिन नाटक के पात्रों में तो वास्तविकता नहीं होती! रंग-मंच पर जिस जीवन का वह अभिनय करता है, उसके साथ उसका अपना तो कोई संबंध नहीं होता!'

'पात्रों में वास्तविकता न सही, अभिनय और कथा-वस्तु में तो वास्तविकता होती ही है।'

'तो क्या तुम्हें इस नाटकीय जीवन में स्वाभाविकता और वास्तविकता नजर आती है?'

'आखिर यह संसार सिवा नाटक के और है ही क्या? हम, तुम, सब इस संसार रूपी विशाल रंचमंच के अभिनेता ही तो हैं?'

'अभिनेता हैं?'

'हां हाँ अभिनेता हैं। सिवा इसके और कुछ नहीं।'

पार्वती के इस उत्तर से सरोज दंग रह गयी! वह विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगी। पार्वती पढ़ी-लिखी तो थी नहीं, लेकिन थी पर्याप्त शिक्षित। पं० धरणीधर के स्वर्गीय पिता पं० चक्रधर पाठक प्रति दिन अपने घर कथा बाँचा करते। गाँव की अधिकतर स्त्रियाँ कथा-श्रवण में शामिल होतीं, खास-कर विधवाएँ। पार्वती नौ साल की उम्र में ही विधवा बनी थी। तब से वह नियमपूर्वक कथा सुनने जाया करती। उसका हृदय स्वयं भी विचारशील था। किसी सुनी बात पर अधिक से अधिक विचार करने की वह आदी थी। अतः एक निरक्षर गँवार महिला के मुख से ऐसे अद्भुत और गूढ़ विचार सुनकर सरोज को भले ही आश्चर्य हुआ हो लेकिन वास्तव में आश्चर्य करने की कोई बात न थी।

सरोज की विस्मित चितवन को देख पार्वती हँस पड़ी। उस का शिर दोनों हाथ से पकड़कर हल्के हाथों से हिलाती मुस्काती

हुई बोली—"अच्छा, अब इन बातों को छोड़ ! तेरे बाल अभी संवरे नहीं। जरा इसे तो पूरा कर लेने दो।'

सरोज पार्वती की गोद से अलग हट कर बैठ गयी। बोली—'नहीं बहिन जी ! तुम्हारी बातें सुनकर मेरी अक्ल हैरान हो गयी है। हम सभी अभिनेता हैं ! तो क्या तुम्हारा यह लाड-प्यार भी अभिनय है ?'

इस बार पार्वती की आँखों से सहसा आँसू के दो बड़े बूँद टपक पड़े। वह सरोज का बायाँ हाथ पकड़ कर बड़े प्यार से अपनी ओर खींचती हुई बोली—'इधर आ, पागलपन की बात मत कर !'

'यह पागलपन की बात कैसे हो गयी ? तुम्हीं तो कह रही हो कि हम सब अभिनेता के सिवा और कुछ नहीं !'

पार्वती प्यार भरी फटकार के स्वर में बोली—'अरी पगली ! कैसे तुझे समझाऊं ? इस अभिनय में वास्तविकता है वास्तविकता ! दिखावा नाममात्र को नहीं। अभिनय से मेरा मतलब है कर्म से। यह सारा संसार एक विशाल कर्म-भूमि है सरोज !'

सरोज विस्मय-विमुग्ध आँखों से उसे ताकती रही।

पार्वती ने फिर कहा—'कर्म भले और बुरे दोनों ही होते हैं बहिन ! भले का परिणाम भला, और बुरे का बुरा होता है। भला कर्म ऊपर उठाता है, जब कि बुरा कर्म नीचे की ओर कूप में धकेलता है। और बगैर त्याग और तपस्या के ऊपर उठने की शक्ति नहीं प्राप्त होती सरोज ! इस त्याग और तपस्या में ही जीवन की सार्थकता है बहिन !'—कहकर पार्वती चुप हो गयी।

सरोज बोली—'तो फिर तुम मुझे क्यों इस विलास के जीवन में धकेल रही हो ? तुम स्वयं तो सचमुच त्याग और तपस्या की देवी हो, लेकिन दूसरे के जीवन को क्यों भोगमय बनाने की चेष्टा में दिन-रात लगी रहती हो ?'

'इसे भी मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ सरोज ! तुम्हारे माँ बाप नहीं रहे। उनकी जगह मैंने ले ली, अपनी इच्छा से, अपना कर्तव्य समझ कर। लेकिन अब यह कर्तव्य भी मेरे लिये स्वाभाविक बन गया है बहिन ! लगता तो अब ऐसा है कि अब तेरे विना.....' कहते कहते पार्वती की पलकें गीली हो उठीं। वह आगे कुछ न बोल सकी।

सरोज रो पड़ी। रोती हुई बोली — "तभी तो मैं कहती हूँ कि तुम इस दुनिया के परे की चीज हो। मुझे तुम्हारी गोद की छाया में रहते साल से अधिक हो गया। देख रही हूं, देख-देख कर सोच रही हूँ। दीन-दुखियों के प्रति हृदय तुम्हारा माया-ममता से भरा है। भारत की मिट्टी में पैदा होकर भी मैं विदेशी सभ्यता में पली। मेरी नसों में बहुत कुछ भारत का खून होते हुए भी मुझे भारत और भारतीयता से घृणा थी। मुझे घृणा करना सिखाया गया था। मगर बहिन जी। तुमने और सत्यदेव भाई ने मुझे भारत और भारतीयता से प्रेम करना सिखा दिया। मेरी आँखें खोल दीं। मनुष्यता से जीवन में पहली मुलाकात हुई। हाय सत्यदेव भाई ! तुम अगर....." कहते-कहते वह फिर रो पड़ी। आगे कुछ कह न सकी। रोने लगी।

सत्यदेव की चर्चा छिड़ते ही पार्वती की आँखें बहती नदी बन गयीं। वह चुपचाप वहाँसे उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

: ३७ :

जापानी विमानों ने कलकत्ते पर दो-चार बम गिराये। शहर में भगदड़ मच गयी। भागने वालों में संख्या अधिकतर सेठों की थी। क्योंकि इन्हें अपनी जान जरूरत से ज्यादा प्यारी होती है। इन में होड़ लग गयी थी कि कौन पहले हावड़ा स्टेशन पर पहुंचता है, और टिकट लेकर गाड़ी में बैठता है।

जिसने गाड़ी में जगह पा ली, मानो उसे अमरत्व प्राप्त हो गया। उसको अब विश्वास हो जाता कि वह मौत को भागीरथी के उसी पार छोड़ आया है। गाड़ी में सीट पाने के लिये सेठों ने कुछ उठा न रखा। एक एक सीट और एक एक टिकट के लिये पाँच-पाँच सौ तक का नजराना!

लाला किशनचंद, नरेंद्र और गार्गी संयोग से उसी दिन मदारीपुर से कलकत्ते पहुंचे। हावड़ा स्टेशन पर आये। वहां की हालत देख उनके होश गुम हो गये। टिकट पाने की लाख कोशिश की, लेकिन असफल रहे। पानी की तरह बहाने को उन के पास मुफ्त का पैसा कहां था! बेचारे चुपचाप कुछ देर प्लेटफार्म पर बैठे इन दृश्यों को देख रहे थे।

एक सेठ जी कुछ देर से पहुंचे। टिकट तो मिल गया, लेकिन गाड़ी में तिल धरने तक की जगह नहीं थी। दो तीन दिन के लिये फर्स्ट, सेकण्ड और थर्ड का भेद मिट गया था। मानो बिल्कुल वर्गहीन समाज स्थापित हो गया था। सेठ जी की पसरी हुई तोंद इस वक्त उन के लिये महामुसीबत बन गयी थी। अपनी मोटी आवाज में चिल्ला-चिल्ला कर अंदर डब्बे में बैठे लोगों का निहोरा कर रहे थे। लेकिन बड़े दुख की बात कि कोई उनकी सुन नहीं रहा था। सेठजी का चेहरा देख लग तो ऐसा रहा था, मानो साक्षात् यमराज उनका पीछा कर रहा है! किसी तरह डब्बे के अन्दर घुसे बिना जान की खैर नहीं। अंत में हार कर उन्हों ने दो कुलियों को इस शर्त पर दस-दस रुपये देना कबूल किया कि वे उन्हें डब्बे के भीतर घुसा के बिठा देंगे। कुलियों ने पैसे पेशगी रखा लिये। दोनों ने दो तरफ से सेठ जी के गुप्ताँग में हाथ लगाकर उनके शिर को एक खुली खिड़की के भीतर घुसेड़ दिया, और पूरा जोर लगा कर उन्हें ठेलने लगे। अंदर बैठे लोगों को यह हरकत बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हुई। एक साथ आधे दर्जन के करीब सेठजी पर पिल पड़े।

नरेन्द्र ने पुनः वैसे ही नम्र और मृदु स्वर में प्रार्थना की— "बूढ़ा है बेचारा !"

"बूढ़ा है तो क्या करूं ? क्या उस के लिये गाड़ी से कूद पड़ूं ?"

इस बार नरेन्द्र का स्वर कुछ कठोर बन गया। बोला — "कूदने को नहीं कहता महाशय जी ! यदि आप मेहरबानी करें तो जगह बन सकती है।"

"ऐसी मेहरबानी मैं नहीं करता।" — कहकर चश्माधारी जी पुनः अखबार पढ़ने में लीन हो गये।

नरेन्द्र से अब नहीं रहा गया। वह अपेक्षाकृत कुछ कटु होकर बोला — "मेहरबानी करने को नहीं कहता महाशय जी ! फालतू जगह है, उसे आप खाली कर दें।"

महाशय जी लाल-पीले होकर बोले— "खाली क्यों कर दूं ? अपनी जगह पर बैठा हूँ। फालतू जगह है कहां ? अंग्रेजी अगर जानते हो तो पढ़ लीजिये। ऊपर लिखा है — टु सीट इन सिक्सटीन पैसेंजर्ज (सोलह आदमियों के बैठने के लिये)। इसके मुताबिक मैंने अधिक जगह नहीं ली है।"

"लेकिन इस में तो सोलह की जगह अड़तालीस बैठे हैं !"

"बैठे हैं तो मैं क्या करूं ? मैंने बैठने के लिये थोड़े ही कहा है ?"

"बेचारे करें क्या ? वक्त ही ऐसा आ गया है। मजबूरी है। सभी कष्ट में हैं, जरा आप भी कष्ट में हाथ बंटायें !"

"आप मुझे उपदेश देने की धृष्टता करने लगे ? आपको पता नहीं कि मैं कौन हूँ ?" — कहकर चट पाकेट से अपने नाम का छपा कार्ड निकाल कर नरेंद्र के हाथ उन्हों ने थमा दिया।

कार्ड पर दृष्टि पड़ते ही नरेंद्र जरा चौंका तो, लेकिन बगैर कुछ कहे उसने कार्ड वापस कर दिया।

अब चश्माधारी जी अपने आप बड़बड़ाने लगे -- "मैं तो सिवा सेकेंड और फर्स्ट के थर्ड में कभी सफर करता ही नहीं। लेकिन क्या किया जाय ? सीट खाली नहीं थी। थर्ड में बैठना पड़ा। गंदों में बैठकर दिमाग गंदा होता जा रहा है। आज कैसे ऐड्रेस (भाषण) करूँगा। अगर यहीं माथा खस्त हो गया, तो वहां क्या बोलूँगा !" ..... इत्यादि इत्यादि

चश्माधारी जी एक जिले के किसान सभा के प्रसीडेंट थे। एक किसी किसान सभा में लेक्चर देने जा रहे थे। आप कई किताबों के लेखक भी थे। अपने को मार्क्सवादी कहते, और अपनी पुस्तकों में गरीबों के लिये आँसू भी काफी बहाये थे। नरेंद्र इनकी कई किताबें पढ़ चुका था। इनके व्यक्तित्व के बारे में उसकी जो धारणा बहुत ऊंची थी, सो उस कार्ड को पढ़ते ही एकाएक धड़ाम से नीचे गिर पड़ी।

अब गार्गी नरेंद्र की ओर ताक कर आहिस्ते से बोली -- "बेचारे थक गये हैं। बूढ़े हैं। मैं उठ खड़ी होती हूँ। इन्हें मेरी जगह बिठा दो।"

नरेंद्र के कुछ कहने के पहले ही बूढ़ा बड़ी कृतज्ञता के स्वर में हाथ जोड़ गिड़गिड़ाते हुए बोला — "नहीं बीबी जी, आप बैठी रहें। मुझे कोई तकलीफ नहीं।"

लाला किशनचन्द अब तक चुपचाप बैठे थे। बूढ़े को उद्देश करके बोले—"आओ भाई साहेब, मेरी बगल में बैठ जाओ। जगह अपने आप बन जायगी। जाड़े का महीना है। सटकर बैठने में कोई तकलीफ नहीं।"

नरेंद्र ने जबर्दस्ती बुढ़े को लाला जी की बगल में बैठा दिया। कुछ देर बाद जगह खाली होने पर स्वयं भी एक जगह पर बैठ गया।

× × ×

दूसरे दिन शाम के करीब चार बजे नरेंद्र की गाड़ी मधुवनी पहुंची। आज दस साल बाद उसके शरीर में जन्मधरती की हवा लगी। इस पावन पवन के संस्पर्श मात्र से ही हृदय उस का पुलकित हो उठा, भाँति भाँति के भावों से आँदोलित होने लगा। जननी चल बसी थीं, किन्तु जन्म भूमि कायम थी। वह शाश्वत एवं अमर जो है। रह-रहकर हृदय उमड़ पड़ता, आँखें डबडबा आतीं। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के शाश्वत अर्थ चिरसत्य बनकर मानस-मंचपर झंकृत हो उठते।

तीनों जने गाड़ी से उतरे। उतरते ही नरेंद्र की आखें चतुर्दिक दौड़ने लगीं, मानो किसी को खोज रही हों। सोच रहा था, शायद कोई परिचित मुखड़ा मिल जाय। फिर दूसरे ही क्षण उसने देखा, सुरजीत दायें हाथ में बाँस की एक लंबी लाठी लिये बड़ी बेचैनी से प्लेटफार्म पर लंबे डेग बढ़ाता उसकी ओर बढ़ा आ रहा है। गाड़ी के डब्बों में झांक कर किसी को ढूँढ रहा है। इतने दिन बाद भी अपने बचपन के नितांत अनुगत भृत्य सुरजीत को पहचानने में नरेन्द्र को जरा भी भूल नहीं हुई।

चट दौड़ कर उसने सुरजीत की मजबूत कलाई पकड़ ली। सुरजीत चौंक पड़ा। एक अनजान आदमी को अपनी कलाई पकड़ते देख उसे बड़ा गुस्सा आया। एक ही झटके में हाथ छुड़ाने की चेष्टा उसने की, पर असफल रहा। खिसियाकर बोला--"बाबू आप कौन हैं ? हमको, क्यों पकड़ते हैं ? छोड़िये !" — कहकर वह पुनः बड़ी उतावली से हाथ छुड़ाने लगा।

उसकी कलाई पकड़े ही नरेंद्र अब मुस्कराकर बोला—"क्यों रे सुरजीत ! क्या तू मुझे नहीं पहचानता ?"

सुरजीत फिर झुंझला कर हाथ छुड़ाते बोला — "छोड़िये बाबू ! हम आपको नहीं जानते हैं। आप कौन हैं ? कहां रहते हैं ? हमको क्यों पकड़ते हैं ?" — कहकर अब वह नरेंद्र की ओर टुकुर टुकुर ताकने लगा।

सुरजीत को अब सहसा ऐसा लगा जैसे इस चेहरे को उस ने कहीं देखा है। कहाँ देखा, कब देखा, याद करने लगा। सुमन ने अपने लम्बे प्रवास में नाम बदल लिया था, साथ ही उसकी शक्ल-सूरत भी बदल गयी थी। सुरजीत की दुविधा और विस्मय समाप्त करते मुस्कुराते हुए वह बड़े स्नेह के स्वर में बोला — "क्या अब भी नहीं पहचाना रे ? अरे, मैं तेरा छोटा बाबू, छोटा मालिक सुमन हूं !"

सुरजीत को अब रंचमात्र भी संदेह न रहा। चट झुक कर सुमन के पैर छू कर वह बोला — "आ ऽ ! बाबू जी ! कैसे हम सब को भूल गये !" — और कहकर बड़े जोर से रो पड़ा।

सुमन ने चट रोते सुरजीत को छाती से लगा लिया। अपने हृदय की उमड़ती रुलाई को वह रोक न सका, दबा न सका, स्वयं भी रो पड़ा, और रोते हुए बोला — "अब नहीं भूलूँगा सुरजीत ! अब तुम्हीं लोगों के पास रहूँगा।"

आंखें पोंछते हुए सुरजीत बोला—"चलें बाबू जी बाहर। टेसन के आगे अपनी *संपनी खड़ी है। सबेरे से ही आपकी आस में बैठा था। जब जब रेलगाड़ी आती, मैं आके ढूंडता था। मैं तो निरास हो गया था बाबू जी, मगर....."— कहकर फिर रो पड़ा।

सुरजीत की बात सुनकर सुमन को बड़ा अचरज हुआ। अचरज भरे स्वर में बोला — "मेरी आस में ? तुम्हें कैसे मालूम कि मैं आज आ रहा हूँ ?"

"इस् ! बहिन जी को सब मालूम था ! पहले बाहर चलें। घर से खाने-पीने का सामान साथ लाया हूँ। खा-पी लें, तब बताऊंगा।"

---

* एक प्रकार की आरामदेह बैल गाड़ी।

"अच्छा पहले यह बता कि घर पर सब कुशल-मङ्गल है न ?"

"सब कुसल-मङ्गल है बाबू जी ! पहिले खा-पी लें तब ।"

"नहीं रे ! हमें खाना-पीना नहीं है । दरभंगा में ही नहा-खा चुके हैं । अच्छा चल । गाड़ी में ही बैठके बातें करते-करते चलेंगे ।"

सामान-असबाब के साथ सब लोग बाहर खड़ी बैल गाड़ी में आके बैठ गये । कुली को पैसे दे बिदा किया गया । बहल-वान ने बैलों की पूंछ पम्हड़ी । टिटकारी भरी । गाड़ी चल पड़ी, बड़ी तेजी से हरिहरपुर की ओर ।

अब सुरजीत ने कहना आरम्भ किया — "बहिन जी को देवी-देवता का मंतर सिध है बाबू जी ! और खुद भी किसी देवी-देवता से कम नहीं है । उन को कल रात सपना हुआ कि आप आ रहे हैं ।"

सुनकर सुमन आश्चर्य-चकित रह गया ! विस्मित स्वर में पूछा — "क्या ? क्या कहते हो ? सपना हुआ कि आज मैं आ रहा हूँ ?"

"हाँ बाबू जी, सपना हुआ । आज बड़े सबेरे ही मुझे सोते से जगा के बहिन जी ने कहा — 'जा सुरजीत, सपनी ले के टेसन पर चला जा ! आज हमारा सुम्मू आ रहा है ।' मैं तो सुनते ही खुशी के मारे मरने लगा बाबू जी ! बहिन जी से पूछा — 'बाबू जी के इहाँ से कोई चिट्ठी-उट्ठी आई है बहिन जी ?' बहिन जी ने कहा — 'नहीं रे, चिट्ठी नहीं आई, सपना हुआ है । हमारा दिल कह रहा है — आज जरूर हमारा सुम्मू आवेगा ।' बाबू जी, बहिन जी के परताप का क्या कहना ! सारे गांव में आजकल बहिन जी की जैजैकार है ।"

सुरजीत की बात सुनकर सुमन का आश्चर्य और बढ़ गया। वह सोचने लगा — 'बहिन जी ने कहा संपनी लेके टेसन पर चला जा, बहिनजी का परताप, बहिन जी की जै जैकार।' आखिर यह मामला क्या है ? बहिन जी ने क्यों कहा ? पिता जी ने क्यों नहीं कहा ? भाई साहेब ने क्यों नहीं कहा ? यह बहिन जी का परताप और जै जैकार क्या बला है ? घर में केवल बहिन जी ही रह गयी हैं क्या ? संशय और अनिष्ट की आशंका से वह डर सा गया। फिर डरते हुए उसने सुरजीत से पूछा — "क्यों रे सुरजीत, पिता जा और भाई साहेब कैसे हैं ? कुशल-क्षेम से तो हैं ? पिता जी मुझ पर नाराज तो नहीं ?"

सुरजीत ने जवाब दिया — "आप पर भला दुनिया में कौन नाराज होगा बाबू जी ? हां, भुवन बाबू की बात मैं नहीं कह सकता। मगर पिता जी तो अब नहीं रहे बाबू जी। आप चले गये, उस के महीने भर बाद ही मर गये। रात-दिन आप का ही नाम रटते रहे, और रटते ही रटते मर भी गये।"

सुनते ही सुमन की छाती फटने लगी। रुलाई के वेग को वह सम्हाल न सका। एकाएक बच्चों की भाँति भोकार पारकर रो पड़ा। धोती के छोर में मुंह छिपा के रोने लगा। रुलाई उस की रुक नहीं रही थी।

देख कर सुरजीत को बड़ा दुख हुआ। बेचारा क्या से क्या कह गया। अपने कहे पर उसे पछतावा होने लगा। लेकिन अब करे क्या ? किन शब्दों से सुमन को समझाये, तोष-भरोस दे ? 'चुप रहें बाबू जी, अब रोने से क्या' — कहकर धीरज बंधाने की कोशिश भी की, लेकिन असफल रहा। उधर सुमन की रुलाई देख कर गार्गी भी आँचल में मुंह छिपा के आँखें पोंछने लगी।

अब लाला जी बड़े संकट में पड़े। सुमन को चट अपनी छाती की ओर खींच कर उसे समझाने लगे — "चुप रहो

बेटा ! अब तो सिवा धीरज के और कोई चारा नहीं। मैं तुम्हें क्या समझाऊं ? तुम तो खुद बड़े विद्वान हो।" — कहते कहते उनका भी गला भर आया।

सुमन कुछ देर लाला जी की गोद में मस्तक छिपाये मुंह पर धोती का छोर डाले चुपचाप रोता रहा। फिर कुछ दिल हल्का होने पर अपने आप उठ कर बैठ गया। गाड़ी में चुप्पी विराजने लगी। बीसेक मिनट बाद सुमन ने सुरजीत से पूछा — "बहिन जी कैसी हैं सुरजीत ? भाई साहेब से उन की बनती तो है ?"

सुरजीत ने बड़े खुश हो कर जवाब दिया — "बहिन जी बड़े मजे में हैं बाबू जी ! और नहीं बनेगी तो भाई साहेब उन का बिगाड़ ही क्या लेंगे ? बहिन जी के नाम से गाँव के सब बाबू-भैया थर थर काँपते हैं। फिर एक भुवन बाबू की कौन कहे। आज दस गामे में बहिनजी की जै जैकार है। दीन-दुखियों के लिये साच्छात् अन्नपूरना माई हैं। बहिन जी के परताप का क्या कहना बाबू जी !" — कहकर वह चुप हो गया।

सुमन का अचरज बढ़ता ही गया। बोला — "जरा साफ करके समझाओ सुरजीत कि बहिन जी का प्रताप इतना कैसे बढ़ा। क्या वे भाई साहेब के साथ नहीं रहतीं ? अलग हो गयी हैं क्या ? और अलग होने पर इतना धन उन के पास आ कहाँ से गया ?"

सुरजीत जरा सकुचाते हुए बोला — "सो तो बताना मैं भूल ही गया था बाबू जी !" — और कहकर धन के बटवारे की आद्योपाँत कहानी उसने कह सुनायी। फिर बोला —"मगर भुवन बाबू बहिन जी को हिस्सा देना तब भी नहीं चाहते थे। मगर बहिन जी को तो आप जानते ही हैं। ऐसा धमकान धमकाया कि भुवन बाबू की सीटी गुम हो गयी। डर कर चप्पा चप्पा बाँट देना पड़ा। अब तो बाबू जी नकशा ही बदल गया।

एक जुग के बाद चल रहे हैं, देखें गे कि बहिन जी ने कैसा घर-दुआर बनाया है ! गांव में उनकी कैसी तूती बोल रही है !"

इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि गाड़ी हरिहरपुर की सीमा में प्रविष्ट हुई । गांव के पश्चिम ब्रह्म-स्थान के निकट सुरजीत ने गाड़ी खड़ी करवाई । अंधेरा हो गया था । गाड़ी से उतर कर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से आज उसने ब्रह्म देवता को प्रणाम किया । फिर गाड़ी के बहलवान को उद्देश कर के बोला -- "अच्छा देवकी भाई, तुम जरा हौले-हौले गाड़ी चलाते आओ । मैं जरा दौड़ कर पहिले जाता हूँ ।" और फिर सुमन की ओर मुड़ कर हाथ जोड़ कर बोला -- "बाबूजी ! जरा दौड़ कर जाऊं, बहिनजी को खबर दे दूं । बड़ा विआकुल होंगी ।" — कहकर सुमन की सहमति की परवाह तक न करके अपनी लम्बी लाठी हाथ में हिलाते आनन्द के वेश में हवा की तरह दौड़ पड़ा ।

इधर ज्यों ज्यों समय बीतता जा रहा था, पार्वती की अधीरता बढ़ती जा रही थी । आज दिन भर सारे काम-काज के बीच उसका मन केवल मात्र सुमन में समाया हुआ था । केवल शरीर मात्र से वह घर में थी । खाने-पीने की न जाने कितनी चीजें आज अपने हाथ से उसने तैयार की थीं, अपने प्रेम और स्नेह रूपी अमृत से भिगो-भिगो कर । रह रह कर घर से निकल कर बाहर आती । अपने दरवाजे से सटी कच्ची सड़क पर खड़ी हो मधुवनी की तरफ दूर दूर तक आँखें दौड़ाती । फिर कुछेक मिनट बाद निराश हो लौट आती । अंत में जब सन्ध्या हो गयी, सूरज डूब गया, तब हृदय निराशा से भर उठा । निराशा आंसू में बदल कर उसके कपोलों पर लुढ़कने लगी । बड़ी सावधानी से अड़ोस-पड़ोस के लोगों से सटने की बात उसने छिपा रखी थी । अतः उसके घर में भीड़ जमा होने नहीं पायी थी ।

दालान में लालटेन जल रहा था। पार्वती एक तरफ बैठी रो-रो कर बोल रही थी — "इस अभागिन के ऐसे भाग्य कहाँ जो इस जीवन में फिर सुम्मू का मुंह देख सके। सपना ही तो था! सपना भी कहीं सच होता है? मैं विश्वास कर बैठी। सपना ने धोका दिया।"

सरोज उसके सामने चुपचाप बैठी थी। उसके हृदय में क्या बीत रहा था सो तो वही जाने, लेकिन मुंह से उसके कोई शब्द नहीं निकल रहा था। हाँ, चुपचाप रोने में अपनी बहिन जी का साथ अवश्य दे रही थी।

अब पार्वती रोती हुई झुंझला के बोली — "अरे यह सुरजीत भी कहाँ रह गया? मर गया क्या? खाली हाथ लौट के भी तो आ जाय अभागा!"

और इतने में उधर से दौड़ता हुआ लाठी लिये सुरजीत सामने आके खड़ा हो गया। हांफते हुए बोला — "तैयारी करो बहिन जी! बाबू जी आ गये! बरहम-थान पर उन को छोड़ के आया हूँ!"

पार्वती चौंक कर उठ खड़ी हुई। उसे तो सहसा अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। बड़ी उत्सुकता से बोली — "ब्रह्म-स्थान पर क्यों छोड़ आया रे? साथ लेके आता!"

सुरजीत ने उसी प्रकार हाँफते हुए जवाब दिया — "आ रहे हैं बाबू जी! गाँव के भीतर गाड़ी आ गई होगी। मैं तो तुम को खबर देने के लिये वहां से दौड़ पड़ा बहिन जी!"

"सुमन अकेले है, या साथ में और कोई भी है रे?"

"साथ में दो जने और हैं बहिन जी! मगर साहस नहीं हुआ कि बाबू जी से पूछूं ये लोग कौन हैं। एक कोई साठ बरिस के बुढ़ऊ हैं। एक जने और हैं, शायद बुढ़ऊ की लड़की। मगर बहिन जी, इस जनम में ऐसा रूप नहीं देखा! बिल्कुल बिजली की तरह! जैसे इन्दरासन की परी! मालूम तो ऐसा

पड़ता है कि ....." इतने में गाड़ी की घड़-घड़ खड़-खड़ आवाज कान में आयी। सुरजीत का वाक्य अधूरा ही रह गया। सुरजीत उल्लसित होके बोल पड़ा — "वह देखो ! गाड़ी आ गयी बहिन जी !" — कहकर वह गाड़ी की ओर बढ़ा।

गाड़ी पर नजर पड़ते ही पार्वती अब अपने को सम्हाल न सकी। हृदय की संचित वियोग-वेदना को गाड़ी की घड़-घड़ाहट ने खरोंच दिया। गाड़ी खड़ी हुई। ज्यों ही सुमन उस में से निकला कि पार्वती चिग्घाड़ मार कर रो पड़ी। सुमन ने चट आगे बढ़ कर उसके पैर छुए, और पार्वती सब कुछ भूल कर अपने प्यारे अनुज से लिपट गयी। फूट फूट कर रोने लगी। आंसुओं से सुमन तथा सारे संसार को बहाने लगी। रुलाई रुक नहीं रही थी। सुमन रो रहा था। देखने वाले रो रहे थे। गाड़ी में बैठे लाला जी और गार्गी रो रहे थे।

देखते-ही-देखते पार्वती का दरवाजा अड़ोस-पड़ोस के लोगों से भर गया। तीर की तरह यह खबर सारे गाँव में पहुंच गयी। सर्वत्र मानो खुशी की आंधी उठ खड़ी हुई। पता नहीं, भुवन के दिल पर क्या बीतने लगी।

इधर पार्वती की रुलाई को रुकते न देख सुरजीत ने चिल्ला कर कहा — "कब तक रोती रहोगी बहिन जी ! मेहमान लोग गाड़ी में जो बैठे हैं !"

सुनते ही पार्वती ने सुमन का गला छोड़ दिया। आँसू पोंछती हुई फटकार के स्वर में बोली — "तू भी यहां खड़ा तमाशा देख रहा था सुरजीत ! तुझे इतना भी खयाल न रहा कि उन्हें बैठक खाने में लेजा के बैठाते, हाथ-पैर धुलाते !" फिर सुमन के कान के निकट मुंह ले जाकर धीरे से बोली — "ये मेहमान कौन हैं सुम्मू ?"

सुमन ने भी आहिस्ते से जवाब दिया — "ये मेरे धर्म के पिता हैं दीदी ! इन्हों ने ही मुझे पाला-पोसा है।" फिर जरा

शर्माते हुए बोला — "और वह उनकी कन्या है ! तुम्हारी..... तुम्हारी भौजाई !"

सुनते ही पार्वती का हृदय नाच उठा। बगैर किसी बाधा-संकोच के वह दौड़ कर गाड़ी के दरवाजे पर पहुंची और अंदर पैठ गयी। चट झुक कर उसने किशनचन्द जी के पैर छुए और बड़े प्रेम से गार्गी की कोमल कलाई पकड़ कर वह बोली — "चलो बहिन ! घर में चलें। मैं तो तुम्हें भूल ही गयी थी। बड़ा अपराध हो गया !" — कहकर उसने धीरे-धीरे गार्गी को गाड़ी से नीचे उतारा और अंदर ले चली।

सुमन लालाजी को उद्देश करके बोला — यही मेरी बहिन जी हैं चाचाजी !"

लाला जी धीरे से गर्दन हिलाते हुए बोले — "हां बेटा, जैसा भाई, वैसी ही बहिन ! देख कर मेरी तो छाती खुशी से फूली जा रही है बेटा !"

सुमन और बगैर कुछ कहे लालाजी का हाथ पकड़ उन्हें बैठक-खाने की ओर ले चला। हाथ-पैर धुला बैठक-खाने में उन्हें बैठा के स्वयं आँगन में गया। सुमन को बिना-बुलाये आँगन में आया देख पार्वती उसकी ओर दौड़ पड़ी और हाथ पकड़ कर खींचती उसे उस कमरे में ले गयी जहाँ गाँव की औरतों से घिरी संकोच से शिर झुकाये गार्गी बैठी थी। पार्वती हँस कर बोली — "वाह मेरे सुम्मू ! तुम ने मेरा घर उजाला कर दिया ! तुमे ने मुझे ऐसी सुन्दर भाभी ला दी, जो अंधेरे को उजाला कर दे ! जैसे दीपक की टेम हो।"

सुमन ज़रा शरमा तो गया, लेकिन बगैर किसी हिचक के हंस कर जवाब में बोला — "अब तुम्हें घर में लालटेन जलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी दीदी !"

सुमन की बात पर वहां इकट्ठी सभी औरतें एक साथ हंस पड़ीं, और गार्गी बेचारी शरम के मारे गड़ सी गयी।

फिर पार्वती सरोज को उद्देश करके बोली — "ओ सरो ! कहां गयी ? इधर आ ! अपने सुमन भाई को प्रणाम तो तू ने किया ही नहीं ! हर दम सुमन भाई-सुमन भाई की रट लगाती रहती थी। अब ले अपने सुमन भाई को ! ..... अरी इधर आ जा ! लजाती क्यों है ? लजाने से काम नहीं चलेगा।" — कहकर वह स्वयं सरोज के निकट गयी और उसे खींचती हुई सुमन के सामने ले आयी।

सरोज ने शिर झुकाये शरमाते हाथों से सुमन के पैर छुए। पार्वती सुमन को उद्देश करके बोली — "सुम्मू ! इसी ने आज तेरे आने की खबर मुझे दी थी। इसी ने तुम लोगों को सपने में देखा था। और इसका सपना अक्षर-अक्षर सच निकला !"— कहकर सब के सामने उसने सरोज के लज्जा-रक्तिम चेहरे को चूम कर छाती से चिपका लिया।

सुमन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इस सर्वसौंदर्य-मयी रमणी के हाथों का अपने पैरों में स्पर्श होते ही उसका सर्वांग रोमांचित हो उठा। वह जरा सकुचाते हुए बोला— "इन का परिचय तो दो दीदी !"

पार्वती मानो सुमन की अज्ञता की खिल्ली उड़ाती हुई बोली — "अरे ! तुम इसे नहीं जानते ? वही अपनी सरोजिनी, जिसे हम लोगों ने समझा कि मर गयी ! वही फिर लौट आई है !" — कहकर मुस्कुराते हुए उसने सरोज की ओर एक मीठी निगाह डाली, और बोली — "अच्छा, अब देर न करो सरो ! जाओ, सब के भोजन-भात का इंतजाम करो ! रास्ते में खाने को मिला ही क्या होगा ! सब भूखे होंगे ! चलो, देर हो रही है।" — कहकर सरोज के साथ वह रसोई-घर को चलती बनी।

———

: ३८ :

आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था ! देख कर लोगों को आश्चर्य लग रहा था ! किस ने सोचा था कि संस्कृत, अंग्रेजी तथा कृषि और विज्ञान का पारदर्शी विद्वान पत्थर जैसी कठोर धरती पर मजदूरों के साथ घण्टों कुदाल चला कर भी थकने का नाम नहीं लेगा ? गर्व और ग्लानि को शरीर की मैल की भाँति दूर फेंक कर दलित अछूत मजदूरों के साथ हिल-मिल कर काम करने में महान संतोष का अनुभव करेगा ? और सब से अधिक आश्चर्य और विस्मय तो इस बात पर हो रहा था कि गांव की दीन-हीन मजदूर औरतों के बीच गुलाब के फूल सी कोमल और मनोहर महिलाएं धूप में भूख और प्यास को भूल कर कंकड़ीली कड़ी मिट्टी को फोड़ रही थीं, मानों पत्थर के टुकड़ों को तोड़ कर धूल में परिणत कर रही थीं। ऐसी लगन ! ऐसा उत्साह ! इतना ऊंचा आदर्श ! अपने धन और विद्या के व्यर्थ अभिमान को ठुकरा कर अपने को एक सामान्य मजदूर में परिणत करने वाले महामानव ! तुझे धन्य है। अपने कंटीले और कंकड़ीले पद-चिन्हों पर कोमल किशोर ललनाओं को सहर्ष चलने की स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाले सुमन ! तेरी जै हो ! तेरे आदर्श की जय हो ! और तेरी एक मात्र आराध्य मानवता की जय हो !

× × ×

"तू सब दिन भोला-भाला ही रह गया सुम्मू !" — काठ के मुंगरे से ढेले तोड़ती पार्वती बोली।

"क्यों दीदी ?"—अपनी कुदाल को कसकर उस कड़ी धरती पर बजारते हुए सुमन ने पूछा।

"यही कि अच्छी जमीनों के रहते तुमने ऐसी परती-पराँत जमीन अपने हिस्से में ली।"

"क्या किया जाय दीदी ! भाई साहेब तो यह भी नहीं देना चाहते थे।"

पार्वती कुछ गरमा कर बोली—"देना नहीं चाहते थे ! उसके चाहने न चाहने से क्या होता है ? उसे झख मार कर देना पड़ता, यदि तुम ने जरा भी दृढ़ता दिखाई होती ?"

सुमन ने उसी प्रकार नरमी से जवाब दिया—"नाहक झगड़ा झंटा खड़ा करने से लाभ क्या दीदी ?"

"इसी से तो मैं ने कहा कि तुम सब दिन के सीधे सादे ही रह गये। अरे, तुम्हें चिंता किस बात की थी ? झगड़े-झंटे से डरने की जरूरत क्या थी ? पार्वती, पार्वती की इतनी बड़ी जायदाद, और उसके इतने जन-मजदूर तो तुम्हारे पीछे मौजूद थे ! आखिर मेरी जायदाद भी तो तुम्हारी ही है ?"

"हाँ दीदी ! और इसी से तो मैं संतोष कर गया और इसी से तो डर कर भाई साहेब ने इतना बड़ा चकला मेरे सपुर्द कर दिया ! परती ही सही, लेकिन है सवा तीन सौ एकड़ का बिल्कुल एक टुकड़ा !"

पार्वती जरा सूखी हंसी हंस कर बोली — "अरे पगले ! तू इसके एक टुकड़ेपन पर भूल गया। मगर भुवन ने तुझे बनाया पूरा बेवकूफ ! इस जमीन में एक छटाक भी अनाज कभी हुआ है ? सिवा घास और पात के इस में होता ही क्या है ?"

"कभी इस में अनाज उपजाने की कोशिश भी तो नहीं की गई दीदी ! तो फिर घास-पात क्यों न उपजे ?"

"और इसी लिये तुम हम लोगों की जान ले रहे हो ? ढेले फोड़वा रहे हो ?"

पार्वती की बात पर सुमन को बड़ा दुख हुआ। बोला — तुम से तो मैं बार बार मना कर चुका हूँ दीदी, कि यह काम तुम्हारा नहीं। तुम्हारी आदत नहीं। फिर भी तुम नहीं मानतीं। सब के साथ ढेले फोड़ने बैठ जाती हो।"

पार्वती ने तुनक कर जवाब दिया — "और तुम्हारी कब की आदत है कुदाल चलाने की ? और यह गार्गी तुम्हारी माने तब तो ? कहती है, वे धूप में कुदाल चलाने जैसा कठिन काम करते हैं, तो क्या मैं ढेले फोड़ने जैसा आसान काम नहीं कर सकती ? और तब फिर सरोज ही क्यों मानने लगी ? तो क्या इन फूल सी सुकुमार लड़कियों को तुम्हारे पीछे मरती देख कर भी मैं पैर पसार कर घर में बैठी रहूं ? ऐसा कैसे हो सकता है कहो तो ?"—कहते कहते पार्वती की आँखें डबडबा आयीं।

सुमन अब कुदाल चलाना छोड़ कर अपनी जीजी के पास बैठ गया। बड़े मीठे और गिड़गिड़ाते स्वर में बोला — "मेरी दीदी ! जैसे बचपन से ही अपने सुमन के पागलपन को माफ करती आयी हो, इस बार भी कुछ दिन के लिये माफ कर दो। देख लेना दीदी ! साल भर बाद यही जमीन हरिहरपुर की जमीनों में सोना गिनी जाने लगेगी। तुम लोगों की यह हड्डी-तोड़ मेहनत बरबाद नहीं जायगी दीदी ! और बगैर बड़ी मेहनत के कोई बड़ी चीज हासिल भी तो नहीं होती। और सच पूछो तो मैंने जान-बूझ कर ही यह परती जमीन अपने हिस्से में ली है। इस इतनी सी जमीन के सहारे मैं हरिहरपुर को स्वर्ग बनाने के सपने देखा करता हूँ दीदी ! और फिर हरिहरपुर के सहारे सारे संसार को। सारी दुनिया देखेगी, और तुम भी देखोगी, और तब मेरे इस पागलपन को तुम जरूर माफ कर दोगी दीदी !"

पार्वती अपने स्वर में ममता के घड़े उड़ेलती हुई बोली — "अच्छा चल ! अब तो समय हो गया। नहा-धो कर आ जा ! तब तक मैं जल पान तैयार किये रहती हूँ।" फिर सरोज और गार्गी की ओर मुड़ के बोली — "हाँ गार्गी, हां भई सरोज ! चलती चलो ! सुम्मू की ही तरह तुम लोग भी भूख-प्यास को

न भूल जाओ।" — कहकर उठ खड़ी हुई, और गार्गी तथा सरोज के साथ अपने घर की ओर चल पड़ी।

: ३६ :

"आओ देवकी चाचा, बैठो! कहो कैसे आये ?"

अपनी नाक के पुड़ों में नश ठूंस कर दो-तीन बार गहरी छींक लेते हुए देवकीनाथ बाबू भुवन की बगल में जा बैठे। फिर बोले — "क्या कहूँ बेटा! अब तो हरिहरपुर में भले आदमियों का रहना कठिन हो गया है!"

"कैसे चाचा ?"

"और तिस पर पूछ रहे हो कैसे चाचा ? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे सुमना ने कैसा उपद्रव मचा रखा है ?"

भुवन ने चिंतित स्वर में जवाब दिया — "हाँ चाचा, उपद्रव तो जरूर मचा रखा है!"

देवकीनाथ ने कहा — "एक तो पार्वती के मारे ही हम भले आदमियों की नाकों में दम आ गया था, तिस पर से यह उत्पाती सुमना भी जुट पड़ा। यह तुम्हारा सुमना जनम का अगमुत्तू है भुवन! देखा नहीं उस साल ? कैसे राजा साहेब को लात मार कर भाग निकला ? अब हम लोगों को लतियाने की सोच रहा है। इसके आते ही गांव के सारे मजदूर शोख बन गये हैं। पहले तो दो-चार आना डरते भी थे, मगर अब तो बिल्कुल नहीं डरते। क्या किया जाये, कुछ समझ में नहीं आता!"

"सब शोखी झाड़ देंगे चाचा! घबड़ाओ मत।"

"कैसे शोखी झाड़ोगे भैया ? अब तो रोब दाब मानते ही नहीं। चट लड़ने को तैयार हो जाते हैं। यही उस दिन भवनाथ

अपने मजदूर रामफल को बुलाने गया था। खेत में काम था। मगर रमफलवा अकड़ गया। उलटे बाप-बेटा मिलकर भुवनाथ को आंख दिखाने लगे। किसी तरह इज्जत आबरू बचा के आ गया, नहीं तो न जाने क्या हो जाता।"

भुवन ने फिर धीरज बंधाते हुए कहा — "चिंता न करो देवकी चाचा! हमारी भी पारी आयगी। तब देख लेंगे।"

"कब पारी आयगी पता नहीं। हमारे मरने के बाद आई भी तो क्या लाभ?"

"नहीं चाचा, तुम्हारी जिंदगी में ही आयगी।"

अब देवकी नाथ कुछ आश्वस्त हुए। एक बार फिर नश के नशे में छींक कर बोले—"देखो भुवनबाबू! घोर कलियुग आ गया। इस हरिहरपुर में इतना पाप हो रहा है, मगर फिर भी भगवान की आंख नहीं खुलती। पार्वती ने एक मलेच्छय लड़की अपने घर में घुसा ली। जात-धर्म की तनिक भी परवाह नहीं की। और तिस पर से यह सुमना न जाने कहां से किस जात की लड़की ब्याह लाया है। कहते हैं कि खत्री की लड़की है। सो भी विधवा और छुआछूत का विचार तो कतई रखा ही नहीं। उस दिन मैंने दूर से देखा कि भजुआ चमार के हाथ पानी मंगवा कर घटा-घट पीता जा रहा है। कहो तो! इतना अन्याय! फिर भी भगवान का अवतार नहीं होता।"

भुवन ने देवकी नाथ के विस्मय को और बढ़ाते हुए कहा— "तुम तो केवल पानी पीने की बात कह रहे हो देवकी चाचा! अरे, वह तो अपने मजदूर चमारों के साथ एक पाँत में बैठके खाता भी है।"

देवकीनाथ चौंक कर दोनों कान पर हाथ रखते हुए बोले— "क्या कहा? चमारों के साथ एक पाँत में बैठके खाता है? राम राम! सुनने से भी पाप लगता है। घोर कलियुग, घोर कलियुग! हे भगवान!"

गाँव के धनियों का मुंह-फटा विदूषक रामनारायण वहाँ मौजूद था। वह सबकी पोल जानता था। सुमन के संसर्ग से उसकी वह विदूषक वृत्ति अब मंद पड़ती जा रही थी। देवकीनाथ और भुवन की बातें सुनकर उसकी देह में आग लग गयी। बड़ी निर्भीकता से बीच में ही बोल पड़ा —"अपने को सब धरमराज का नाना ही समझता है न ! तभी तो अपना पाप, अपना अपराध किसी को दिखाई नहीं देता। अगर दिखाई दे तो दुनिया नरक काहे को बनी रहे ?"

सुन कर देवकीनाथ बाबू आग-बबूला हो गये। रामनारायण को फटकारते हुए बोले — "चुप ! तुझे कौन बुलाता है रे ?"

रामनारायण ने अकड़ कर जवाब दिया — "चुप क्यों रहूँ ? क्या मेरे मुंह नहीं है ?"

"मुंह है तो सम्हाल के बोल !"

"सम्हाल के क्यों बोलूं ? जो सच्ची बात है बता दी।"

"ऐसी बात से लोग लात खाते हैं।"

लात की बात सुनते ही रामनारायण गरम हो गया। तन कर खड़ा हो गया और बोला—"बड़े लात मारने वाले बने हैं ! कहे देता हूँ। इस भर्म को दिल से दूर कर दीजिये !"

देवकीनाथ सकपका गये। भुवन की ओर ताक कर बोले– "देखते हो न भुवन ! सुमना ने सब का शिर फिरा दिया है।"

रामनारायण फिर उसी प्रकार तने स्वर में बोला—"सिर फिरा दिया है तो बुरा क्या किया है ? सुमन बाबू गरीबों के देवता हैं। उनकी कानी अंगुली की कोई बराबरी नहीं कर सकता। हीरा हैं हीरा ! लाखों के मालिक हैं। चौदहों विद्या के निधान हैं। मगर अभिमान छू नहीं गया है। खुद एक मामूली मजदूर की तरह रहते हैं। उनकी बराबरी कौन कर सकता है ?"

अब भुवन रामनारायण की चुटकी लेते हुए बोला—"अब तो रामनराएन पूरा रजमेंट बन गया है। मालूम पड़ता है माल खूब हाथ लगता है। तभी तो सुमन राजा की तारीफ के गीत गाये जा रहे हैं!"

रामनारायण ने मुंह बना कर गर्दन हिलाते हुए जवाब दिया — "गीत क्यों न गाऊँ? गाँव के सब गरीब उनके गीत गाते हैं, मैं भी गाता हूँ। आखिर मैं भी तो उन्हीं में से हूँ?"

अब भुवन की आँखें लाल हो गयीं! खिसियाये स्वर में बोला — "चुप! ज्यादा बकवास न कर! हम लोगों के दरवाजे पर अब मत आया कर!"

रामनारायण ने चट दाहिने हाथ का अंगूठा दिखाते हुए जवाब दिया — "अब घण्टा तुम्हारे दरवाजे पर आयेगा! यह लो, रामनारायण चलता है।" — कहकर दाहिने हाथ में लाठी लिये उठ खड़ा हुआ। फिर बायें हाथ की तर्जनी तान कर बोला — "लेकिन एक बात! खबरदार फिर कभी सुमन बाबू की निन्दा-शिकायत की तो! सुन लेने पर गांव के गरीब मानेंगे नहीं। तुम सब की टांग तोड़ देंगे।" — कहकर लाठी घुमाता वहां से चलता बना।

× × ×

अपनी जांघ की बगल की दाद खुजलाते हुए बुद्धू बोला—"अब गरीबों के दिन जरूर फिरेंगे भैया!"

भिखारी हाथ में सुरती चुनाते हुए बुद्धू को उद्देश करके बोला — "अरे ऐसा क्यों नहीं कहते कि फिर गये?" और फिर हलखोरी की ओर मुड़ कर बोला — "कहो चाचा, क्या मैं झूठ कह रहा हूँ?"

हलखोरी ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जवाब दिया — "बिल्कुल ठीक कह रहे हो भिखारी! सत्तर के करीब पहुंच चुका, मगर जिंदगी में न कभी ऐसा देखा, न सुना।"

जद्दू अब हलखोरी के बिल्कुल पास सरक कर बैठ गया, और बोला -- "कुछ दिन और जो जाओ हलखोरी चाचा, तो बहुत कुछ देख लोगे। हरिहरपुर के सब गरीब अमीर बन जायेंगे। रहने के घर पक्के बनेंगे। बच्चे पढ़-लिख कर बाबू बनेंगे।"

सुरजीत ने जद्दू को फटकारा -- "तुम क्या बच्चों को बाबू बनाना चाहते हो जद्दू भाई? बाबू बनना क्या अच्छा होता है? अपने बाबू जी आज बता रहे थे, हमें बाबू नहीं बनना चाहिये, मेहनती बनना चाहिये।"

भिखारी ने कहा -- "सो तो बाबू जो ठीक कहते हैं सुरजीत! देखते नहीं, बाबू जी कितनी मेहनत करते हैं। हम लोग कुदाली चलाने में थक जाते हैं, मगर बाबू जी थकने का नाम ही नहीं लेते।"

जद्दू फिर बोला — "और गारगी बहिन की बात क्यों छोड़ देते हो? जैसे साच्छात् लछमी माई की मूरत! एक लछमी और दूसरे नराएन। दोनों बेक्ती जैसे बइकुण्ठपुरी से गरीबों का दुख-दलिदर दूर करने आये हैं।"

सुरजीत ने तुनक कर कहा -- "अरे जद्दू भाई! क्या बक रहे हो? यह लछमी, नाराएन, बइकुण्ड, सरग, नरक सब बनावटी हैं, सब झूठ हैं। गरीबों को धोका देने के लिये यह जाल रचा गया है। क्या उस दिन तुम ने बाबू जी के मुंह से यह बात नहीं सुनी?"

जद्दू ने सकुचा कर कहा -- "अरे सुनी तो, मगर भूल गया। यह सब कहने और सुनने की आदत क्या इतनी जल्दी छूट जायगी सुरजीत? बस समझ लो कि भूल हो गयी।"

सुरजीत अपनी विजय पर फूल उठा। बड़ा खुश होकर बोला — "एक तुम्हें खुशखबरी सुनाऊं जद्दू भाई! लाहौर से

बाबू जी के ससुर की चिट्ठी आयी है। उन्हों ने अपनी सारी जायदाद एक लाख में बेच दी है। रुप्या ले के आ रहे हैं। उस रुपये से अपने यहां एक बहुत बड़ा अस्पताल और एक स्कूल बनेगा।"

जद्दू खुशी से उछल कर बोला — "वाह सुरजीत! तुमने बड़ी अच्छी खबर सुनाई! तब तो बीमार-सिमार पड़ने पर जरा भी तकलीफ न होगी। बड़ा आराम रहेगा।"

उधर से भिखारी बोला — "आराम तो हो ही जायगा। जुग-जुग जीते रहें हमारे बाबू जी! फिर हमें फिकिर किस बात की!"

हलखोरी ने कहा — "हाँ बेटे! तुम लोग सिरिफ बाबू जी के अमर होने के लिये मनाते रहो। सब रोग-सोग, दुख-दलिदर अपने आप दूर हो जायेंगे।"

अब सुरजीत हलखोरी को उद्देश करके बोला — "हां चाचा, तुम लोग बूढ़े हो, बड़े हो, यही असीरबाद मनाते रहो कि हमारे बाबू जी अमर हो जायें। हम सब गरीबों की उमर लेकर वह जीते रहें।" — कहते कहते उसका गला भर आया। फिर बोला — "जहां बाबू जी का पसीना, वहां हमारा खून! गांव के लुच्चे गुण्डे अमीर उन से जलते हैं। सुना है कि उन के पीछे भी लगे रहते हैं।"

सुनते ही भिखारी की देह में आग लग गयी। मारे क्रोध के उछल कर वह खड़ा हो गया, और बोला — "कौन लुच्चा उनके पीछे लगा है? जरा नाम तो बता दो सुरजीत! उसकी टांग न तोड़ डालूं तो मेरा नाम भिखारी नहीं!"

सुरजीत ने कहा — "अगर नाम का पता होता, तो सुरजीत अब तक यों ही बैठा नहीं रहता भिखारी भाई! लेकिन एक बात! बाबू जी की सखत मनाही है कि हम लोग कोई

उत्पात-उपद्रव न मचावें। नहीं तो सारा काम खराब हो जायगा। सुनते हो न भिखारी ? ख्याल रखना !" — फिर हलखोरी की ओर मुड़ कर बोला — "अच्छा चाचा, अब चलता हूँ। देर हो रही है। बहिन जी गुस्सा हो रही होंगी। उनका हुकुम है कि मैं रात-दिन हर घड़ी बाबू जी के पास रहूँ। मगर बाबू जी जबर्दस्ती मुझे छुट्टी दे देते हैं। कहते हैं, 'जा सुरजीत ! गाँव में टहल-फिर कर जरा मन बहलाओ।' कहो चाचा, कितने अच्छे हैं हमारे बाबू जी !" — कहकर डबडबायी आँखों से वह उठ खड़ा हुआ, और दाहिने हाथ में लम्बी लाठी लिये पार्वती के घर की ओर लम्बे डेग बढ़ाता चल पड़ा।

: ४० :

पूरे नौ महीने बीत चुके थे। दोपहर का समय था। लाला किशनचन्द और सुमन एक साथ बैठ के खाना खा रहे थे। लालाजी को उनकी पुत्री गार्गी पंखा झल रही थी, और सुमन को उसकी स्नेहमयी जीजी। सरोज के जिम्मे परोसने का काम था। रसोई तैयार करने में पंजाबी, बिहारी आदि कई तरीके इस्तेमाल होते। सरोज जब-तब साहेबी तरीका भी इस्तेमाल कर बैठती। भोजन बनाने का भार मुख्यतः गार्गी और सरोज पर था। पार्वती भी जब-तब जाके कुछ मदद कर आती। आदेश और निर्देश दे आती। इस प्रकार पूरे प्रेम और तत्परता से तैयार की गयी रसोई को लालाजी और सुमन स्वाद ले-लेकर खा रहे थे। और अत्यंत प्यार भरे आग्रह के साथ सरोज उनके आगे परोसती जा रही थी।

अब सुमन मुस्कुराते हुए बड़े प्रेम से पार्वती को उद्देश करके बोला —"कहो दीदी ! तुम लोगों की हड्डी तोड़ मेहनत बरबाद तो नहीं गयी ?"

पार्वती ने भी मुस्कुरा कर जवाब दिया — "नहीं सुम्मू बिल्कुल नही।"

"अब तो अपने सुमना के पागलपन को तुमने माफ कर दिया न ?"

"नहीं तब तक माफ नहीं करूँगी, जब तक आराम की साँस लेते तुम्हें देख नहीं लूँगी।"

"इस जीवन में अभी आराम कहाँ दीदी ?"

"तो फिर आराम आयगा कब ?"

"जब मेरा सपना पूरा हो जायगा।"

"वह सपना पूरा होगा कब ?"

"जब संसार से गरीबी मिट जायगी।"

"बहुत लम्बा सपना है सुम्मू !"

"लंबा जरूर है दीदी, लेकिन पूरा होना असंभव नहीं।"

पार्वती कुछ देर चुप रही। फिर एक लंबी साँस लेकर बोली — "असंभव है सुम्मू, असंभव है ! संसार की बात तो दूर रहे, एक हरिहरपुर की गरीबी मिटने में ही न जाने कितने दिन लग जायेंगे।"

सुमन ने मुस्कुराते हुए कहा —"असंभव नहीं है दीदी ! अपना आशीर्वाद और सहयोग देती जाओ। फिर देख लेना, तुम्हारा सुमन कितनी जल्दी हरिहरपुर से गरीबी को उखाड़ फेंकता है।"

दीदी जरा मीठी तुनक के साथ बोलीं — "अब तू और क्या सहयोग हम से चाहता है ? तुम ने ढेले तक फोड़वा लिये !" फिर गार्गी तथा सरोज की ओर संकेत करके बोली — "और इन फूल सी सुकुमार लड़कियों तक से जेठ की कड़कती धूप में खेतों के कंकड़-पत्थर तुड़वा डाले ! फिर बता, और क्या तू हम लोगों से चाहता है।"

अपनी दीदी के इस उपालंभ पर सुमन हँस पड़ा। बोला—"अब ढेले नहीं फोड़ने पड़ेंगे दीदी! वह काम तो अब समाप्त हो गया।"

"समाप्त कैसे हो गया? देख तो [illegible] कि अभी पचासेक बीघे जमीन यों ही परती पड़ी है। लेकिन एक बात कहे देती हूँ! अब मैं अपनी सरोज और गार्गी को ढेले फोड़ने नहीं जाने दूंगी।"

सुमन फिर हंस पड़ा। हंसते हुए बोला—"अच्छा न जाने देना। इन्हें घर की रानी बना कर रखना।"—कहकर उसने गार्गी और सरोज की ओर एक मुस्कुराती नजर दौड़ायी।

गार्गी और सरोज दोनों ही हंस पड़ीं। उन्हें हंसते देख पार्वती पुनः उसी प्रकार मीठे तुनक भरे स्वर में बोली—"यह छोकड़ियाँ तो घर की रानी बनने से रहीं। अभी तुम कुदाल ले के निकलो, कि ये हाथ में मुंगरा ले के चट तुम्हारे पीछे हो जायेंगी। और तब मैं ही कैसे बैठी रहूँगी? इनके पीछे मुझे भी जाना ही पड़ेगा। ये छोकड़ियां मुझ से जो न करा लें!"

इस बार पार्वती को छोड़ कर सब जने एक साथ ठठा कर हंस पड़े। हंसी का कहकहा शांत होने पर सुमन बड़े प्यार के साथ अपनी दीदी से बोला—"नहीं दीदी, अब सचमुच ढेले फोड़ने की जरूरत नहीं है।"

दीदी बोलीं—"तो क्या उस पचास बीघे जमीन को यों ही परती छोड़ दोगे?"

"नहीं दीदी, परती क्यों छोड़ूंगा?"

"तो फिर क्या करोगे? क्या गांव बसाओगे?"

सुमन खुशी से उछल कर बोला—"वाह दीदी! कैसे तुम मेरे मन की बात समझ गयीं? तुम्हें किसी देवी-देवता का इष्ट तो सिद्ध नहीं है?"

उधर सुरजीत एक तरफ बैठा हुआ इनकी बातें सुन रहा था। चट बोल पड़ा — "हां बाबू जी ! बहिन जी को सचमुच देवी-देवता सिध हैं ! तभी तो उस दिन सपना हुआ था कि बाबू जी आ रहे हैं ?"

पार्वती सुरजीत को मीठी फटकार जताती हुई बोली — "चुप हरबोंगा ! मैं तो अब देवी-देवता मानती भी नहीं। सपने की बात तो इस देवी ने बताई थी !" -- कहते हुए सरोज की ओर उसने अंगुली का इशारा कर दिया।

सरोज बेचारी लजा गयी। कनपट्टी तक उसकी लाल हो गयी। निगाहें नीची हो गयीं।

पार्वती ने चट उठ कर सरोज की लज्जावनत ठोडी पकड़ ली, और बड़े प्यार के स्वर में बोली — "पगली ! लजाती क्यों है ? क्या यह झूठ है ?" उसकी ठोडी पकड़े ही फिर लालाजी की ओर मुड़ कर बोली -- "इसने तुम्हें भी सपने में देखा था चाचा जी !"

लालाजी अपनी सफेद लम्बी दाढ़ी को बायें हाथ से सहलाते हुए बोले -- "हां बिटिया ! है तो सचमुच देवी ही। जीवन में ऐसी भली लड़की कभी देखी नहीं बिटिया !" -- कह कर लज्जा से दबी सरोज को प्यार भरी निगाह से निहारने लगे।

अब सुमन पार्वती को उद्देश करके बोला — "आखिर गांव बसाने की बात तुम्हारे मुंह से निकल ही गयी दीदी ! मानो अपने आप मुझे तुम्हारा आशीर्वाद मिल गया। स्कूल और अस्पताल का मकान भी बनना शुरू हो ही गया है। धीरे-धीरे सब ठीक होता जा रहा है।"

पार्वती अब सुमन से कुछ न कहकर लालाजी से बोली — "देखो तो चाचाजी, जरा इसका पागलपन ! गाँव तो है ही ! फिर एक नया गांव बसाने की क्या जरूरत पड़ गयी ?"

जवाब में लालाजी बड़े प्यार भरे स्वर में बोले — "मुझ से क्या पूछती हो बिटिया ? मैं तो अपने नरेन का हाथ कभी रोकता नहीं। उसने जो कुछ सोचा होगा, अच्छे के लिये ही सोचा होगा !"

पार्वती तुनक कर बोली — "तुम्हारी तो चाचाजी, उस की हर बात में मानो हां करने की आदत पड़ [illegible] ! इतना लाड-प्यार और दुलार मैंने कहीं नहीं देखा !"

सभी हँस पड़े। इतनी देर बाद अब गार्गी पार्वती की ओर ताक कर बोली — "मगर दीदी ! तुम भी तो इस मामले में चाचाजी से रत्ती भर भी पीछे नहीं हो।"

पार्वती ने कपार पर हाथ रख कर जवाब दिया — "अरी क्या करूं ? रहा जो नहीं जाता ! बड़ा जिद्दी है। बात न मानूं तो फिर कहीं चुपके से भाग निकलेगा।"

दीदी की बात सुनकर सुमन बड़े जोर से ठठा कर हँस पड़ा। बोला — "नहीं दीदी, अब नहीं, अब मेरे पैरों की बेड़ियां बड़ी मजबूत बन गयी हैं। तुम हो, गार्गी है, सरोज है, चाचाजी हैं, और तिस पर से गांव के सारे गरीब-गुरबा ! अब तुम्हीं कहो, इन्हें छोड़ कर कहाँ भाग जाऊंगा ?" — कहते-कहते एकाएक सुमन का गला भर आया।

सुमन के शब्द करुणा और ममता के तीर बनकर सब के दिलों में जा चुभे। गार्गी, सरोज, पार्वती — सहसा सब के कपोलों पर आंसू मानो मोतियों की टूटी लड़ी सी लुढ़क पड़े।

सुमन सम्हल गया। बड़े प्रेम से दीदी की ओर ताक कर बोला — "देखो दीदी ! मजदूरों के मुहल्लों में तो कभी कभी जाती ही हो तुम ! कितनी तकलीफ है उन्हें ? किस तरह छोटे-छोटे घरौंदों में पांच-पाँच दस-दस आदमी पड़े रहते हैं ! कितनी गंदगी है वहां ? किस तरह उन्हें अभी मलेरिया सता रहा है ?"

पार्वती ने कहा — "सो तो ठीक कह रहे हो सुम्मू !"

सुमन ने कहा -- "इन्हीं लोगों के लिये एक सुन्दर स्वच्छ गांव बनाने की जरूरत है दीदी !"

पार्वती बोली -- "अच्छा, गांव तो बसा दोगे ! उनके रहने के लिये अच्छे घर भी बन जायेंगे। मगर इस मलेरिया, हैजा और प्लेग से इनका निस्तार कैसे होगा ? न जाने इतना रोग कहां से आ गया ? हर साल हैजा, हर साल प्लेग और हर साल मलेरिया !"

सुमन ने कहा — "सब ठीक हो जायगा दीदी ! गरीबी के साथ ही हरिहरपुर से ये सारी बीमारियाँ भी भाग जायेंगी। और इसी लिये तो अपना अस्पताल बन रहा है। स्कूल भी बन रहा है।"

पार्वती -- "मगर स्कूल और अस्पताल तो गाँव में पहले से ही मौजूद हैं। न इन से गांव की गरीबी गई है, न बीमारी।"

सुमन—"लेकिन ये स्कूल-अस्पताल गरीबों के लिये नहीं बने हैं दीदी।"

पार्वती — "लेकिन किसी के लिये रोक तो नहीं है ! सभी उस स्कूल में पढ़ सकते हैं। सभी उस अस्पताल से दवा ले सकते हैं।"

सुमन—"नहीं दीदी ! सभी उस स्कूल में नहीं पढ़ सकते। सभी उस अस्पताल से दवा नहीं ले सकते। बताओ तो उस स्कूल में गरीबों के कितने बच्चे पढ़ते हैं ?"

"गरीब अगर खुद स्कूल में न पढ़ने जायें, तो स्कूल का क्या दोष ?"

सुमन हँस कर बोला — "बड़ी भोली हो दीदी ! क्या तुम नहीं जानती कि इन स्कूलों में पैसे लेकर पढ़ाया जाता हैं ? कहां से वे फीस और किताबों के लिये पैसा लायेंगे ? अपना पेट भरना तो मुश्किल है !"

पार्वती चुप हो गयी। उसे याद आ गया कि गांव का सब से तेज लड़का रोहिणीरमण किस प्रकार फीस और किताब का पैसा न जुटने के कारण पढ़ना छोड़ कर भैंस चराने लगा था! पार्वती को दया आ गयी। उसने उसे पढ़ने का खर्चा देना स्वीकार कर लिया। आज वही रोहिणीरमण मैट्रिक परीक्षा में विश्व-विद्यालय में प्रथम आकर पटने के इंजिनियरिंग कालज में शिक्षा पा रहा है।

कुछ देर बाद पार्वती ने धीरे से पूछा — "पताल में तो गरीबों को भी दवा मिलती ही है? बगैर पैसा के ही।"

अब सुमन के कुछ कहने से पहले ही सुरजीत बोल पड़ा— "नहीं बहिनजी, नहीं! बगैर पैसा के दवा गरीबों को नहीं मिलती। डागदर साहेब कहता है कि मुफत की दवा फायदा नहीं करती। और होता भी ऐसा ही है बहिनजी। बिना पैसा वाले गरीबों को दवा के बदले पानी देकर टरका देता है।"

सुमन ने कहा — "देखो दीदी! तुम्हारी गार्गी बड़ी भारी डाक्टर है। डाक्टरी की सब से बड़ी परीक्षा इसने पास की है।" — कहकर उसने गार्गी की ओर मुस्कुराती आंखों से देखा।

गार्गी कुछ लजा सी गयी। पार्वती को बड़ा अचरज हुआ। बोली — "सच कह रहे हो सुम्भू? मजाक तो नहीं कर रहे हो?" फिर लालाजी को उद्देश करके बोली — "सच सच बताना चाचाजी! क्या गार्गी सचमुच डाक्टरी पास है?"

लालाजी बड़ी गम्भीरता से शिर हिलाते हुए बोले — "हाँ बिटिया! मेरा नरेन तुम से झूठ क्यों बतायगा? सचमुच गार्गी एक बहुत बड़ी डाक्टर है। बंगाल में इसने लाखों के प्राण बचाये हैं।" और उसी कमरे के एक कोने में पड़े एक सूटकेस को संकेत करते हुए बोले—"और तुमने गौर नहीं किया? उस काले सूटकेस में डाक्टरी का ही औजार तो भरा पड़ा है!"

अब पार्वती से रहा नहीं गया। वह चट गार्गी से लिपट गयी। और सुमन की ओर ताककर उपालंभ भरे स्वर में बोली— "धन्य हो सुम्मू! इतने दिन इस बात को छिपाये क्यों रखा? तुम्हारे विचार को धन्य है! ऐसी फूलसी सुकुमार, इतनी बड़ी डाक्टर से तुमने ढेले फोड़वाये?" फिर आँखें गीली करके गार्गी का गला पकड़े ही वह बोली — "नहीं रानी, अब मैं तुम्हें खेत में ढेले फोड़ने नहीं जाने दूंगी। सुम्मू भले ही नाराज हो जाय।"

सुमन हँस पड़ा। हँसते हुए बोला — "बता तो दिया दीदी, कि ढेले फोड़ने का काम अब समाप्त हो चुका है। चिन्ता न करो। अब तुम्हारी रानी को ढेले नहीं फोड़ने पड़ेंगे।"

पार्वती ने गार्गी का गला छोड़ दिया। सुमन की ओर तर्जनी तान कर बोली — "हाँ! सो ही! याद रखना!"

सुमन फिर हंसा। बोला — "पहले जरा अस्पताल बन कर तैयार हो जाने दो दीदी! फिर अपनी रानी की करामात देख लेना।"

पार्वती ने कहा — "अपनी रानी की करामात देखने से बाकी थोड़े ही हूँ! आते ही मेरा घर उजाला कर दिया। परती जमीन को सोना बना दिया। और अब भी तो मेरे मना करने पर बीमार मजदूरों के घर जाके दवा दे ही आती है। मगर तब भी मुझे यह नहीं मालूम था कि रानी मेरी इतनी बड़ी डाक्टर है! ..... अच्छा सुम्मू! मेरी रानी तो डाक्टरी करेगी, और मैं क्या करूंगी?"

सुमन ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"तुम फिर ढेले फोड़ने में लग जाना।" पार्वती मुँह चमका कर बोली — "इस्! ढेला फोड़ूँगी! अब नहीं। चाहे लाख जतन करो!"

"और यदि सरोज फोड़ने चल पड़े तब? तब तो तुम उसके पीछे चल ही पड़ोगी?"

सरोज हँस पड़ी · फिर चुप हो गयी। पार्वती उसकी ओर ताक कर बोली — "नहीं, अब सरो भी ढेला नहीं फोड़ेगी। अपनी गार्गी जीजी के साथ डाक्टरी करेगी। मेरी सरो क्या किसी से कम पढ़ी-लिखी है ?"

"और सरोज के साथ तुम भी डाक्टरी में लग जाना दीदी !"

"धत् ! मैं क्या डाक्टरी करूंगी ? मैं क्या पढ़ी-लिखी थोड़े ही हूँ ?"

"गार्गी तुम्हें बहुत जल्द पढ़ा-लिखा देगी।"

"दुत् पगला ! बूढ़ी गाय को लटकन। पैंतालीस की उमर हो गयी। अब मैं पढ़ूंगी !"

"तुम से भी बूढ़े लोग पढ़ते हैं दीदी !"

"पढ़ते हैं तो पढ़ने दो। मैं नहीं पढ़तो।"—कहकर पार्वती ने मुंह फिरा लिया।

सुमन मुस्कुराते हुए फिर बोला — "अच्छा दीदी ! पढ़ो न सही। इतना तो कर सकोगी ?"

"कितना ?"

"यही कि अस्पताल में अगर दीन-दुखिया बीमार पड़कर आये, तो उसकी सेवा-शुश्रूषा तो कर दोगी ?"

"हां, सो कर दूंगी।"

"बस, यही चाहिये दीदी। इस से बढ़ कर पढ़ना और होता ही क्या है ?"

"इसमें पढ़ने की क्या जरूरत है सुम्मू ? यह काम तो हमारे जन-मजदूर की औरतें भी कर लेंगी।"

"हां दीदी ! जरूर कर लेंगी। लेकिन सेवा करने के नये तौर-तरीके तो सीखने ही पड़ेंगे।"

"वह कैसा तौर-तरीका है भैया ?"

"सो गार्गी सब सिखा देगी। पलक मारते सीख जाओगी दीदी!"

"बहुत अच्छा! गार्गी डाक्टरी करेगी। सरोज भी करेगी, और हम गंवार औरतों को सेवा का काम सिखाया जायगा। मगर तुम मर्द लोग क्या करोगे सुम्मू?"

सुमन फिर हँसा। गार्गी और सरोज भी हँस पड़ीं!

सुमन बड़े स्नेह से अपनी दीदी को ताकते हुए बोला — "हम मर्द लोग भी सेवा का ही काम करेंगे दीदी! चाचाजी, मैं और विनोद इन जन-मजदूरों को पढ़ायेंगे, और देखते ही हो कि पढ़ाना शुरू भी कर दिया है।"

पार्वती जरा हाथ चमका के बोली — "ये बुढ़ल्ले तो इस जन्म में पढ़ने से रहे। अरे बाप रे! पचास-पचास साल के बूढ़ों को तुम जबर्दस्ती पढ़ाने बैठते हो! मुझे तो तेरी चाल पर बड़ी हँसी आती है सुम्मू!" — कहकर वह हंसते-हंसते लोट पड़ी।

फिर लालाजी की ओर मुड़ कर वह बोली — "अच्छा तुम्हीं बताओ चाचाजी! मैं क्या झूठ कह रही हूँ?"

लालाजी उसी प्रकार अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते धीरे से गर्दन हिला के आहिस्ते से बोले — "क्या बताऊं बिटिया! मैं तो बूढ़ा हो गया। सत्तर के करीब पहुंच गया। मगर सच कहता हूँ बेटा! नरेन का काम और उत्साह देख कर इस बूढ़े के दिल में भी उत्साह भर आता है। कुछ करने की तबियत हो उठती है।"

पार्वती लालाजी की ओर दायां हाथ चमका कर अत्यन्त प्यार भरे उपालम्भ के स्वर में बोली — "क्यों नहीं! तुम तो सुमन का ही पक्ष लोगे न! दुलरुआ पोसपुत और शिरचढ़ा दामाद जो ठहरा!" — और कहकर फिर हंसने लगी।

अब सुरजीत से नहीं रहा गया। बोल पड़ा — "मगर बहिनजी जो भी कह लें, बूढ़ों में पढ़ने का जोश कम नहीं है। आज हलखोरी चाचा कह रहे थे, भई मेरा भी मन करता है पढ़ने का।"

अब सुमन सब को शांत करते हुए बोला — "देखो दीदी! बूढ़ों के लिये मुझे उतनी चिंता नहीं, जितनी कि जवानों और बच्चों के लिये है। बूढ़े तो अपना कम कर चुके। उन्हें तो अब बैठ के आराम से खाना है।"

पार्वती ने कहा — "तो फिर इन बूढ़ों को पढ़ाते क्यों हो? बिठा के खिलाया करो।"

सुमन — "जवानों और बच्चों में जोश दिलाने के लिये इन्हें पढ़ाने बैठता हूँ दीदी। और कुछ दिन बाद बैठ के तो खाना ही है इन्हें। जरा जमीन को सोना तो उगलने दो।"

पार्वती — "सो तो तुम्हारी जमीन सोना उगलने लग भी पड़ी है सुम्मू। किसे पता था कि यह महापरती जमीन एक साल में ही इतना उपजने लगेगी!"

सुमन — "सो ही देख लो दीदी! धरती माता मेहनत मांगती है। तुम लोगों ने जी तोड़ कर मेहनत की। भला वह कैसे निष्फल जायगी?"

पार्वती—"मेहनत तो बहुतेरों को करते देखती हूँ सुम्मू! मगर बेचारों का पेट भी नहीं भरता! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे हाथ में ही कोई करामात है।"

सुमन हंस पड़ा। बोला — "करामात तो जरूर है दीदी। लेकिन वह करामात जादू-टोने का नहीं है। मैंने खेती की विद्या बड़ा दिल लगा कर पढ़ी है दीदी!"

"दुत् पगला! खेती की भी कहीं विद्या होती है?"

"खेती की विद्या बहुत बड़ी विद्या होती है दीदी!"

"विद्या होती है, मगर पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती। बगैर पढ़े ही आ जाती है।"

"बगैर पढ़े नहीं आती दीदी। कई बड़े शहरों में इसके बड़े-बड़े स्कूल और कालेज हैं।"

"मगर ये किसान मजदूर किस स्कूल-कालेज में खेती पढ़ने जाते हैं ? बगैर पढ़े ही तो इस विद्या में धुरंधर बन जाते हैं।"

सुमन ने मुस्कुराते हुए कहा — "नहीं दीदी ! ये लोग नहीं जानते। और जानते भी हैं, तो इनकी विद्या बहुत पुरानी है। बूढ़ी हो गयी है। अब उस से काम नहीं चलने का।"

"मगर उसी बुढ़िया विद्या से तो सब का काम चल रहा है।"

"काम चल रहा है, लेकिन मरते-जीते हुकुर-हुकुर करते।"

अब पार्वती जरा झुंझला कर बोली — "तो फिर अपनी विद्या सब को सिखा क्यों नहीं देते ?"

सुमन ने हँसकर जवाब दिया—"और इसी लिये तो स्कूल बना रहा हूँ दीदी। उसमें और चीजों के साथ खेती की विद्या सब को सिखायी जायगी। और तब उस विद्या की करामात देख लेना। हरिहरपुर का चप्पा-चप्पा सोना उगलने लगेगा।"

सुरजीत बोला — "तब तो बाबू जी, हरिहरपुर के बाबू-भैया डाह के मारे मर ही जायेंगे। अभी से उनका जी जलने लगा है।"

पार्वती—"जी क्यों न जले ? मकई-मड़ुआ से बखार भर गया। धान के खेत लहलहा रहे हैं। गाँव के और किसी का खेत इस साल आबाद भी नहीं हुआ। गांव की सारी लक्ष्मी मानो अकेले सुमन के खेत में लोट रही है। इतने पर भी अगर जी न जले, तो क्या हो ?"

सुमन—"लेकिन इसमें जी जलने की बात तो है नहीं दीदी ! हाथ-पर-हाथ धरे रह कर जी जलाने से लाभ क्या ?"

पार्वती—"तो फिर क्या करें बेचारे ?"

सुमन—"वही करें जो हम लोग कर रहे हैं। भगवान के भरोसे बैठे न रहकर अपनी हिकमत से काम लें।"

पार्वती — "सब ने तुम्हारी ही जैसी विद्या पढ़ी हो तब न ?"

सुरजीत—"देवकी बाबू का नौकर भुनुआ कह रहा था, हमारे मालिक भी सुमन बाबू का ही तरीका इस्तेमाल करने की सोच रहे हैं। वे भी अपने खेतों में कुएँ खुदवायेंगे। बड़े बड़े पानी के कल गड़वायेंगे।"

पार्वती—"केवल कुएँ खोदने और कल गाड़ने से क्या होगा ? पहले इतने जन-मजदूर कहाँ मिलेंगे ?"

सुमन—"जन-मजदूर मिलेंगे क्यों नहीं दीदी ?"

पार्वती—"मिलेंगे कैसे ? इन मजदूरों को अब तुम्हारे यहाँ काम करने का चश्का जो लग गया है ! तुम इन्हें छोटे-बड़े भाई की भाँति मानते हो। उनके साथ मिलकर काम करते हो। उनके बीच बैठ के खाते हो, और ऊपर से कस कर मजदूरी देते हो।"

सुमन—"केवल मजदूरी ही नहीं, खेत की उपज में हर मजदूर को हिस्सा देने की बात भी मैं सोच रहा हूँ दीदी।"

सुमन की बात सुनकर पार्वती चौंक सी गयी। बोली—"ऐं ! क्या कह रहे हो ? इतनी चोखी मजदूरी, तिस पर से उपज का हिस्सा ? कैसी बात कह रहे हो सुम्मू ?"

"ठीक कह रहा हूँ दीदी !"

"ठीक कैसे है ? गाँव में और लोग जितनी मजदूरी देते हैं, उसका ड्योढ़ा तुम देते हो ! बेकारी का उन को डर नहीं। और सदा सनातन से चली आई रीति के खिलाफ हफ्ते में उन्हें

एक दिन की छुट्टी देते हो, चोखी मजदूरी के साथ ! और तिस पर फिर उपज का हिस्सा ?"

"हां दीदी ! लेकिन जैसे तुम समझ रही हो वैसे नहीं ।"

"तो फिर कैसे ?"

"ऐसे कि, इन सबों की साल भर की मजदूरी निकाल करके जितनी रकम बच जायगी, उस में से काम के मुताबिक सब को हिस्सा मिलेगा ।"

अब पार्वती कुछ आश्वस्त हुई । लेकिन चुप रही ।

सुमन ने फिर हँस कर वहां बैठे सब लोगों की ओर दृष्टि दौड़ाते हुए कहा — "तुम को भी, मुझ को भी, गार्गी को भी, सरोज को भी, और सुरजीत को भी सब को हिस्सा मिलेगा दीदी !" — कहकर हँस पड़ा ।

इतनी देर बाद अब सरोज मुस्कुराती हुई बोली—"लेकिन चाचाजी को क्यों छोड़ दिया आप ने ?"

सुमन ने मुस्कुरा कर जवाब दिया — "बूढ़ों को हिस्से का अधिकार नहीं । उन्हें बैठे-बैठे केवल खाने का अधिकार है ।"

सुन कर सभी हँस पड़े । लालाजी भी हँसे ।

फिर सुमन ने पार्वती को उद्देश करके कहा — "दीदी ! तुम्हारे सुमन ने अपनी जायदाद समाज को अर्पित कर दी है । बल्कि यों कहो कि समाज की चीज समाज को वापिस कर दी है ।"

पार्वती सुमन की ओर कुछ देर भौंचक्की सी ताकती रहने के बाद बोली — "तुम्हारी बात समझ में नहीं आई सुम्मू !"

"समझ में आ जायगी दीदी, अगर तुम भी अपने सुमन की तरह बिल्कुल फक्कड़ बन जाओ । और चाचा जी की ही तरह अपनी सारी जायदाद जनता को दान कर दो ।"— कहकर लाला जी की ओर ताकने लगा ।

लाला जी मुस्कुराते हुए बोले — "लेकिन मैंने तो अपनी जायदाद अपने नरेन को दी है, जनता को नहीं!"

सुमन ने भी मुस्कुराते हुए जवाब दिया — "लेकिन अपने नरेन की फक्कड़ पंथी तुम पूरी तरह जानते हो! जान-बूझ कर तुमने अपनी जायदाद नरेन के हवाले की है।"

लाला जी ने कहा —"सो तो ठीक कह रहे हो बेटा! बड़ी खुशी हो रही है तुम्हारे इन कामों को देखकर।"

पार्वती लेकिन फिर भी आश्चर्यान्वित स्वर में बोली — "तुम्हारी बात अब भी समझ में नहीं आई सुम्मू! समाज की चीज समाज को वापस करदी! तो क्या यह सारी चीज समाज की है? हमारी नहीं?"

"हाँ दीदी, समाज की है। और समाज के एक अंग के रूप में हमारी भी है। इस जमीन-जायदाद से हमारा भी उतना ही संबंध है जितना समाज के और लोगों का। और सच पूछो तो जो जितना अधिक परिश्रम करे उसका उतना ही अधिक संबंध है। और उसे मिलना भी उतना ही अधिक चाहिये।"

"मगर धनी-गरीब तो अपने अपने भाग्य से होते हैं?"

"नहीं दीदी, भाग्य से नहीं होते। मनुष्य मनुष्य को गरीब बनाता है स्वयं धनी बनने की धुन में।"

"तो क्या यह भाग्य-वाग्य की बात सब झूठ है?"

"झूठ-सच के फेर में मैं नहीं पड़ना चाहता दीदी! और मैं तो इसे झूठ ही समझता हूँ।"

"झूठ क्यों समझते हो?"

"हाँ दीदी! अगर झूठ न समझूं, तो दुनिया को बदलने की बात करनी भी छोड़ दूं।"

"बात करना क्यों छोड़ोगे? सभी करते हैं, तुम भी करो। तकदीर के अलावा तदबीर की बात भी तो कही ही गई है?"

"तदबीर असली चीज है दीदी ! तकदीर की बात नकली है, धोखे की टट्टी।"

पार्वती कुछ गिड़गिड़ाते से स्वर में बोली — "ना ना सुमन, ऐसी बात न कहो। तकदीर भी कोई चीज जरूर है।"

"अगर कोई चीज है तो उसे धरती के नीचे दफना दो दीदी ! उसे मान कर चलने में तो अपने आप से धोखा करना होगा। फिर दुनिया को बदलने या सुधारने की बात प्रपंच और पाखण्ड के सिवा कुछ नहीं रह जायगी दीदी !"

"मगर सुम्मू ! दुनिया को बदलने की बात न करके भी तो दुनिया को सुखी बनाया जा सकता है ? दुनिया का दुख-दरिद्र दूर किया जा सकता है ?"

"कैसे दीदी ?"

"ऐसे कि, यदि ये धनी-मानी सम्हल जायें, इन के दिलों में दया-माया उत्पन्न हो जाय, उत्पन्न करने की कोशिश की जाय, तो फिर क्यों नहीं यह दुनिया स्वर्ग बन जाय ? अमीरी-गरीबी के रहते भी क्यों नहीं अमीर-गरीब का भेद-भाव मिट जाय ?"

सुमन जरा हंसा। हंसकर बोला — "तुम स्वयं दया-माया की देवी हो दीदी ! समझती हो कि दुनिया को भी कह-सुनकर देवी-देवता बनाया जा सकता है। यह तुम्हारी भूल है दीदी !"

"भूल क्यों है ? शास्त्र-पुराण में भी तो ऐसी बातें कही ही गई हैं। मैंने कोई नई बात तो नहीं कही ?"

"शास्त्र में कही हो, चाहे पुराण में कही हो, परिणाम तो इन बातों का कुछ निकला नहीं दीदी ! दुनिया तो नरक की नरक ही बनी रही।"

"केवल कहने-सुनने की बात नहीं करती हूँ सुम्मू ! अपना जीवन, अपना आचार-व्यवहार, सब कुछ उसी प्रकार का बना लिया जाय, जिस से कि दूसरों पर प्रभाव पड़े।"

"यह सब करके देख लिया है दीदी ! हजारों वर्षों से तुम जैसी महामानवियां और महामानव उत्पन्न होते आये हैं। उन्हों ने यह सब कुछ किया। करके देख लिया। फिर भी दुनिया की वही बेढंगी रफ्तार जारी है।"

फिर जरा रुककर सुमन बड़े प्रेम और श्रद्धा से अपनी दीदी को ताकते हुए बोला — "तुम जैसी देवियां इस दुनिया में बहुत कम हैं दीदी ! तुम मेरी बहन हो, मां हो, दीदी हो। माँ की गोद छिन गयी, माँ का प्यार छिन गया। तुम मेरी दीदी के अलावा मां भी बन गयीं। केवल मेरी ही नहीं, गाँव के सारे गरीबों की, सारे दीन दुखियों की।" — कहते-कहते सुमन का गला भर आया, आँखें सजल हो उठीं। फिर जरा सम्हल कर बोला — "बचपन में तुम्हीं जैसी एक देवी के मुँह से यह सब बातें सुनी थीं जो अभी मैंने कहीं हैं। उनका भी दिल तुम्हारी ही तरह दया-माया से भरा था दीदी। मेरी माँ थीं, ससार की माँ थीं, दुनिया के दीन–दुखियों की माँ थीं।" कहते-कहते एकाएक वह रो पड़ा।

पार्वती को समझते देर नहीं लगी कि सुमन किस देवी की ओर इंगित कर रहा है। क्योंकि वह स्वयं भी कई बार सुमन से मिलने के लिये चंद्रभानुपुर आश्रम में जा चुकी थी, माँ अन्नपूर्णा से मिल चुकी थी। माँ के व्यक्तित्व और चरित्र की छाप उसके हृदय पर अंकित हो गयी थी, जो लंबी विस्मृति की धूल-पर-धूल पड़ कर निरोहिन हो गयी थी। आज अचानक सुमन के आवेश भरे इंगित ने झंझा की तरह धूल की उन पुंजी-भूत परतों को एकाएक धो-पोंछ कर साफ कर दिया। मां अन्नपूर्णा की ममता और स्नेह मयी मूर्ति मानो उसकी आँखों के सामने खड़ी होके मंद-मंद मुस्काने लगी। अपनी ममतामयी चितवन से मानो अमृत के घड़े उड़ेलने लगी।

पार्वती ने कुछ और कहना ठीक नहीं समझा। वह नहीं चाहती थी कि अन्नपूर्णा देवी की चर्चा छेड़कर सुमन की व्यथा को उकसाया जाय। अपनी आँसू-भरी आंखें आंचल के छोर से पोंछती हुई वह बोली — "मेरी गोद का खिलौना! मेरा छोटा होकर भी तू मेरा गुरु है सुम्मू! न जाने तुम कौन हो? किस लोक के देवता हो? अच्छा तो लो आज मैं भी अपनी सारी जमीन-जायदाद समाज के नाम निछावर करती हूँ। समाज की चीज समाज को वापस करती हूँ। आज से मैं भी तुम्हारी ही तरह एक मजदूर के सिवा अपने को और कुछ नहीं समझूंगी। आज से पूरी तरह अपने को मजदूरों में मिलाती हूँ। सामूहिक स्वार्थ और सम्मान पर अपने वैयक्तिक स्वार्थ और स्वाभिमान की तिलांजलि देती हूँ।" — कहकर वह उठ खड़ी हुई। और उसके पीछे दूसरे भी उठ खड़े हुए।

: ४१ :

"कहो सुरजीत! अब और कितनी देर है?"

"किस बात की देर बुद्धू भाई?"

"अरे यही कि अपने नये गांव में हम लोग कब बसेंगे?"

"पंद्रह दिन और धीरज धरो बुद्धू भाई! बरसात शुरू होने के पहले ही सब ठीक हो जायगा।"

अपने मुँह के तमाकू की पीक एक तरफ फेंककर भिखारी बोला — "बुधुआ को मगर धीरज नहीं। अभी से अपना घर गिराने लगा है।"

बुद्धू ने ऐंठकर जवाब दिया—"ऐसा सड़ा घर लेके क्या होगा जब कि पक्का घर बन रहा है?"

भिखारी—"बन तो रहा है, मगर इसी बीच कहीं बारिस हो पड़े तब?"

बुद्धू—"तब तुम्हारे घर में घुस जाऊँगा।"

भिखारी—"घुसोगे तो मार खाओगे। रामू की माँ को जानते हो न, कैसी बिगड़ैल है ?" कहकर फिर उसने सुरती की पीक एक तरफ फेंकी।

बुद्धू—"बिगड़ैल है तो तुम्हारे लिये, हमारे लिये नहीं। हमारी भौजी हमें खूब चाहती है।" कहकर आंख मटका के वह हँस पड़ा। उसके साथ दूसरे भी हँस पड़े।

अब सुरजीत ने भिखारी को उद्देश करके कहा — "देखो भिखारी भाई ! यह बुरी आदत अब भी तुम से नहीं न छूटी ?"

भिखारी कुछ सकपका गया। डरते डरते बोला—"कौन सी बुरी आदत सुरजीत ?"

"यही कि जहाँ बैठते हो, पच-पच थूक फेंककर गंदा कर छोड़ते हो।"

"क्या करूँ सुरसीत ! अम्मल है। छूटते-छूटते न छूटेगी।"

बुद्धू बड़े गर्व से बोला — "अम्मल है तो क्या हुआ ? मैंने तो जिसी दिन बाबू जी के मुँह से सुना कि गांजा-भाँग, बीड़ी-सिगरेट, ताड़ी-शराब और सुरती-तमाकू बुरी चीज हैं, इसका अम्मल नहीं करना चाहिये, मैंने उसी दिन से कान ऐंठ लिया। अच्छा कहो तो सुरजीत, तुमने फिर कभी मुझे देखा है नशा करते ?"

सुरजीत—"नहीं बुद्धू भाई। नशा बड़ी बुरी चीज है। इसे छोड़ ही देना चाहिये !"

बुद्धू—"हमारे बाबू जी में कोई नशा नहीं, दुनिया का कोई ऐब नहीं।"

भिखारी—"अरे बाबू जी की क्या बात करते हो बुद्धू ! वो तो देवता हैं ! हम लोग उनकी देखाऊस क्या कर सकते हैं !"

बुद्धू तुनक कर बोला — "जरूर देवता हैं। और हम तो उन्हें देवता से भी बढ़कर मानते हैं। नशा के लिये बाबू जी ने

मना कर दिया है। उनका कहना तो मानना ही चाहिये। बाबू जी का कहना न माने, उसके जैसा पापी और दुनिया में होगा ही कौन ?"

इस पर भिखारी चूना-तमाकू से भरे अपने बटुवे को बड़े जोर से घुमाकर खेत की ओर फेंकते हुए बोला — "यह लो ! अब मैं कभी कोई नशा नहीं करूँगा।"

बुद्धू — "नाराज तो नहीं हो गये भिखारी भाई ?"

भिखारी — "नहीं रे ! नाराज क्यों होऊँगा ? बाबूजी का हुकुम क्या अकेले तू ही मानता है ?"

सुरजीत — "ठीक कहा भिखारी भाई ! अच्छा भिखारी भाई, तुमने सुना है न कि एक और मोटर-हल (ट्रैक्टर) अपने यहाँ आ रहा है ?"

भिखारी—"मैंने तो नहीं सुना भाई !"

बुद्धू —"तुम बहुत जल्दी किसी बात को भूल जाते हो भिखारी-भाई ! अरे परसों ही तो बाबू जी सब के सामने बता रहे थे। सात-आठ रोज में यहाँ पहुंच भी जायगा।"

भिखारी—"मगर सुरजीत ! एक मटर हल तो था ही, फिर दूसरा खरीदने की क्या जरूरत पड़ गई ?"

सुरजीत — "देखते नहीं कि अपने संघ की खेती अब कितनी बढ़ गई है ?"

भिखारी—"सो तो ठीक कहते हो सुरजीत ! बहिन जी ने भी अपनी सारी जमीन संघ में मिला दी है। गाँव के छोटे-मोटे बाबू-भैया भी अब संघ में मिलने को सोच रहे हैं, कितने मिल भी गये हैं।"

बुद्धू—"मिलेंगे क्यों नहीं, और मिलने को सोचेंगे क्यों नहीं ? नहीं मिलेंगे तो खायेंगे क्या अपना सिर ?"

भिखारी—"सो तो ठीक कहते हो। बाबू जी ने ऐसा जादू मारा कि सब का होश ठिकाने आ गया।"

बुद्धू—"होश का तो ठिकाने आना ही हुआ भिखारी भाई! किसी बाबू-भैया को जन-मजूर ढूंढे मिलता भी है? चोखी मजूरी देने पर भी।"

भिखारी—"और, अगर कोई दूसरे गाँव से मजूर बुला लाये, तो वह भी दो दिन बाद अपने संघ में आ मिलता है।"

बुद्धू—"मिलेगा क्यों नहीं? ऐसी आराम की चोखी मजूरी छोड़कर कौन अभागा उन बड़मानों के खेत में काम करने जायगा?"

भिखारी—"है तो सचमुच आराम की मजूरी। यह हल क्या है, हम लोगों की मट्टर गाड़ी है। आराम से काम करते हैं, और अपनी मट्टर गाड़ी पोंपियाते रहते हैं। बाप-जन्म कभी मट्टर गाड़ी पर चढ़े नहीं थे, सो बाबू जी के परताप से अब रोज सवारी कसते हैं। सिरिफ बूढ़े ही नहीं, लड़के-बच्चे भी।"

सुरजीत—"यह तो हल की मोटर गाड़ी है भिखारी भाई! कुछ दिनों में असली मोटर गाड़ी भी दौड़ाते फिरोगे!"

भिखारी—"हमारे बाबू जी की जिनगी बची रहे, फिर सब कुछ देख लेंगे, सब कुछ कर लेंगे। किसी बात की लालसा बाकी नहीं रहेगी।"

बुद्धू—"मगर दुनिया में भी एक से एक बढ़ कर अक्किल है सुरजीत! जिसने यह मटर-हल बनाया, वह कितना अकिलमंद रहा होगा? एक बार में हाथ-हाथ भर जमीन उखेलता चलता है। जितना काम साठ-सत्तर हल करते, उतना अकेले ही कर छोड़ता है।"

सुरजीत—"केवल एक हल मोटर की ही बात कहते हो बुद्धू भाई? अरे दुनिया में इस से भी बढ़ कर अचरज की चीजें बनी हैं।"

बुद्धू—"मगर हम लोगों को तो अभी पता नहीं है भाई!"

सुरजीत—"पढ़े होते तो सब पता होता।"

बुद्धू एक गहरी साँस लेकर बोला —"अब तो इस जनम में पढ़ने से रहे। बाल बच्चे पढ़ेंगे।"

सुरजीत—"पढ़ते क्यों नहीं ? बाबू जी तो चाहते ही हैं कि तुम लोग भी पढ़ो !"

बुद्धू शिर खुजलाते हुए बोला—"चाहते हैं, पढ़ाई के लिये खूब जतन भी रखते हैं, मगर हम बुढ़ल्लों को अब विद्दा थोड़े ही आयगी। पचास-पचपन की तो उमर हो गई।"

सुरजीत — "मगर जद्दू भाई तो तुम्हारी ही उमर का है न ? चिट्ठी-पतरी लिख लेता है। होले-होले अखबार भी पढ़ लेता है।"

बुद्धू—"जद्दू की अकिल हम लोगों से तेज है सुरजीत ! इसी से पढ़ गया।"

सुरजीत—"अच्छा चलता हूँ। देर हो रही है।"

भिखारी—"जरा देर और बैठो सुरजीत ! फिर इस तरह बैठके बात करने का मौका थोड़े ही मिलेगा ? अपने नये गांव में जाने को कुछ ही दिन तो रह गये हैं !"

सुरजीत — "मौका तो मिलेगा ही। बाबू जी क्या रोकेंगे थोड़े ही ?"

बुद्धू — "अरे बाबू जी क्यों रोकेंगे ? बाबू जी हमारे देवता हैं। मगर बाबू जी, बहिन जी, गार्गी बहिन और सरोज बहिन की बात छोड़कर कौन इन घासलेटी बातों को सुनना और करना पसंद करेगा ?"

भिखारी — "भाई एक बात ! गाँव के लोग कहते हैं कि सरोज मलेच्छ की लड़की है। पार्वती बहिन ने उसे घर में रखके बड़ा पाप किया। धरम भरष्ट कर दिया। मगर मुझे तो बड़ी अच्छी लगती है।"

बुद्धू — "बकने दो अभागों को। सब नमक-हराम हैं। इसी मलेच्छ की लड़की ने सबकी इज्जत बचाई और गाँव की आबरू रखली। देखा नहीं उस साल, कि अङरेजी फउज के डर से सब बाबू-भैया घर में घुस गये थे ?"

सुरजीत—"सन '४२ की बात कर रहे हो न बुद्धूभाई ?"

बुद्धू —"हाँ सुरजीत ! तुम्हें याद नहीं कि भुवन बाबू औरत बन कर घर के कोने में छिप गया था, और देवकीनाथ झा का बेटा भौनाथ ऊँख की खेत में जा छिपा था ?"

सुरजीत—"सब याद है बुद्धू भाई। अगर सरोज बहिन न होती, तो हमारे गाँव का भी वही हाल हुआ होता, जो और गांवों का हुआ था।"

भिखारी—"कई गाँवों में तो अङरेजों ने बड़ा जुलुम मचा दिया सुरजीत ! कितनों के घर फूँक दिये गये। औरतों की इज्जत लूटी गई। जेवर-जेवरात लूटे गये।

बुद्धू — "मगर हरिहरपुर का बाल भी बांका न हुआ। सरोज बहन का ही परताप था न ? सरकार को एक चिट्ठी लिख कर भेज दी। फिर क्या मजाल कि कोई सिपाही हरिहरपुर में पैर रखे !"

सुरजीत — "सरोज बहिन के मां बाप मारे गये। अनाथ समझ कर सरकार ने पांच सौ रुपया माहवारी देना चाहा। मगर सरोज बहिन ने नहीं लिया। सरकार को लिख भेजा कि मैं अनाथ नहीं हूँ। सरकार का रुपया लेकर मैं अपना इमान बिगाड़ना नहीं चाहती।"

भिखारी — "सो ही देखो सुरजीत ! तब उस बेचारी को लोग मलेच्छ मलेच्छ कहते हैं। मेरी समझ से तो साच्छात् देवी है।"

बुद्धू — "देवी से भी बढ़ कर कहो जी ! घोड़ही देवी गांव से इतना पूजापा लेती है, मगर गांव की रच्छा सरोज

बहिन ने की। मेरा तो मन करता है, जो उसे मलेच्छ कहे उस की जीभ पकड़ के खींच लूं।"

भिखारी — "इतना गरमाओ मत बुद्धू! मुफत का मुंह है, लोगों को बकने दो!"

बुद्धू — "बकने क्यों दूं भिखारी भाई? सरोज बहिन को लोग मलेच्छ कहें, और मैं चुपचाप बैठा रहूँ! देखा नहीं कि पण्डित परमानन्द की कितनी सेवा की उसने? पटना, दरभंगा सब जगह से निरास होके लौटे थे। बाबू जी के अस्पताल में भर्ती हुए। उतनी बड़ी खतरनाक बीमारी! मगर सरोज बिटिया रात-दिन उनकी सेवा करती रही। उतनी सेवा कि जितनी अपनी मां-बहिन भी नहीं कर सकती।"

भिखारी — "और गार्गी बहिन की बात क्यों छोड़ते हो बुद्धू? इतना बड़ा डागदर तुमने देखा है कभी? अगर मरे को छू दे तो जान आ जाय। मगर जरा भी गरब नहीं। जैसी गार्गी बहिन वैसी ही सरोज बहिन। जैसे लछमी-पारबती की जोड़ी हो। अंधेरे में उजाला करदे। मन करता है कि पैर पूजता रहूँ।"

बुद्धू — "इतना सुकमार सरीर, मगर थकने का नाम नहीं लेतीं। रात-दिन काम करती रहती हैं। अस्पताल सम्हालना रसोई देखना, और औरतों और बच्चों को पढ़ाना-लिखाना। कितना काम है, कहो तो?"

भिखारी — "और बच्चों को कितना प्यार करती हैं? हमारे-तुम्हारे बच्चे उनके गले से लिपट के खेलते हैं! बच्चों का भाग!"

सुरजीत — "और विनोद बाबू कितने प्यार से बच्चों को पढ़ाते हैं?"

भिखारी — "हां सुरजीत! लड़का क्या है हीरा है। कौन कह सकता है कि यह भुवन बाबू का बेटा है?"

सुरजीत — "बाबू जी बड़ा प्यार करते हैं उन्हें। और विनोद बाबू भी बाबू जी के लिये मरते रहते हैं।"

बुद्धू — "बाबू जी तो सब को प्यार करते हैं। और दुनिया में कौन ऐसा अभागा होगा जो बाबूजी को प्यार न करे।"

भिखारी — "मगर भुवन बाबू तो बाबू जी को फूटी आँखों नहीं देखते। गाँव के बाबू भैया तो दिन-रात जलते रहते हैं।

बुद्धू — "जलने दो अभागों को। सब अपनी आग में आप ही जल मरेंगे।"

सुरजीत — "सराप मत दो बुद्धू भाई। बाबू जी ने किसी को गाली देना मना किया है।"

बुद्धू—"गाली देना मना किया है? यह गाली थोड़े ही है? यह तो सराप है।"

सुरजीत—"गाली-सराप एक ही है बुद्धू भाई! किसी का नाहक बुरा मनाने से क्या फायदा? देखते नहीं बाबू जी कभी किसी का बुरा नहीं सोचते।"

बुद्धू—"बाबू जी तो देवता हैं। मगर अबसे मैं भी किसी का बुरा नहीं सोचूँगा। यह लो कान पकड़ता हूँ।" — कहकर दोनों हाथ से उसने अपने दोनों कान पकड़ लिये।

सुरजीत—"हां, सो ही। बाबू जी का कहना है, काम करना चाहिये। नाहक बैठे-बैठे किसी का बुरा नहीं सोचना चाहिये।"

बुद्धू—"बैठा थोड़े ही हूँ सुरजीत। यह तो तुम्हारे साथ बात चीत कर रहा हूँ।"

सुरजीत—"अच्छा अब चलता हूँ। देर हो गई। बहिन नाराज होती होंगी।"

भिखारी—"अच्छा सुरजीत, जाओ! बाबू जी के साथ रहकर जनम सफल बनाओ।"

———

: ४२ :

जेलमें बाबू गौरीशंकर को गौरी का लिखा एक लंबा पत्र मिला। पत्र यों था :—

"चाचा जी के चरणों में —

"जब पता चल गया, विश्वस्त और निश्चित रूप से, कि सरकार ने मेरी गिरफ्तारी का वारंट रद्द कर दिया है, अपने बारे में तुम्हें लिखने की मेरी आकांक्षा प्रबल हो उठी है।

"तुम्हारी गोद से बिछुड़े पूरे तीस महीने हो गये। निःसंदेह अपनी गौरी के बारे में हृदय तुम्हारा उत्सुक होगा, चिंताकुल होगा। इतने दिन बीत गये, एक पत्र भी तो नहीं लिख पायी तुम्हारे नाम! लिखूँ कैसे? और लिखकर भेजूं कैसे? सरकारी जासूस छाया की तरह दिन-रात पीछे जो लगे रहते! मैंने शपथ खा ली थी गिरफ्तार न होने की। सो प्रतिज्ञा मेरी पूरी हो गयी। तुम्हारी गोद की गौरी केवलमात्र तुम्हारी गोद में ही गिरफ्तार हो सकती है चाचा! संसार की किसी शक्ति में इतना सामर्थ्य कहां जो जीते जी तुम्हारी गौरी को गिरफ्तार कर ले!

"अस्तु। चाहे जिस रूप में भी, सन '४२ के आंदोलन की खबरें जेल में तुम्हारे पास भी पहुंचती ही रही होंगी। यह वह आंदोलन था चाचा, जो देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में अपना सानी नहीं रखता। लोग कहते हैं, यह आंदोलन असफल रहा, सन '५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम की तरह। ऊपर से लगता भी वैसा ही है। पर मैं तो मानने को कतई तैयार नहीं। एक तो सन '५७ की लड़ाई जनता की आजादी की लड़ाई थी ही नहीं, जनता के स्वार्थ से उसका कोई संबंध था ही नहीं। उसका नेतृत्व राजाओं और नवाबों के हाथ में था। उसका उद्देश्य अंग्रेजों को मार भगा अंग्रेजी शासन की जगह फिर वही सड़ी-गली राजतंत्री और सामंती पद्धति कायम करना था। हाँ, जनता ने साथ अवश्य

दिया था, किंतु झूठे नारों और झूठे प्रचारों के चकमे में आकर। वह नारा धर्म का नारा था, उसका प्रचार धर्म और संस्कृति पर खतरे का था। और ऐसे नारों और प्रचारों का आज भी खुलकर प्रयोग किया जा रहा है, जो हम-तुम देख रहे हैं। ऐसे नारों का ऐसे व्यक्तियों-द्वारा प्रचार होता है, जिनका धर्म और संस्कृति से जरा भी सबंध नहीं, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन से जरा भी संपर्क नहीं। मैं विस्तार में नहीं जाना चाहती चाचा! लेकिन इतना अवश्य बता देना चाहती हूँ कि सन १८५७ के विद्रोहात्मक संग्राम का सन १९४२ के जन-संग्राम के साथ तुलना करना सरासर गलत है, ऐतिहासिक ज्ञान की मौलिक कमी का परिचायक है। और इस आंदोलन को जापानी एजेंटों द्वारा संचालित करना तो और भी महामूर्खता और शरारत है।

"सन '४२ का आंदोलन सोलह आना जन-आंदोलन था। इसका नेतृत्व जनता के हाथ में था, इसका संचालन जनता कर रही थी। राजाओं, महाराजाओं, नवाबों और नवाबजादों के लिये इसमें जगह न थी। और इस आंदोलन को असफल और कुचला कहना तो नितांत गलती है। यह जनता का आंदोलन था चाचा! न यह असफल हो सकता है, न कुचला जा सकता है। उसकी लपलपाती लपट को कुछ देर के लिये शांत अवश्य कर दिया गया है, किंतु आग आज भी सुलग रही है। मौका पाते ही फिर भभक उठेगी, और अंग्रेजी साम्राज्यशाही को जलाकर राख किये बिना बुझने का नाम न लेगी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है, मेरी यह दृढ़ धारणा है, और इसी विश्वास और धारणा ने मुझे प्राणों से मोह करना सिखा दिया है, संसार के सुखोपभोग के लिये नहीं, फिर उस आगामी स्वातंत्र्य-संग्राम में जूझने के लिये।

"चाचा जी! सन '४२ के संग्राम में मेरे कितने साथी जूझ चुके हैं। उनकी पावन स्मृति आज भी मेरे मानस-पट पर अंकित है। नौकरशाही मेरे पीछे हाथ धोके पड़ी थी। उसके जासूस

सदा पीछे लगे रहते। लेकिन मैं उनकी पकड़ में न आ सकी। निरंतर स्थान बदलती रहती। स्थान बदलते-बदलते एक समय मैं अपने जन्म-प्राँत बिहार में पहुंच गयी। यहाँ आंदोलन का बड़ा जोर था, साथ साथ दमन का जोर भी। लेकिन अब दमन और आँदोलन दोनों में शिथिलता आने लगी थी। अब मैंने निश्चय किया कि गाँव-गाँव में घूमकर आंदोलन की भावना जनता में जगाये रखूँ। घूमने लगी और पहुंचते-पहुंचते अपनी जन्म-धरती हरिहरपुर के पास पहुंच गयी। एकाएक हृदय में भावुकता की बाढ़ आ गयी, जननी और जन्मभूमि दोनों याद आ गयीं। जिस भूमि को उतनी घृणा और वितृष्णा से त्याग आयी थी, आज वर्षों बाद उसी के प्रति इतना मोह! हृदय में लाख घृणा के भाव भरने की चेष्टा की, पर सब व्यथ! मोह ने घृणा पर विजय पायी। किंतु इस मोह में कितना माधुर्य था चाचा! क्या बताऊँ? लिखना लेखनी का सामर्थ्य नहीं।

"अपनी जन्म-धरती पर पैर रखते ही मेरे मनकी दशा पुनः अजीब बन गयी! अपने गाँव से निकली थी एक लाँछिता के रूप में। आज भी यह गाँव मुझे उसी रूप में याद कर रहा होगा, मृता या पतिता के रूप में। फिर कौन सा मुँह लेकर गाँव में पैर रखूँ? लाख मैं तुम्हारी गोद में पलकर निर्भीक बन गयी थी, लाख मैं पढ़-लिखकर सभ्य और सुसंस्कृत बन गयी थी, किंतु कमजोरी दिलके किसी कोने में छिपी जरूर थी। मेरी तो दशा साँप-छुछुन्दर सी हो रही थी चाचा! फिर सोचा, बारह-तेरह साल बाद जा रही हूँ। कौन मुझे पहचानेगा? लेकिन यदि पहचानी गयी तब? तब भी होगा क्या? मेरा कौन क्या कर लेगा? जब आयी हूँ, तब अपनी जन्म धरती को एकबार अच्छी तरह देखके ही जाऊँगी।

"हरिहरपुर में पहुंचते-पहुंचते अंधेरा हो गया। अंधेरे में ही जब उस गाँव की शक्ल-सूरत देखी, उसका नक्शा देखा, उस

की श्री-समृद्धि देखी, तब तो मेरी लालसा और भी प्रबल हो उठी। उस अद्भुत परिवर्तन का कारण जानने की आकाँक्षा उत्कट हो उठी।

"अब मैं गाँव में पैठी और अपने घर की ओर बढ़ी, छाती को अत्यंत कठोर और मजबूत बनाकर। इतने वर्ष बाद भी हरिहरपुर की गली परिचित सी लग रही थी। बचपन के अभ्यास के अनुसार पैर सीधे घर की ओर बढ़े जा रहे थे। उस वक्त मेरे दिल का क्या हाल था! क्या बताऊँ? रह-रहकर उच्छ्वसित आवेग से गला भर आता। रह-रहकर हृदय भय और शंका के झूले में झूलने लगता। अंत में अपने पितृ-पितामह की डीह के निकट पहुंच ही तो गयी। पर हाय! वहाँ तो सुनसान उजाड़ के सिवा कुछ नजर ही नहीं आ रहा था चाचा! कुछ घरौंदे अवश्य खड़े थे, जो मेरे बचपन के परिचित थे। किंतु सूनापन वहाँ भी मुँह फैलाये खड़ा था, भूख और प्यास से उन्मत्त दानव की तरह। बगल की बाँस की झाड़ियों के चों चों शब्द कुछ चिड़ियों की कचकचाहट में मिलकर इस सूनेपन की भयानकता को और बढ़ा रहे थे। अमावस की रात थी। घड़ी भर ही तो अभी बीती होगी, किंतु लगता ऐसा था मानो पहरभर रात बीत गयी। इस अमावस की रात को ही तो मैं हरिहरपुर से निकली थी, या यों कहो कि निर्दयता पूर्वक ठुकरा के निकाली गयी थी; बीती घटना याद आ गयी, आँखों के सामने साकार होकर सूनी अंधियाली की भीषणता के साथ एकाएक होकर खड़ी हो गयी। यह अमावस की रात मेरे लिये कालरात्रि ही तो थी! छाती की धड़कन तेज हो गयी। मैं तो निर्जीव सी होके चट वहाँ बैठ गयी, उसी अपनी उजड़ी सूनी डीह-पर, जहाँ पैदा हुई, बचपन बीता, जवानी आयी, और एक दिन पतिता व भ्रष्टा कहकर समाज के मुखियों ने समाज और संसार से एक घृणित वस्तु की भाँति उठाके फेंक दिया, और जाकर मैं तुम्हारी पवित्र गोद में जा

गिरी। उस गोद के संस्पर्श मात्र से यह घृणित अपावन वस्तु परम पावन बन गयी, पूजनीय बन गयी। जहां इसे पिता का प्यार मिला, माँ की ममता मिली और समाज का सम्मान मिला। सब कुछ मिला। ज्ञान का आलोक मिला, सेवा का स्वाद मिला, आत्मा की निर्भीकता मिली।

"मैं बैठी बैठी यह सब सोच रही थी, विचार रही थी। एकाएक हृदय में यह भाव उद्भूत हुआ—यह अमावस की रात्रि! मेरे लिये कालरात्रि तो नहीं! यह तो महा मंगलमयी माँ है! इसी रात को तो मैं अनजाने भावी जीवन की दिशा को चल दी थी? परिणाम कितना मनोहर, कितना मंगलमय रहा! फिर आज वही अमावस की रात! अवश्य मुझे मंगलमय दिशा को ले चलेगी। उस गहन अंधेरे में ही हाथ जोड़ के मैं बोली—"मां अमा! फिर ले चल मुझे उस कल्याणी गोद में, उस दिशा में, जहां जाकर मैं अपने पावन लक्ष्य को ओर निर्विघ्न बढ़ती चलूँ।'

"हृदय आश्वस्त हुआ। अब तक मेरी चित्तवृत्ति किसी और दिशा को थी। अब वह पुनः उस सूनी उजड़ी डीह पर आ जमी। हाय! इतनी देर बाद मां-बाप की याद आयी। उस वीरान भूमि के भीतर छिपी गरीबी की दारुण अनुभूति की याद ताजी हो उठी। पिता-माता की वह कंकाल मयी निरीह मूर्ति मानस-पट पर अपने आप अंकित हो उठी, जिसपर भूख, अपमान और वेदना की मनहूस छाया सदा छायी रहती। तो क्या वे मर गये? गरीबी की निष्ठुर आग में जलकर राख बन गये? हमारे वंश में कोई नहीं रहा? एक अँकुर भी नहीं? सोचते-सोचते मैं रो पड़ी। अमा के सूने घने अंधेरे में ठुनक-ठुनक कर रोने लगी।

"उसी क्षण एक भय-विह्वल चीत्कार ने मेरी रोने की मुद्रा भंग करदी। चौंककर कान खड़े हो गये। सुना —'अरे बाप रे! भूत' — कहकर चिल्लाता हुआ एक आदमी भाग निकला है, और कुछ दूर जाकर धड़ाम से गिर पड़ा है। मैं तो सहम गयी

चाचा ! मैं समझ गयी कि इस सूनी डीह पर अमावस की रात में मेरी रोती आवाज को उसने भूत-प्रेत की आवाज समझी होगी, मुझे चुड़ैल समझा होगा। डर कर भागा है, और आगे जाकर बेहोश होके गिर पड़ा है। मैं झटपट उठ खड़ी हुई, और उधर बढ़ी जिधर वह भागा था।

"थोड़ी दूर आगे जाके सचमुच देखती हूँ कि सड़क पर एक आदमी बेहोश पड़ा है। मैं समझ गयी कि यह वही आदमी है। मैं तो व्याकुल हो गयी सोचने लगी क्या करूँ ? इसे यों ही बेहोश पड़ा छोड़कर कैसे आगे बढ़ूँ ? आखिर मनुष्यता भी तो कोई चीज है ? मैं इस उधेड़-बुन में लगी ही थी, कि पूरब की तरफ से अपनी ओर एक रोशनी को बढ़ते देखा। रोशनी रह-रहकर बुझती और जलती मेरी निकट-वर्ती बनती गयी। यदि आज मैं हरिहरपुर की पहली गौरी होती, तो शायद मैं भी इसे राक्स (प्रेत-राक्षस) समझ कर वहीं डर के मारे बेहोश हो गिर पड़ी होती, या भाग खड़ी हुई होती। किंतु तुम्हारी शिक्षा और संसर्ग ने वहम को दिल से सदा के लिये अलग कर दिया था। मैं वहाँ निर्भीक और उत्सुक होकर उस प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगी।

"रोशनी बिल्कुल समीप आगयी। साथ ही दो चार व्यक्तियों की आपसी बातचीत की ध्वनि कानों में गूँजने लगी। कुछेक क्षण बाद ही मैंने देखा कि सचमुच मेरे सामने चार आदमी ठिठक कर खड़े हो गये हैं। उनमें से एक सोलह साला तरुण ने आगे बढ़कर बड़ी नम्रता से पूछा—'आप कैसे यहां खड़ी हैं ?' मैंने भी निर्धोक जवाब दिया—'मैं हूँ एक परदेसिन। रात इस गाँव में बिताना चाहती हूँ।' तरुण ने कहा — 'हां तो चलिये हमारे संघ की अतिथिशाला में। यहाँ क्यों खड़ी हैं आप ?' और मैं उस बेहोश पड़े आदमी की ओर इशारा करके बोली—'एक आदमी बेहोश पड़ा है। शायद मुझे भूत-प्रेत समझ

कर डर गया।' सुनते ही वह नव तरुण आगे बढ़ा, और उस बेहोश के चेहरे पर टॉर्च की रोशनी देते ही वह चौंककर बोला —'ऐं ! यह तो भवनाथ चाचा हैं। इनके हाथ में पिस्तौल है ! बगल में टॉर्च है ! ये इधर कैसे आ टपके ?' उधर से एक दूसरा युवक बोला —'आये होंगे हमी लोगों की टोह में। पिस्तौल लेकर घूमते हैं, लेकिन भूत-प्रेत से इतना डर ? पड़ा रहने दो अभागे को। आगे बढ़ो !' 'नहीं चंदर चाचा ! आखिर हम लोग मनुष्य हैं, पशु नहीं। इन्हें ले चलो, जल्दी अपने संघ के अस्पताल में, जिस से जल्दी बेहोशी का उपचार किया जाय !' 'पागल तो नहीं हो गये विनोद ? दुश्मन पर इतनी दया ? तुम्हें पता नहीं कि इस नरपशु की इस पिस्तौल के आज हम लोग शिकार बने होते ?'—'जो भी हो चँदर चाचा ! अब तो बेहोश पड़ा है। नाड़ी का पता नहीं। मुँह से खून निकल रहा है।'— 'निकल रहा है तो निकलने दो। मर जाने दो कमीने को।' — 'ऐसी बात मुँह से न निकालो ! यदि चाचा जी सुनेंगे तो जानते नहीं, कितना नाराज होंगे ?'—'अच्छा तो बताओ क्या करूँ ?'— 'बस इन्हें सीधे अस्पताल ले चलो'—कहकर विनोद ने अपनी चादर जमीन में फैला दी, और बड़े यत्न से भवनाथ के मूर्छित शरीर को चन्द्रकांत की मदद से उसपर रखके वह बोला—'एक ओर से पकड़ो चन्द्रचाचा ! अब इन्हें ले चलें।'—'तुम छोड़ दो विनोद ! मैं शंभुनाथ की मदद से इसे ले चलता हूँ ! तुम अभी कमजोर हो।'—'कमजोर नहीं हूँ ! मैं ले चलता हूँ।' — 'तुम बड़े जिद्दी हो विनोद ! अभी तो बीमारी से उठे हो। छोड़ो।' कहकर चन्दर ने जबर्दस्ती विनोद को हटा दिया, और स्वयं शंभुनाथ और यदुवीर की मदद से भवनाथ को उठाकर आगे बढ़ा और विनोद से कहा — 'हम जरा जल्दी चलते हैं। तुम नयी बहिन जी को लेकर पीछे-पीछे आओ।'—कहकर वह लंबे डेग बढ़ाता अपने साथियों के साथ आगे बढ़ गया।

"अब मैं विनोद के साथ चली। उसने मुझे पूछा — 'आप कहाँ से आ रही हैं बहिन जी ?' मैं ने जवाब दिया — 'बनारस से।' वह जरा चौंका। फिर बोला — 'बनारस से ? फिर जा कहाँ रही हैं ?' — 'अनंत की ओर।' विनोद बेचारा विस्मित हो गया ! सकुचाकर उसने पूछा — 'आपका मतलब नहीं समझा बहिन जी !'—'इसका मतलब बड़ा सीधा और बड़ा दुर्बोध है विनोद !' विनोद घबड़ा कर बोला — 'मैं पहेली की भाषा नहीं समझता बहिन जी ! मैं बच्चा हूँ।' उस बच्चे की गिड़गिड़ाती याचना से विगलित होकर मैं बोली — 'इसका मतलब है विनोद, कि इस जीवन-यात्रा का न आदि है न अंत। कभी यह सादि और सांत दीखती है, और कभी अनादि और अनंत। लक्ष्य पर पहुंच जाओ, यह सादि और सांत दीखेगी, फिर कुछ क्षण बाद ही अनादि और अनंत दीखने लगेगी। लेकिन अभी छोड़ो इन बातों को। यह एक जबर्दस्त दार्शनिक पहेली है। पहले मुझे यह बताओ कि इस गाँव में गोवर्धन पाठक नामक कोई सज्जन हैं ?' उसने कहा—'किसी समय थे। अब नहीं हैं। मर गये। लेकिन उनके एक पुत्र हैं। अभी जो चंदर चाचा यहाँ थे न, उन्हीं के पुत्र हैं। इनका नाम चंद्रकांत पाठक है। बड़े अच्छे हैं, बड़े मेहनती हैं।'

"सुनते ही मेरे मन की दशा क्या हो गयी क्या बताऊँ चाचा ? चाहा कि भो हार पारकर रो पड़ूँ। बड़ी कठिनाई से अपने को सम्हाला। फिर भी आँसू तो निकल ही पड़े ; सौभाग्य से अंधेरा था। विनोद मेरी दशा देख न सका। उसने पूछा — 'वे आपके परिचित थे क्या ?' मैंने कहा—'हाँ, कभी के थे।' फिर मैंने उस से पूछा—'सुमनचंद्र भाई का क्या हाल है ?' जवाब में विनोद खुशी से उछलकर बोला—'हाँ हाँ, बड़ा अच्छा हाल है ! क्या वे भी आपके परिचित हैं ? वे तो मेरे चाचा होते हैं, सगे चाचा ! उन्हीं के पास तो आप जा रही हैं। वे ही तो हमारे संघ

के कर्ता-धर्ता हैं !' एक साँस में ही विनोद यह सब कुछ बता गया। अब मेरी जिज्ञासा बलवती हो उठी। मैंने पूछा—'यह संघ क्या चीज है विनोद ?' विनोद ने आश्चर्य के साथ जवाब दिया—'आः ! क्या आपको यह भी पता नहीं ? और पता हो तो कैसे ? अखबार वाले तो हमारे संघ के बारे में छापते ही नहीं।'

"अधिक कुछ पूछने या बोलने की मेरे मन की दशा न थी। बिनोद लेकिन बड़े उत्साह के साथ संघ के बारे में अपने आप सुनाने लगा, और मैं बड़े ध्यान से सुनती उसके पीछे-पीछे चलने लगी। उसने कहना आरंभ किया — 'अपने पिता का नाम क्या बताऊँ ? कहते शरम लगती है। आदमी अच्छे नहीं हैं। मेरी उनसे बनती भी नहीं है। मैं तो सदा अपने चाचा जी के साथ रहता हूँ। चाचा जी मेरे मनुष्य नहीं देवता हैं। सारा गाँव उन्हें देवता समझता है। उनके एक इशारे पर सब कटने-मरने को तैयार हैं। लेकिन वे किसी का बुरा नहीं सोचते। धनी लोग उन से जलते हैं, उनकी जान लेने की ताक में रहते हैं, लेकिन वे किसी की परवाह किये बिना अपना काम किये जा रहे हैं। दो साल के अंदर उन्हों ने गाँव को क्या से क्या बना दिया। परती जमीन अब सोना उगलती है। एक मन की जगह पाँच मन उपजती है। साल में तीन तीन फसल। अन्न का अंबार लगा रहता है। मेरे चाचा जी ने चुटकी बजाते गाँव से गरीबी भगा दी। और साथ ही इसके अमीरी भी भाग गयी। अब गाँव में केवल दो-चार मुफ्तखोरे रह गये हैं। उनकी भी घड़ी करीब आ गयी है। चल ही तो रही हैं आप हमारे संघ में। देखेंगी, सारा गाँव संघ में बदल गया है। संघ का जीवन एक परिवार का जीवन है। एक साथ खाना, एक साथ काम करना और एक साथ रहना। भेद भाव का नाम नहीं। जनता की संपति संघ की संपति, और जनता स्वयं संघ है। संघ हमारा दिन-पर-दिन फैलता जा रहा है। संघ की खेती भी फैलती

जा रही है। अभी हम लोग संघ के खेत से ही तो आ रहे थे, जब कि आप से मुलाकात हो गयी। गाँव के दो-चार धनियों के अब तक संघ में शामिल न होने के कारण संघ के खेत भी जहाँ-तहाँ बिखरे हैं। कठिनाई जरूर होती है, लेकिन किया क्या जाय ? अभी अपना जोर तो कुछ नहीं है।'

"विनोद आवेश में कहता जा रहा था, और मैं बड़े ध्यान और रुचि के साथ सुनती जा रही थी। फिर मैंने गला साफ करके पूछा —' सुमन बाबू की बहन पार्वती देवी कैसी हैं ?' सुनकर विनोद को बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी तरफ देखकर आश्चर्यान्वित स्वर में बोला — 'देखता तो हूँ कि आप सब को पहचानती हैं। इन से परिचय कहां हुआ ?' मैंने कहा — 'काशी में। ये लोग तीर्थ करने वहाँ गये थे।' फिर विनोद ने कहा — 'पार्वती देवी तो मेरी बुआ हैं। वही हमारे संघ की मुख्य संचालिका हैं। जैसे मेरे चाचा, वैसी ही मेरी बुआ। सोने में सुगन्ध। संघ का बच्चा-बच्चा मानो बुआ जी का अपना बच्चा है। बड़ा प्यार करती हैं सबको। सङ्घ का शुरू का नियम था, सबको अलग-अलग मजदूरी देने का, अपने काम के अनुसार। पैदावार में सब को हिस्सा मिलता था। सब की रसोई अलग बनती। सब के चूल्हे अलग जलते। लेकिन बुआ जी को यह बात पसंद न आयी। उन्होंने कहा —'खाने-पीने, पहनने और रहने का सुंदर प्रबंध तो हो गया, लेकिन भेद भाव बना नहीं रहा। जमीन-जायदाद तो सङ्घ की बन गयी, फिर चूल्हा-चौका ही क्यों अलग रखा जाय ? उसे भी सङ्घ में शामिल करना चाहिये। कोई भी चीज व्यक्तिगत न रहने देनी चाहिये। व्यक्तिगत संपत्ति सारे खुराफातों की जड़ है।' हरिहरपुर के नये गांव की आबादी दो हजार के करीब है। अब सबका भोजन साथ बनता है। दसके करीब पाकशालाएँ हैं। जिसकी मर्जी जिस पाकशाला में भोजन कर ले। अब किसी को अलग मजदूरी नहीं दी जाती। पैदावार

का हिस्सा नहीं दिया जाता। सब साथ काम करते हैं, साथ खाते हैं, साथ रहते हैं। जब एक परिवार बन गया, तो फिर हिस्सा-बखरा और मजदूरी का झंझट क्यों ?'

"कहते-सुनते हम दोनों संघ के गांव में आ पहुंचे। मुझे बड़े सम्मान के साथ अतिथि-शाला में ठहरा कर विनोद अस्पताल की ओर दौड़ा गया। और पांचेक मिनट बाद ही देखती हूँ, साक्षात् बहिन पार्वती मेरे सामने आ खड़ी हुई हैं। दूर सेही उन्हों ने बड़े सम्मान के साथ नमस्कार किया। और विनोद मुझे उद्देश करके बोला —'ये ही हैं मेरी बुआ जी।' और मैंने झट आगे बढ़ कर पार्वती बहिन के चरण छुए। मेरी आंखों से नीरव आंसुओं की धारा बह निकली। मेरी दशा और व्यवहार देख पार्वती बहिन को बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछेक क्षण अचरज भरी निगाहों से मेरी ओर ताकती रहने के बाद वे चौंककर बोलीं— 'ऐं ! गौरी ?' और उत्तर में मैंने कहा --'हां बहिन ! वही अभागिन गौरी।' बहिन जी झट मेरे गले से लिपट गयीं और रो पड़ीं। मैं भी रोने लगी। कुछ देर बाद चंद्रकाँत भी आया, और 'दीदी-दीदी' कहकर रो पड़ा। कुछेक मिनट में ही सारा गाँव उमड़ पड़ा, और मैं आँसू भरी आंखों से सबसे गले मिली।

"आज हरिहरपुर में— इस स्वर्गपुरी में आये मुझे महीना भर हो गया चाचा ! यहां मैं अपनी पार्वती दीदी की गोद में बड़ी खुश हूँ, पर तुम्हारी गोद का अभाव सदा खटकता रहता है। सुना है, तुम लोग बहुत जल्दी ही रिहा होने वाले हो। हमारी दीदी और सुमन भैया का बड़ा स्नेह भरा आग्रह है कि चाचा जी जेल से सीधे यहीं आ जायँ। अपनी बच्ची पर विश्वास करो चाचा ! यहां पैर रखते ही तुम्हारा दिल उछल उठेगा, आत्मा नाच उठेगी। अपने जीवन भर की साध को हरिहरपुर के इस संघ-जीवन में तुम मूर्त रूप में फलते-फूलते देखोगे चाचा ! इस संघ में कठमुल्लापन नहीं, किसी खास नाम और वाद का दुराग्रह

नहीं। यहां मानवता-वाद की प्रधानता है, मानवता पूज्य है, परमाराध्य है। यहाँ गाँधी की आत्मा नाचती है, मार्क्स की आत्मा हँसती है, और विश्व के समस्त महापुरुषों के स्वप्न मूर्तिमान बनकर दलितों के दिलों में आशा और आस्था का संचार करते हैं।

"मेरे प्यारे चाचा! दुनिया भले ही विश्वास न करे, पर तुम तो अपनी बिटिया पर विश्वास करोगे ही। और दुनिया विश्वास करेगी ही किस तरह? हरिहरपुर में क्या कुछ हो रहा है, दुनिया को पता भी तो नहीं। अखबारों ने मानो शपथ खा ली हैं। और वे ऐसी खबरों को छापने ही क्यों लगे? उनके उद्देश्य और स्वार्थ-पर जबर्दस्त प्रहार जो होगा, भूले-कुठाराघात जो होगा।

"अस्तु! अब मैं ज्यादा कुछ लिखना नहीं चाहती। लिखने का सामर्थ्य भी नहीं। मुझे तो संदेह है कि स्वयं वाणी भी इस संघ-जीवन के प्रत्येक पहलू को सही रूप में सब के सामने रख सके। वह तो केवल अनुभूति- संबंध है चाचा! स्वयं इस जीवन में शामिल होकर ही कोई इस जीवन का मंगलमय अनुभव प्राप्त कर सकता है, अलग से नहीं।

"अंत में मैं पुनः एक बार सानुरोध प्रार्थना करती हूँ कि जेल से छूटते ही सीधे यहाँ चले आओ। तार द्वारा सूचित कर दो। आना जरूर चाचा! अपनी बिटिया को निराश न करना। नहीं तो मुझे फिर बनारस की राह लेनी पड़ेगी।

तुम्हारी
—गौरी।"

"पुनश्च :—

रमेश और रामचंद्र भैया तुम्हारे साथ हों, या जहां कहीं भी हों, मेरा प्रणाम उन तक पहुंचा देना। उन्हें भी अपने साथ लेते आना। भूलना नहीं।"

: ४३ :

सन १९४७ के जून का महीना था। हरिहरपुर के आस-पास पचीस-तीस मील तक के गाँवों में हैजे ने बड़ा उग्ररूप धारण किया। श्मशानों में अहर्निश जलती चिताओं से निरंतर उठती धूम-रेखा आकाश को सदा धूमिल बनाये रहती ! उनकी चिरौंती दुर्गन्धि से वातावरण बोझिल और बीभत्स बन गया था। सद्यः-विधवाओं, पुत्रहीनाओं के करुण क्रंदन और चीत्कार से गाँवों का दिग्-दिगंत परिव्याप्त हो रहा था। जहाँ-तहाँ ईंधन की कमी पड़ गयी थी। बहुतेरे शवों को दाह-संस्कार भी नसीब नहीं हो रहा था। बहुतेरे अधजले ही रह जाते। गीध, कौवों और शृगालों की बन आयी थी। गाँवों की गलियों में भूत-प्रेतों के आतंक का मानो साम्राज्य कायम होगया था। क्या मजाल कि कोई घर से निकल पड़े ! क्या मजाल कि कोई सूनी-निराली कोठरी में अकेले सो सके ! क्या मजाल कि कोई टट्टी-पेशाब से अकेले निबटने की हिम्मत करे !

प्रांत में काँग्रेस का शासन। केंद्र में भी काँग्रेस सत्तारूढ़ ! स्वास्थ्य मंत्री परेशान थे, सारा मंत्रि-मडल परेशान था। मुँड मुँडाते ओले पड़े। गद्दी पर बैठते ही महामुसीबत ! जनता की सरकार और जनता पर मुसीबत ! सरकार बेचारी पूरे दिल से मोर्चे पर आ डटी। महामारी के साँघातिक हमले के अवरोध और प्रतिरोध में लग पड़ी। लेकिन शासन का यंत्र वही पुराना था। साज-सज्जा वही पुरानी थी। और इसी पुराने उपकरण के बलपर सरकार को पूरा भरोसा था। गाँवों में सरकार की ओर से नियुक्त अधकचरे वैद्यों और डाक्टरों की उपस्थिति जनता में आशा का संचार अवश्य करती पर वह क्षणिक होती। परिणाम कुछ निकल नहीं रहा था। दवा खाकर भी मरने वाले मर रहे थे भगवान के भरोसे पर सब काम चल रहा था।

इधर चंद्रभानपुर में चंडीपाठ और सवा लाख महादेव (मिट्टी के महादेव) पूजा का सामरोह चल रहा था। इसके आयोजक थे ठा० रघुवीर सिंह तथा प्रेरक थे गाँव के वयोवृद्ध विद्वान महामहोपाध्याय पं० गदाधर मिश्र जी। ब्राह्मणों के घरों से मिट्टी के महादेव बन बनकर गाँव के ब्रह्म-स्थान में आ रहे थे, और उन्हें गिन २ कर एक ओर रखा जा रहा था। एक तरफ गाँव के स्कूली लड़के अपने मास्टर साहेब की देख रेख में सवा लाख विल्व-पत्र चुनने और गिनने में लगे थे। कुछ क्षण के लिये भी मास्टर साहेब के हटते ही पुनः वे शरारत में मशगूल हो जाते। एक तरफ ब्रह्म-स्थान के पीपल वृक्ष की विस्तृत छाया के नीचे बैठे कुछ भक्त लोग हथेली से हथेली रगड़ कर महादेव बना रहे थे। जब-तब अपने उच्च ग्रामीण स्वर में विद्यापति रचित महेशवाणी की पदावलियाँ गाने लगते, और अंत में एकाएक भक्ति के आवेश में आकर—'हर हर महादेव! बम बम महादेव! जो बोले सो अभय!' की ध्वनि से आकाश को गुंजा देते। उधर केले के स्तंभों से बने तथा अशोक और आम के पत्तों के बंदनवार से सजे मँडप के मध्य चंडी यज्ञ चल रहा था। मँडप के मध्य में सर्वतोभद्र का एक बहुरंगा चक्र बना था। एक किनारे नवग्रह और दशदिक्पाल के चक्र भी बने थे। दस ब्राह्मण पीले वस्त्र पहन कर चक्र के चारों ओर बैठे 'इत्थं यदा यदा बाधा' मंत्र से चंडी का सपुट पाठ कर रहे थे।

एक ओर रसन चौकी और शाहनाई बज रही थी, और दूसरी ओर लौंडे के नाच का आयोजन हो रहा था। एक लंबा शामियाना तना था। उस प्रांत के प्रसिद्ध नर्तक मिश्री लाल के मँचपर उपस्थित होने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी। और उसी शामिआने के बीच में महामहोपाध्याय पं० गदाधर मिश्र जी सुखासन लगाये गाँव के भले लोगों के साथ देश, काल और समाज की आलोचना में लगे थे। इन भले लोगों में उस

इलाके के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता तथा चन्द्रभानुपुर के सब से बड़े आदमी ठा० रघुवीर सिंह भी विराज रहे थे। गाँव के गरीब गुरबा भी जब तब अपनी निरीह नजर दौड़ा देते, भले लोगों की भली बातें सुनने को कान लगा देते। और इस आनंद उत्सव के बीच उस दिन के लिये सबों के दिल से हैजे का आतंक दूर हो गया था। चेहरे से चिंता की रेख मिट गयी थी।

महामहोपाध्याय जी ने अपनी नशदानी से नश निकालकर एक लंबी सुरकान लेकर दो-तीन बार छींकते हुए वहां बैठे लोगों पर एक हलकी नजर दौड़ायी। फिर रघुवीर सिंह की ओर ताक कर बोले—"समय रहते सतर्क हो जाना अच्छा होता है रघुवीर बाबू! भगवान शङ्कर की कृपा और जगदंबा की दया से अवश्य अपना गाँव बचा रहेगा।"

रघुवीर इसके अनुमोदन में शिर हिलाते बोला—"अवश्य पंडित जी! आप जैसे विद्वान ब्राह्मणों के रहते इस गाँव को किस बात का डर? कल से एक अखंड कीर्तन कराने का भी विचार है गुरु जी!"

महामहोपाध्याय जी गर्दन हिलाते बोले-"अवश्य अवश्य! इन्हीं सब चीजों से तो कल्याण होगा! वैद्यो नारायणो हरिः! भगवान ने कहा भी है "कलौ नामैव नामैव नामैव मम केवलम्।"

रघुवीर—एक सरकारी डाक्टर का भी इंतजाम कर दिया है, जो हमेशा गाँव में रहेगा। गाँव में कोई बात होते ही चट दवा लेकर दौड़ेगा।"

महामहोपाध्याय जी जरा नाक सकोड़ कर बोले—"हां! अच्छा किया! किंतु ऐसे समय में डाक्टर वैद्य की दवाई भी कुछ काम नहीं करती! देखते नहीं, कई गाँवों में सरकारी डाक्टर वैद्य काम कर रहे हैं, किंतु लाभ कहां हो रहा है? लोग तो मरते ही जा रहे हैं।"

गोष्ठी में से रघुनाथ नामक एक गरीब ब्राह्मण की आवाज़ बोली—"मरेंगे क्यों नहीं ? ये डागदर-वैद अधकचरे हैं। दिल लगाके काम नहीं करते। रोगी को बिना देखे ही दवा दे देत हैं। दवा में भी चोर बाजारी करते हैं। फिर लाभ कैसे हो ? डागदर कहना चाहिये तो हरिहरपुर वालों को ! मरे को भी जिला दें।"

हरिहरपुर के डाक्टर का बखान सुनते ही रघुवीर की देह में आग लग गयी। रघुनाथ को फटकारते हुए बोला — "चुप। वहाँ का नाम लेना भी पाप है।" फिर पं० गदाधर मिश्र की ओर मुड़कर बोला— "देखिये तो पंडित जी ! यह अभागा उस गांव का नाम ले रहा है ! उस मलेच्छपुरी का ! जहां न कोई बात रह गई है, न विचार रह गया है।"

पं० गदाधर जी भी शिर हिलाते बोले — "अवश्य अवश्य ! म्लेच्छपुरी तो है ही ! जहाँ शास्त्र की मर्यादा नहीं रही, जहां स्पृश्यास्पृश्य का विचार नहीं रहा, उसे और कहा ही क्या जाय ? कितना अन्याय है ? ब्राह्मण का लड़का ! उच्च कुल में उत्पन्न हुआ ! किंतु किसी की मर्यादा न रखी ! सब को डुबो दिया ! घोर कलयुग ! घोर कलयुग ! हे भगवान !"

रघुवीर —"हाँ पंडित जी ! कलियुग तो है ही। इसी से तो ऐसा हो रहा है ! सच पूछिये तो यह हैजा भी इन्हीं बदमाशों के पाप का फल है। इनका पाप सारे समाज को ले डूबेगा ! हमारी संस्कृति-सभ्यता का सत्यानाश कर छोड़ेगा !"

इस संस्कृति-सभ्यता शब्द का अर्थ शायद किसी की समझ में नहीं आया। संभवतः रघुवीर को भी इसका अर्थ मालूम न था। हाँ, अखबार वह जरूर मँगाया करता था। उनमें संस्कृति-सभ्यता पर लंबे-चौड़े लेख और देश के बड़े नेताओं के भाषण वह अवश्य पढ़ लिया करता था। देश के दूसरे गँवई और शहरी लीडरों की तरह वह भी इन शब्दों का अक्सर प्रयोग किया

करता, अपना रोब जताने के लिये, अपने ज्ञान की गरिमा दिखाने के लिये।

रघुवीर के उक्त उद्गार से अपनी पूरी सहमति जताते हुए पं० गदाधर जी बोले—"आपका कहना सोलह आने सही है रघुवीर बाबू! हरिहरपुर की देखा देखी यहाँ के छोटे लोग भी शिर उठाने लगे हैं। यह बड़ी बुरी बीमारी है! छूत की बीमारी! इसी हैजे की तरह! इनका भी उपाय होना चाहिये! इसकी भी रोक-थाम होनी चाहिये! यदि रोक-थाम न की गयी, तो समाज में भले लोगों के लिये जगह न रह जायगी।"

रघुवीर ने बड़े आवेश के साथ कहा—"हरिहरपुर में भले लोगों का रहना मुश्किल हो गया है पंडित जी! सब एक-एक कर गाँव छोड़ने लगे हैं। कई तो हार मान कर उस शैतानी संघ में शामिल भी हो गये हैं। लेकिन मेरे मित्र भुवन और देवकी नाथ झा अब भी मर्द की तरह डटे हैं! क्या कहें पंडित जी! जमीन-जायदाद के रहते भी वे लोग भूखों मर रहे हैं। भुवन और देवकीनाथ के लिये तो गाड़ी भर-भर कर मैं अनाज भेजा करता हूँ। लेकिन यह कब तक चलेगा? कोई मित्र भी किसी की कब तक मदद करेगा?"

पं० गदाधर जी—"किंतु रघुवीर बाबू, अब तो आप लोगों का अपना शासन है, अपना कानून है। आप कांग्रेस के बड़े नेता हैं। फिर क्यों नहीं इसके विरुद्ध कुछ करते?"

रघुवीर—"जरूर करेंगे पंडित जी, जरूर करेंगे। अगर नहीं करेंगे तो मरेंगे।"

पं० गदाधर जी एक बार और नश की गहरी छींक लेकर बोले—"नहीं रघुवीर बाबू, आप क्यों मरेंगे? मरें आपके शत्रु! मैं शंकर और पार्वती से आपके निमित्त प्रार्थना करता हूँ। मेरी प्रार्थना क्या निष्फल जायगी?"

रघुवीर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर बोला—"आप विद्वानों का अशीर्वाद चाहिये। फिर सब कुछ अच्छा ही होगा।"

पं० गदाधर जी दोनों हाथ चमका चमका कर बोले—"मैं हृदय से अशीर्वाद करता हूं, शत कंठ से अशीर्वाद करता हूँ! आप चिरंजीवी बनें! सुख-सौभाग्य से आपका जीवन परिपूर्ण होवे।"....फिर एक बार अगल-बगल निहार कर आहिस्ते से बोले—"आप से कुछ कहना है रघुवीर बाबू!"

"क्या कहना है? कहिये!"

"सब के सामने कहने की बात नहीं है। जरा एकाँत में...."

रघुवीर ने एक बार बैठे लोगों पर दृष्टि दौड़ाई, पर किसी ने हिलने का नाम नहीं लिया। फिर जरा झल्ला कर बोला—"अच्छा चलिये पंडितजी, हम ही लोग चलें।" कहकर दोनों जने एकांत में आ गये।

रघुवीर ने कहा—"अब कहिये क्या कहना चाहते हैं आप?"

पं० गदाधर जी ने एक बार फिर अगल-बगल निहारा। खखास कर गला साफ करके स्वर में चापलूसी के घड़े उड़ेलते बोले—"हें हें.....आप तो जानते ही हैं रघुवीर बाबू, कि हम आपके पुश्तैनी पुरोहित हैं। और.....और आप के स्वर्गीय पिता बाबू संग्राम सिंह मेरे लंगोटिया दोस्त थे। मैंने राज पंडिताई भी की, मान सम्मान भी हासिल किया, किंतु यह कभी मन में नहीं आने दिया, कि मैं रघुवीर बाबू का पुरोहित नहीं हूँ। जैसे रघुकुल के पुरोहित गुरु वशिष्ठ वैसे आप के कुल के हम।"

"हां हाँ, सो तो है ही, सो तो है ही! आप हमारे कुल गुरु हैं, कुल पंडित हैं। कहिये, निर्धोक कहिये! जो कुछ कहना हो, कह जाइये!"

"कहना क्या है, बस एक मामूली सी बात है। आपकी कृपादृष्टि की आवश्यकता है।"

"हाँ हाँ कह जाइये। निर्धोक कहिये। मैं आपका बच्चा ही तो हूँ।"

सुनकर पंडित गदाधर का चेहरा खिल उठा। मुंह चमका कर चट दायाँ हाथ रघुवीर के शिर पर रख कर अशीर्वादों की झड़ी लगाते हुए बोले—"युग युग जीते रहें रघुवीर बाबू! आपकी जय हो। आपके शत्रु नष्ट होवें। कुल पूत बढ़े। सुख संपत्ति का अंबार लगे। मैंने कहा कब कि आप मेरे बच्चे नहीं हैं? इसी से तो कहता हूँ। मुरली आपका छोटा भाई ही तो है। जरा उस पर दया दृष्टि दीजिये। गत वर्ष इँटरेस पास होगया; अब एफ. ए. पढ़ रहा है। बड़ा खर्चा करता है। अब मैं दे सकता नहीं हूँ। चाहता हूँ कि उसका कोई ढीला हवाला लगा दें, तो इस बूढ़े का बोझ हल्का हो जाये। आज कह रहा था, रघुवीर भाई ऐरों गैरों को नौकरी दिलाते हैं, मगर अपने आदमियों पर कोई ध्यान नहीं देते।"

पं० गदाधर जी युवावस्था में ही किसी एक महाराजा के यहाँ राज पंडिताई कर चुके थे। और अपनी जन्म जात चापलूसी प्रतिभा के परिणाम स्वरूप समान्य संस्कृतज्ञ होते हुए भी महामहोपाध्याय का पद प्राप्त कर चुके थे। महामहोपाध्याय होने के कुछ साल बाद ही राज पंडिताई का पद उनसे छिन गया। न जाने क्यों उनपर एक भयानक अभियोग लगा दिया गया था? बाद में अभियोग से मुक्त हो उन्हें पुनः अपनी जन्म धरती चंद्रभानुपुर की शरण लेनी पड़ी। घर में किसी चीज की कमी न थी। जीवन बड़े सुख से बीता जा रहा था। इन्हीं के इकलौते सुपुत्र का नाम मुरलीधर था। मैट्रिक परीक्षा में पाँच बार फेल होकर छठी बार किसी तरह पास हुआ था। अब एफ. ए में पढ़ रहा था।

पं० गदाधर की खुशामद भरी गिड़गिड़ाहट से पसीज कर रघुवीर ने पूछा—"अपने आदमियों पर सब का ख्याल रहता है पंडित जी! लेकिन क्या करें, याद नहीं रहता। काम का इतना

बोझ आ पड़ा है कि...अच्छा, मुरली कैसी नौकरी चाहता है ?"

"आपकी जैसी कृपा हो रघुवीर बाबू ! मगर उसकी बड़ी लालसा है दारोगा बनने की ! और सच पूछिये, तो मेरी अपनी लालसा है कि मरने से पहले पुत्र को दरोगा बनते देख लूं। आपका बड़ा कृतज्ञ रहूँगा रघुवीर बाबू। जन्म-जन्मान्तर आपका गुण गाऊंगा। मरने के बाद भी।"—और कहकर पंडित जी ने चट दायाँ हाथ बढ़ा रघुवीर की ठोडी पकड़ ली।

रघुवीर कुछेक क्षण चुप रहने के बाद आहिस्ते से बोला—"अच्छा अच्छा, फिक्कि मत कीजिये ! मैं मुरली के लिये जी जान से कोशिश करूंगा।" कहकर रघुवीर चुप हो गया, और दोनों जने फिर उस गोष्ठी में आ मिले।

× × ×

चंडी यज्ञ और मिट्टी के महादेव की पूजा तो लग भग हर भले गांव मे रचायी गयी, किंतु हैजे की देवी धूमावती पर शायद इसका जरा भी असर न पड़ा। अपने काक-रथ पर सवार हो सदल-बल वे एक से दूसरे गाँव का चक्कर लगाने लगीं। निरीह मानव पर भय और आतंक का साम्राज्य फैलाने लगीं। आखिर धूमावती के इस भीषण अभियान के मर्मतुंद समाचार हरिहरपुर के संघ में पहुंचने लगे। सँघियों के दिलों में प्रतिरोध का मंगलमय संकल्प जड़ जमाने लगा। वे बड़ी उत्सुकता से अपने प्यारे नेता सुमन चन्द्र के आदेश का इँतजार करने लगे।

बाबू गौरीशँकर जेल से रिहा होकर सीधे हरिहरपुर के संघ में आ गये थे। उनके साथ रमेश और रामचन्द्र भी आये थे। लाला किशनचंद, बाबू गौरीशंकर, सुमन, रमेश, रामचँद्र, विनोद, पार्वती, गौरी, गार्गी, सरोज आदि सब एक साथ बैठे इस समस्या पर विचार कर रहे थे। संघ के दूसरे नर नारी भी जमा हो गये थे। सब के चेहरे पर चिंता की छाया स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

बाबू गौरीशंकर गौरी को उद्देश करके बोले—"याद है न बिटिया, बनारस का सन '३६ का लेग ? कैसा भयानक था ? कितने लोग मरे थे ? लेकिन वह शहर था, उसका क्षेत्र सीमित था, फिर भी कितना कष्ट तुम लोगों को उठाना पड़ा ? लेकिन यह देहात है, इसका क्षेत्र विस्तृत है, सुविधाएं भी कम हैं। और इस हैजे की भयानकता उस लेग से कहीं बढ़ कर है। इस बार हमें अधिक से अधिक कष्ट उठाने को तैयार होना पड़ेगा। तभी इस परीक्षा में सफल हो सकेंगे।"

गौरी—"कष्ट से हम लोग डरते कब हैं चाचा! तुम्हारी शिक्षा और संपर्क ने इतना तो अवश्य सिखा दिया है।" फिर पार्वती की ओर ताककर मुस्कुराती हुई बोली — "और हमारी दीदी तो जन्म से ही त्याग और तपस्या की मूर्ति है। मर्दों की बात मर्द जानें। वे स्वभाव से ही कठोर और कष्ट-सहिष्णु होते हैं। संघ की औरतों की ओर से लेकिन मैं वचन देती हूँ कि अपनी दीदी के नेतृत्व में हम किसी भी बात में तुम लोगों से नहीं रहेंगी।"—और कहकर अपनी बगल में बैठी पार्वती के गले से लिपट गयी।

पार्वती मीठी फटकार बताती बायें हाथ से गौरी की देह को अलग हटाती हुई बोली — "हट, अलग हट पगली! मेरा गला छोड़।"

गौरी जरा अलग हटकर पुनः पार्वती से बोली—"अच्छा दीदी! मैंने औरतों की ओर से कोई झूठी बात तो नहीं कही ? .....अच्छा गार्गी, हाँ सरोज, मैंने तुम लोगों की ओर से जो बात कही वह ठीक है न ?"

जवाब में गार्गी और सरोज केवल मुस्करा दीं।

और उधर से छाती ठोकते हुए विनोद बोला — "देखो गौरी बुआ! मर्दों की ओर से मैं भी बोलता हूँ। अपने चाचा जी के नेतृत्व में हम पुरुष भी तुम से पीछे नहीं रहेंगे। जान तक देनी

पड़े तो भी।"—कहकर अपने प्यारे चाचा सुमनचंद्र को और अपनी जोशीली नज़र दौड़ायी। उत्तर में सुमन ने भी मुस्कुरा दिया।

बाबू गौरीशङ्कर झट विनोद को अपनी ओर खींचकर उस की पीठ ठोकते हुए बोले—"वाह बेटे! क्यों नहीं! यही तो होना चाहिये! जैसा चांचा वैसा ही वीर भतीजा।" और सुमन की ओर ताक कर स्नेह-सने स्वर में बोले — "हम पुरुषों का नेता हमारा बीनू रहेगा सुम्मू!" और फिर विनोद की पीठ थपथपाते हुए बोले—"देख बीनू! तू हमारा नेता रहा। और यह बूढ़ा हर जगह तेरे पीछे पीछे चलेगा।"

विनोद कुछ लजा सा गया। उसकी लज्जा दूर करते हुए गौरीशंकर जी बोले "लजा क्यों गये बीनू? बहादुर लजाते नहीं।" फिर उसका ललाट चूमकर बोले—"तुम जैसे बच्चे ही देश और समाज के भविष्य हैं बीनू! अभी से नेता बनना सीखो। बूढ़े तुम्हारे पीछे चलेंगे। रास्ता भी दिखायेंगे।"

पार्वती अब सुमन को उद्देश करके बोली — "हाँ सुम्मू! इंतजाम जल्दी होना चाहिये। लोग कीड़े-फतिंगों की मौत मर रहे हैं। देर करना बड़ा अपराध होगा।"

सुमन ने कहा — "नहीं दीदी! देर क्यों करेंगे? आज्ञा करो हम तैयार हैं। हमारे नेता तुम्हीं हो न!"

पार्वती— "इस नेतागीरी की बात छोड़ो! सब अपना नेता आप हैं। और नेता सब को बनना ही पड़ेगा। रामचंद्र, रमेश, गोरी, गार्गी, सरोज, मैं, तुम और बीनू! एक-एक दो-दो गाँव सब के जिम्मे रहेगा। गौरी हमारे संघ की जान है। हमारे गार्गी और रामचंद्र पूरे डाक्टर हैं। रमेश हर कला में निपुण है। सबसे अधिक भार इन्हीं पर रहेगा। अपने संघ में दर्जनों साइकिलें हैं। नर्सों और धात्रियों की कमी नहीं। गौरी और गार्गी के प्रताप से इस कला में अब बीसियों औरतें निपुण बन

गयी हैं। स्वयंसेवकों की भी अपने संघ में कमी नहीं। दवा-दारू पर्याप्त है। अपने संघ की एक बड़ी कार है। नाजुक रोगियों को ढोकर बड़ी आसानी से अस्पताल में लाया जा सकता है।" फिर गौरीशंकर जी को उद्देश करके बोली — "क्यों चाचा जी, तुम्हारी क्या राय है ?"

"जो तुम्हारी राय है वही मेरी भी। मुझे पक्का विश्वास है, कि मेरी पार्वती बिटिया कभी गलत सोच नहीं सकती।"

"प्रशंसा मत करो चाचा !"

"मेरी क्या सामर्थ्य कि तेरी प्रशंसा करूं बेटी ! चल, मैं भी तेरे पीछे चलूंगा।"

"तुम्हें आगे पीछे चलने की जरूरत नहीं चाचा ! तुम्हें यहीं रहना होगा। इस बीच संघ की सारी जिम्मेवारी तुम्हीं पर रहेगी। बड़ा भारी काम है चाचा ! दूसरे किसी से सम्हलेगा नहीं। बाहर से रोगी अस्पताल में आयेंगे। उनकी देख रेख भी तुम्हारे ही जिम्मे रहेगी। बीनू डाक्टरी पढ़ रहा है। वह तुम्हारे साथ रहेगा। बीच बीच में गार्गी और रामचन्द्र भी आ जायेंगे। बड़े चाचा (लाला किशन चँद) भी साथ रहेंगे।"

"अच्छा बिटिया, जो आज्ञा करो ! बूढ़ा खुशी से उसका पालन करेगा।"

अपनी बुआ का आदेश सुनकर उधर विनोद उदास हो गया। मुंह मिचका कर बोला—"नहीं ! मैं तो गांवों में जाऊंगा। बीमारों की सेवा करूंगा ! यहां रह कर क्या करूंगा ?"

पार्वती उसे पुचकारती हुई बोली—"यहाँ तो सब से बड़ा काम है बीनू ! नाजुक रोगी कार पर रख कर यहीं तो लाये जायेंगे। उनकी दवा करना, उनकी सेवा करना। छोटे और बड़े चाचा जी भी तेरे साथ रहेंगे।"

विनोद चुप हो गया।

पार्वती फिर लाला किशनचंद जी से बोली — "अच्छा चाचा जी! तुम, बीनू और छोटे चाचा जी यहीं रहेंगे! भला?"

इसपर लाला जी अपनी गर्दन हिलाते हुए बोले — "नहीं बिटिया सो कैसे होगा? मैं तो मोर्चे पर जाऊँगा। गाँव में जाकर रोगियों की सेवा करूँगा। एक गांव मेरे सिपुर्द भी करदो!"

इस पर पार्वती बारंबार गर्दन हिलाती बोली — "नहीं चाचा जी नहीं! ऐसा कैसे होगा? सत्तर की उमर हुई! इस जेठ की कड़कती धूप में तुम्हें गाँव में मरने जाने दूंगी? ऐसा कभी नहीं हो सकता!"

लाला जी स्वर को अत्यंत मजबूत बनाके बोले — "मैं तो जरूर जाऊँगा बिटिया! बूढ़ा हो गया तो क्या? सत्तर की उमर हो गयी तो क्या? और मर ही गया तो क्या? इनसानियत मर रही है, और मैं यहां टाँग फैलाके बैठा रहूँ? ऐसा कभी नहीं होने का!"

पार्वती की आँखों में एकाएक आँसू उमड़ आये। रूँधे गले से वह बोली—"नहीं मानोगे चाचा?"

और लाला जी बच्चों की तरह हठ करते हुए बोले — "मैं नहीं मानता।"

पार्वती उसी प्रकार अश्रुरुद्ध स्वर में बोली—"अच्छा जैसी तुम्हारी इच्छा!"

: ४४ :

महीने भर की संहार-लीला के बाद हैजा शाँत हुआ। उफ्! इतना भयानक! बड़े बूढ़ों का कहना था, ४०-५० साल के बीच ऐसी महामारी कभी नहीं हुई। हरिहरपुर के संघ-स्वयं-सेवकों ने डटकर इस महामारी का मुकाबला किया। जिस गाँव में

यह स्वयं-सेवक-सेना पहुंची, कि धूमावती की फौजों के पैर उखड़ते देर नहीं लगी। एक के बाद दूसरे गाँव को हैजे के चँगुल से छुड़ाती यह संघ-वाहिनी बड़ी वीरता और निर्भीकता से आगे बढ़ती गयी, और महीने के अंदर उस प्राँत को, उस इलाके को हैजे के कीटाणुओं से निर्मुक्त कर लिया। और इस संस्मरणीय अभियान में वीरता-पूर्वक बढ़ते और जूझते उस सत्तर साला वृद्ध तपस्वी लाला किशनचंद की मृत्यु हो गयी! मरते वक्त उस वृद्ध के चेहरे पर कैसी स्वर्गीय आभा झलक रही थी! कौन कह सकता था कि कै और दस्त के चपेटे में पड़कर उसकी नसें ढीली पड़ गयी हैं? अंतिम साँस के साथ ही उसके मुख से यह वाक्य निकला था —"संघ की जै! संघ जीवन की जै!" और इस के उत्तर में संघियों के मुख से यह अश्रुरुद्ध समवेत स्वर-लहरी आकाश में गूंज उठी थी — "संघ की जै! मृतात्मा की जै! मानवता की जै!"

× × ×

अगहन का महीना इस साल सारी श्री-समृद्धि के साथ, हरिहरपुर के सङ्घ-जीवन में अवतीर्ण हुआ था। 'मासानाँ मार्ग-शीर्षोऽहम्' भगवान कृष्ण का यह वाक्य अक्षरशः चरितार्थ हो रहा था। सङ्घ के मीलों फैले लहलहाते धान के खेत! देख कर आँखों को आश्चर्य हो रहा था! अविश्वास हो रहा था! इस प्रत्यक्ष समृद्धि के समक्ष कवि की अतिरंजित कल्पना भी फीकी और अर्थहीन प्रतीत होती। सुजला सुफला के गीत भी अगीत मालूम पड़ते। मनुष्य में इतनी क्षमता? श्रम में इतना सामर्थ्य? सङ्घ-जीवन में इतनी शक्ति? हरिहरपुर की संपन्नता और चारुता को देख स्वतः लोगों के दिलों में ऐसे प्रश्न उठा करते। यह जादू तो नहीं? जादू की करामात तो नहीं? इन्द्रजाल तो नहीं? नहीं बच्चू! न यह जादू है, न जादू की करामात है, न इंद्रजाल है। यह है समता की भित्ति पर आश्रित सङ्घ जीवन के

श्रम, सचाई, और संकल्प की महान महिमा ! उस पुनीत जीवन का जीता-जागता स्वरूप !

हरिहरपुर के संघ की ख्याति दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। हैजा-पीड़ितों की सेवा ने इस ख्याति के बढ़ाने में बड़ी मदद की। अखबारों ने इस सङ्घ जीवन की खबर जनता तक न पहुंचाने की मानो शपथ खा ली थी। शायद उन के पास स्पेस (जगह) की कमी हो, क्योंकि आज-कल विज्ञापन का रेट बहुत बढ़ जो गया था। और हिंदू-मुस्लिम दंगा सम्बन्धी अतिरंजित और कल्पित खबरों से अपने कालम के कालम रंगने का काम भी तो बहुत बड़ा विज्ञापन था ! हिंदू और कांग्रेसी पत्रों का यह पुनीत कर्तव्य बन गया था कि मुसलमानों के अन्याय-अत्याचार की खबरों में नमक-मिर्च लगा खूब चटकदार और भड़कदार बना कर जनता के सामने रखा जाय। मुस्लिम और मुस्लिम-लीगी पत्र भला इस कला में क्योंकर पीछे रहते ? बल्कि आगे बढ़ने में होड़ लग गयी थी। इन का भी यह पाक पेशा बन गया था। और इस प्रकार अखबारों की बिक्री और प्रसिद्धि में बाढ़ आ गयी थी। इनका अपना बिगड़ना क्या था ? आग लगा दी, काम पूरा ! उस सांद्र दायिकता की धधकती आग में कीड़े-मकोड़ों की मौत मरेंगे निरपराध और बेगुनाह गरीब बेचारे !

अस्तु हरिहरपुर का संघ अब आस पास के गांवों का पुण्य तीर्थ बन गया था। गाँवों के भले लोग लाख इस संघ के विरुद्ध विषैला प्रचार करते किंतु परिणाम विपरीत होता। लोगों के दिलों में इस संघ को देखने की आकांक्षा उत्कट हो उठती। वे आते, और हृदय में अद्भुत आशा और श्रद्धा के भाव भरे अपने गांवों को वापस जाते। कई उच्च हृदय नवयुवकों ने इस आदर्श पर अपने गाँवों में भी काम करना आरंभ किया। भले लोगों के दिल में चूहे दौड़ने लगे। धनियों में आतँक छा गया !

वे मिलकर प्रतिरोध करने के उपाय सोचने लगे। इस बीमारी को जड़ से मिटाने की चिंता में व्याकुल होने लगे।

दिन के दो बजे थे। हेमंत के हिम से कुछ उद्विग्न हो बाबू गौरी शंकर संध के खुले ऊंचे चौड़े चबूतरे पर बैठे धूप सेंक रहे थे। इन दिनों धूप लगती भी बहुत प्यारी है। अपने पुत्र-पौत्रों के अंग स्पर्श की तरह मधुर होता है इसका संस्पर्श। वहीं पास में सुमन, रमेश, रामचंद्र आदि बैठे किताबें पढ़ रहे थे। पार्वती, गार्गी, गौरी, सरोज आदि की कोमल अंगुलियां स्वीटर की सिलाई में मानों नाचती प्रतीत होतीं। एक ओर छोटे नन्हे बच्चे स्कूल से छुट्टी पाकर खेल-कूद में भूले हुए थे। किसे विश्वास था, कौन कह सकता था, कि इस थोड़े से अर्से में भिखारी और बुद्धू का बच्चा गाँव के बड़े लोगों के बच्चों में इस प्रकार हिल-मिल कर खेलेंगे? और अब छोटे बड़े का भेद रह भी तो नहीं गया था! उनके खाने-पीने और पहनावे में कोई अन्तर भी तो नहीं रह गया था! इस संघ के विद्यालय ने यह साफ साबित कर दिखाया कि बुद्धि और प्रतिभा केवल ऊँची जात वालों की बपौती नहीं होती। कितने ब्राह्मण-कुमार गोबर-गणेश की मूर्ति साबित हो रहे थे, जब कि राजू चमार के बच्चे की प्रतिभा पर सभी विस्मित थे।

धान की फसल के तैयार होने में अभी हफ्ते दो हफ्ते की देर थी। अभी खेत के काम से सबको फुर्सत थी। अतः संघ के वयस्कों को हाथ के काम सिखाये जा रहे थे। काम कई तरह के थे। जैसे चर्खे चलाना, कपड़े बुनना, तेल निकालना, मिट्टी का नमक बनाना, देशी चीनी बनाना इत्यादि इत्यादि। यद्यपि संघ को गांधीवादी तरीकों में आस्था न थी, तथापि मशीन, कल पुर्जे आदि उपलब्ध न होने तक इन्हीं उपायों को काम में लाया जा रहा था। कपड़े पर कंट्रोल, तेल पर कंट्रोल, जीवन की हर आवश्यक वस्तु पर कंट्रोल। हर जगह चोर

बाजारी, और बेईमानी का दौर दौरा। किंतु संघ हर दृष्टि से आत्म निर्भर था। घर के कपड़े, घर का तेल, घर का नमक और घर की चीनी। परमुखापेक्षा की कोई गुंजाइश न थी। प्रति सप्ताह संघ की ओर से एक नूतन नाटक खेला जाता। बाकायदा स्टेज बना था। स्त्री पुरुष दोनों खुल कर अभिनय में भाग लेते। उस समय संघ के एक भाग में चबूतरे से कुछ दूर पर एक नये नाटक का पूर्वाभिनय (रिहर्सल) हो रहा था। अधिदेशक (डायरेक्टर) था विनोद। एक ओर पुस्तकालय की लंबी चौड़ी शाला में वृद्ध प्रौढ़ युवा और बच्चे अखबार और किताबों के पढ़ने में मशगूल दीख रहे थे। एक तरफ प्रसूति मंदिर और शिशु मंदिर था। एक तरफ अस्पताल के सुन्दर विशाल भवन पर संघ का झंडा लहरा रहा था। और संघ ग्राम के बिल्कुल एक किनारे एक साफ सुथरी बड़ी गौशाला थी जिस में छटी-चुनी बीसियों दुधार गायें थीं। संक्षेप में-हरिहरपुर का संघ, जीवन के किसी भी पहलू की उपेक्षा नहीं कर रहा था।

बाबू गौरीशंकर चबूतरे पर बैठे मीलों तक फैले हरे-भरे खेतों को देख रहे थे, उसके श्री-संभार को देख रहे थे। मैदान में हसते खेलते बच्चों को देख रहे थे। जब तब आंखें मूंद कर मानो समाधिस्थ हो जाते, उनके सदा प्रसन्न चेहरे पर प्रसन्नता मानो नाचने लगती। मानो संघ के इस पावन जीवन के वर्तमान और भविष्य पर विचार करते ही उनके हृदय में हर्ष का पारावार उमड़ पड़ता। और जब-तब उनकी आँखों से आँसू बनकर निकल पड़ता। रह रह कर सर्वाङ्ग रोमाँचित हो उठता। चाचाजी की दशा देख सभी विस्मित थे। वे जानते थे कि उनके ये आँसू शोक के नहीं हर्ष के हैं। ये रोमाँच भय के नहीं आनन्द के हैं। किंतु कुछ पूछने या उनके समाधि भाव में बाधा डालने का साहस किसी में न था। सभी अपने प्यारे चाचा के प्रसन्न मुख मंडल को चंचल एवं अपलक आंखों से देख रहे थे।

एक समय चाचा जी के मुख से प्रसन्न गंभीर सरस्वती निकली। सभी उत्कर्ण हो उठे। चाचाजी एक बार अपनी प्यारी पवित्र चितवन से सब को सनाथ करते हुए बोले—"यह है भूमिका ! भावी समाज की भूमिका ! भावी संसार की भूमिका ! मानवता की भूमिका ! मानव आशा की भूमिका !" और फिर सुमन और पार्वती को उद्देश करके बोले "प्यारे पुत्रो ! तुम्हारा यह आदर्श, तुम्हारे इस संघ का आदर्श अवश्य सफल होगा, अंत में अवश्य विजयी होगा ! मैं अशीर्वाद करता हूँ, कामना करता हूँ, पूरे विश्वास और आस्था के साथ, यह सफल होके रहेगा, विजयी बनके रहेगा ! इस मंगलमय प्रयोग के बीज कभी नष्ट न होंगे। यह अंकुरित होगा, पल्लवित होगा, और किसी दिन विशाल वृक्ष में परिणत होकर अपनी मंगलमय प्रकाँड शाखाओं और परशाखाओं से समस्त विश्व को आच्छादित कर देगा।"—कहकर वे चुप हो गये, और सुमन चट आगे बढ़ कर चाचाजी के चरणों को बारंबार छू कर अपने शिर और आँखों से लगाने लगा।

उधर से गार्गी सहसा बोली—"कुछेक मेहमान आते दिखाई दे रहे हैं ! दूर के मालूम होते हैं।"

सबों की दृष्टि एकाएक उस ओर दौड़ गयी और देखा कि सचमुच चार-पाँच सज्जन चबूतरे की ओर पधार रहे हैं और सुरजीत उन्हें रास्ता दिखाता ला रहा है। उनके कुछ निकट आते ही गौरी सहसा चौंक कर बोली—"ऐं ! ये तो शास्त्री जी हैं चाचा ! वही बनारस वाले पं० चतुर्भुज शास्त्री !"

बाबू गौरीशंकर जी को पहचानने में अब देर न लगी। सबों ने उठ कर अतिथियों का स्वागत किया। बड़े आदर से उन्हें बिठाया गया। हाथ मुंह धोने के लिये पानी दिया गया। तश्तरियों में नाना-स्वादु चीजें सजा के मेहमानों के आगे रखी

गयीं। अपने इन दुरागत अतिथियों के सम्मान में उस दिन सारा सङ्घ ग्राम जुट पड़ा। रात को भाँति भाँति के भोजन तैयार किये गये। साथ मिलकर भोजन किया गया। नृत्य-गीत सुनाये गये। विनोद की अधिदेशना में रमेश-रचित एक नूतन नाटक खेला गया। इस प्रकार आनन्द-उत्सव के बीच वह रात समाप्त हुई।

पं० चतुर्भुज शास्त्री काशी विद्यापीठ के स्नातक थे। काशी के एक महा संपन्न परिवार में पैदा हुए थे। पिता पं० प्रमोदशङ्कर शहर के नामी वकीलों में से थे। बाग-बगीचों से घिरी आली-शान अट्टालिका में रहा करते। कई गाँवों की जमीनदारी थी। वे स्वयं राजनीति से अभिरुचि न रखते हुए भी पुत्रों की राज-नैतिक प्रवृत्ति में बाधा नहीं डालते। शास्त्री जी जन्म से ही वैभव की गोद में पले थे। बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व था। छोटी छोटी आंखों के बावजूद उन के गुलाबी चेहरे पर सौंदर्य की आभा सदा खेलती रहती। दाढ़ी-मूंछें साफ थीं। उन के लम्बे लम्बे बाल किसी पुरानी लीला-मण्डली के किसी अभिनेता की याद दिला रहे थे। वक्तृत्व-कला में अपना सानी नहीं रखते। भाषण देते, मालूम होता कविता बोल रहे हों। श्रोतृ-मण्डल को बरबस प्रभावित होना पड़ता। जो उनके विचारों से सहमत न थे उन्हें भी।

दूसरे दिन सवेरे सङ्घ के चबूतरे पर बैठे शास्त्री जी सङ्घ की समृद्धि-सुषमा को देख रहे थे। वहाँ के जीवन की एक संक्षिप्त झाँकी ले रहे थे। सङ्घ के प्रमुख व्यक्ति उन्हें घेर कर बैठे थे। अब तक सङ्घ के किसी व्यक्ति ने भी उनके आने का कारण नहीं पूछा था। अब शास्त्री जी हाथ जोड़ स्वयं बाबू गौरीशङ्कर जी को उद्देश करके बोले — "दरभंगा एक बरात में आया था बाबू जी! पता चला कि हरिहरपुर यहाँ से नजदीक है। फिर सोचा, आप के दर्शन करने के साथ इस सङ्घ को भी देखता चलूं।"

गौरीशङ्कर जी शिर हिलाते हुए बोले — "बड़ी कृपा की आप ने शास्त्री जी ! वर्षों बाद आप के दर्शन हुए ।"

फिर शास्त्री जी को उद्देश करके गौरी बोली — "कहिये शास्त्री जी ! हमारा सङ्घ आप को कैसा लगा ?"

"बहुत अच्छा लगा गौरी जी, बहुत अच्छा लगा !"

"इस आदर्श पर आप समाज का निर्माण पसंद करेंगे ?"

"जरूर पसंद करेंगे । लेकिन....."

"लेकिन क्या ?"

"लेकिन यही कि मैं महात्मा गाँधी के आदर्श को संसार में सर्वमहत् समझता हूँ । उसीके आधार पर समाज और संसार का निर्माण पसंद करूंगा !"

"महात्मा गाँधी के आदर्श और इस सङ्घ जीवन के आदर्श में आपका मतभेद क्या है ?"

"मतभेद जरूर है, लेकिन बहुत थोड़ा ।"

"वह थोड़ा क्या है ? जरा कृपा कर सुनाइये !"

"यही कि इस आदर्श में वर्ग-सङ्घर्ष का बीज निहित है ।"

गौरी का अन्तस् जल उठा ! फिर भी वह स्वर को कोमल बना के बोली — "संसार में ऐसा कौन सा आदर्श है शास्त्री जी, जिस में सङ्घर्ष का बीज निहित न हो ?"

और शास्त्री जी ने बड़े तपाक से जवाब दिया — "वह आदर्श गाँधीवादी आदर्श है गौरी जी !"

"बिल्कुल गलत शास्त्री जी, बिल्कुल गलत । वास्तविकता से आप के मत का जरा भी संपर्क नहीं ।"

शास्त्री जी का चेहरा तमतमा उठा । तथापि अपने को सम्हालते हुए, किंतु बड़े ही आवेश के साथ बोले — "गाँधी का आदर्श ही संसार का उद्धार कर सकेगा गौरी जी ! मैं पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ कि आज मानव-समाज को एक ऐसे पथ और

ऐसी पद्धति की आवश्यकता है, जो मनुष्य के देवत्व का उद्‌बोधन कर सके, उसके शुभ को जागृत कर सके, और उसके उज्ज्वलाँश का उद्दीपन कर सके। और यह सामर्थ्य और यह शक्ति गांधीवाद के सिवा और किसी वाद में है ही नहीं। गांधी मानव-समाज को हिंसा के मार्ग से विरत करके अहिंसा की ओर ले जाना चाहता है। वह आज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को; वह आधुनिक संस्कृति की धारा को, जीवन के प्रति आज के मनुष्य की दृष्टि को बदल देने के लिये सचेष्ट है। इस महती क्राँति के चक्र का परिचालन उसके जीवन की साधना है। वह क्रांति चाहता है, पर चाहता है कि यह क्रांति हो रक्तहीन, हत्या हिंसा से विहीन, जघन्यता और पशुता से मुक्त। यही है उसका पथ, प्रयास और प्रयोग।"

गौरी मुस्कुराती हुई बोली—"बड़ा सुन्दर, बड़ा श्रुतिमनोहर है आपका शब्द-विन्यास! मालूम पड़ता है कविता बोल रहे हैं। लेकिन मैं अत्यत नम्रता के साथ पूछना चाहती हूँ आप से, कि हमारे इस संघ के आदर्श में कहां आपने देखी हत्या और हिंसा, कहाँ आप ने देखी जघयन्ता और पशुता?"

गौरी के व्यंग्य से शास्त्री जी तिलमिला उठे। बोले—"आज सर्वत्र जमीनदारों और किसानों में संघर्ष चल रहा है। खून की होली खेली जा रही है। आपका यह संघ इस आग में घी का काम करेगा। परिणाम में भयानक विस्फोट होगा। गरीबों और अमीरों में भयानक संघर्ष छिड़ेगा। और इस संघर्ष में पड़कर हमारी संस्कृति और सभ्यता जलकर राख हो जायेगी। सदियों की संचित निधि इस आग में स्वाहा हो जायगी।"

गौरी उसी प्रकार मुस्कुराती हुई बोली—"लेकिन इस हरिहरपुर की क्राँति में खून की एक बूंद भी नहीं बही शास्त्री जी! और मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यदि हमारे संघ के आदर्श को अपना लिया गया, धनी और संभ्राँत वर्ग अपने

वृथा अभिमान और कुत्सित स्वार्थ को त्याग कर इस में योग दे, और हमारे सुमन भाई और पार्वती बहिन की तरह इस आदर्श का नेतृत्व करे, तो यह निश्चित है कि विश्व में एक ऐसे समाज की सृष्टि होगी, जिस में मानव की पशुता नष्ट होकर देवत्व का उद्बोधन होगा, शुभ का जागरण होगा, और उज्ज्वलांश उद्दीपन होगा। यह एक महती क्राँति होगी, ऐसी क्राँति कि मानव इतिहास में उपमा ढूंढे न मिलेगी। यह क्राँति होगी हत्या और हिंसा से विहीन, पशुता और जघन्यता से उन्मुक्त, और यही है हमारे इस सङ्घ का आदर्श, और यही है इसका पथ, प्रयास और प्रयोग।"

अब शास्त्री जी घबड़ाये। जैसे को तैसा मिला। वही शब्द-विन्यास, और उत्तर भी मुंह तोड़। वहाँ बैठे सभी व्यक्तियों के मुख पर मुस्कुराहट की हल्की रेखा दौड़ती दीख पड़ी। बाबू गौरीशंकर जी बड़े ही शाँत स्वर में गौरी से बोले—"शास्त्रार्थ छोड़ो बिटिया! शास्त्री जी भी ठीक कह रहे हैं, तुम भी ठीक कह रही हो। इस विवाद में धरा ही क्या है? हमें अपना काम करना चाहिये, सचाई और ईमानदारी के साथ। मानवता को ऊपर उठाने का काम, दीन दुखियों के उद्धार का काम कभी बुरा नहीं हो सकता बिटिया! न वह गाँधीवाद के विरुद्ध हो सकता है, न वह मार्क्सवाद के विरुद्ध हो सकता है। यही समाजवाद है, यही साम्यवाद है, और यही है गाँधीवाद। इस में तुम लोगों के झगड़ने का कोई कारण तो मैं देखता नहीं गौरी!"

गौरी बोली—"मैं झगड़ती तो नहीं चाचा जी! कम से कम इतनी शिक्षा तुम से जरूर मुझे मिली है। लेकिन उत्तर दिये बिना रहा नहीं जाता, कम से कम उस आक्षेप का जिसका संबंध सीधे हमारे संघ से है। दुनिया में कौन है तुम से बड़ा गाँधीवादी चाचा? संसार में कौन तुम से अधिक गांधीवाद के

तत्त्व और रहस्य को समझता है चाचा ? इस पृथ्वी पर कौन तुम से अधिक गांधीवादी आदर्शों पर चलकर अपने सर्वस्व का त्याग और बलिदान करने वाला है ? तुम्हें इस संघ जीवन में मंगलमय समाज की भूमिका और मानवता की आशा दीखती है। लेकिन दूसरे गाँधीवादी आचार्यों को इस में वर्ग संघर्ष का बीज निहित दिखाई देता है, अमँगल की भूमिका दिखाई देती है। हरिहरपुर के भुवनचंद्र झा और चंद्रभानुपुर के ठा० रघुवीर सिंह भी तो अपने को गाँधीवाद के घनघोर पुजारी कहते हैं। जरा इन की करतूतों पर नजर तो डालो ! इस सङ्घ को, इस सङ्घ-जीवन को, इस सङ्घ के आदर्शों को सत्यानाश करने के लिये उन्हों ने क्या क्या नहीं किया ? और क्या २ नहीं कर रहे हैं ?"—कहते कहते गौरी एकाएक रुक गयी। क्रोध और क्षोभ के उमड़ते आवेग से कंठ उसका रुद्ध हो गया। उसके ओठ थर थर काँपने लगे।

गौरी की दशा देख सब को डर हो गया। शास्त्री जी भी सकपका गये। गौरीशंकर जी चट उसे अपनी गोद की ओर खींच कर उसकी पीठ थपथपाते बड़े प्रेम-पूरित स्वर में बोले—"गुस्सा मत करो बेटी ! नाराज न होवो गौरी ! यह मनुष्य की दुर्बलता है। मनुष्य बड़ा ही दुर्बल प्राणी होता है। और मुझे इतना बढ़ कर न समझो बेटी ! मैं भी एक मनुष्य हूँ। मैं भी दुर्बल हूँ। हाँ, यथासाध्य अपने गुरुदेव के पद-चिह्नों पर चलते रहने का प्रयत्न अवश्य करता हूँ। उन पर चलते चलते अपने को उत्सर्ग अवश्य कर देना चाहता हूँ।" फिर शास्त्री जी उद्देश करके बोले—"इस सङ्घ के लक्ष्य में, इस सङ्घ-जीवन के आदर्श में संघर्ष का बीज अवश्य निहित है शास्त्री जी ! किंतु वह संघर्ष मंगलमय संघर्ष होगा। उस सङ्घर्ष में उस मंगलमय समाज का बीज निहित होगा जिसकी कामना संसार के सारे महापुरुष कर गये हैं और कर रहे हैं। जिस के निमित्त विश्व के लाखों महा-मानव शहीद हो चुके हैं और हो रहे हैं। याद रखिये शास्त्रीजी !

यह बूढ़ा गौरीशंकर इस सङ्घ में क्षण भर भी टिका नहीं रह सकता, यदि उसे विश्वास हो गया होता कि इसके अंदर सङ्घर्ष का वह अमंगलमय बीज अंतर्हित है जिसका अभी आप संकेत कर चुके हैं। गौरीशङ्कर इस सङ्घ-जीवन को ठुकरा कर पुनः विश्वनाथ की नगरी काशी का आवास ग्रहण कर लेगा, यदि उसे पता चल जाये कि यह भ्रम है, यह मिथ्या है। नहीं शास्त्री जी ! मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है, मेरी आस्था मजबूत हो चुकी है, कि यह सङ्घ ही मेरी काशी है, सङ्घ का यह जीवन ही मेरा विश्वनाथ है। इस सङ्घ के आदर्शों में अपने गुरुदेव की आत्मा को देखता हूँ, और ईश्वर की उस महा मंगलमयी विभूति का यहाँ स्पष्ट आभास पा रहा हूँ !"—कहते २ गौरीशङ्कर जी एकाएक रुक गये, और दोनों हाथ ललाट से सटा कर उस अगम-अगोचर जगदीश्वर के उद्देश से उन्हों ने नमस्कार किया।

गौरीशंकर जी के इस निष्कलुष उच्छ्वास से शास्त्रीजी कुछ कुंठित अवश्य हुए, किंतु फिर भी वे हार मानना नहीं चाहते थे। सकुचाते हुए आहिस्ते से बोले-"हाँ, आपका कहना ठीक है बाबूजी ! निजी तौर पर मुझे इस सङ्घ या सङ्घ के आदर्शों से कोई शत्रुता नहीं है। किंतु जब व्यापक समाज को आगे रख कर सोचता हूँ तो कुछ ऐसा ही दिखाई देता है। समाज का मौजूदा वातावरण कुछ ऐसा विक्षुब्ध हो उठा है कि जल्दी के काम का परिणाम बुरा हो सकता है। तिस पर इन सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों ने जहर फैलाना शुरू कर दिया हैं। जमीनदारों और किसानों का संबंध बिगाड़ना अपना पेशा बना लिया है।"

गौरी बोली—"ओ ! अब बात समझ में आयी ! तब यह क्यों नहीं कहते कि आपको अपनी फिक्र है, अपनी जमीनदारी की फिक्र है। और इसी लिये इस सङ्घ को, सोशलिस्टों को, और कम्युनिस्टों को कोस रहे हैं।"

"सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट कोसने योग्य हैं ही गौरी जी ! ये विदेशी सभ्यता और संस्कृति को हमारे देश में लाना चाहते हैं। ये अपनी संस्कृति और सभ्यता के महान शत्रु हैं। ये तो पंचमाँगी हैं। और क्या क्या कहा जाय इनके बारे में ? कहते कहते जिह्वा लजाती है।"

गौरी पुनः मुस्कुराती हुई बोली—"और अपनी संस्कृति और सभ्यता के महान शत्रु ये इस लिये हैं कि अमीरों की अमीरी खत्म करना चाहते हैं, और जमीनदारों की जमीनदारी !"

शास्त्री जी—"अमीरी और जमीनदारी खत्म करने के पक्ष में तो मैं भी हूँ। लेकिन एक तरीके से। जैसे कि हमारी जन-प्रिय काँग्रेस सरकार करना चाहती है। वैधानिक ढंग से, न कि लट्ठबाजी से।"

गौरी—"ठीक शास्त्री जी ठीक ! जनप्रिय काँग्रेस सरकार दिनों का काम सालों में पूरा कर रही है। जमीनदारों को जी भर कर मुआवजा दे रही है, और तिस पर से और भी अनेक सुविधाएं ! लेकिन मैं पूछना चाहती हूँ कि जमीनदारी खत्म करने के इस कांग्रेसी तरीके से गरीबों का क्या लाभ होगा ? उन मजदूर-किसानों का क्या लाभ होगा ?"

शास्त्री जी—"तो काँग्रेस ने क्या दुनिया भर के लाभ का ठेका ले रखा है ? उसने चुनाव में वादा किया था जमीनदारी खत्म करने का, सो कर रही है ! और चाहिये क्या ?"

शास्त्री जी की बात पर सभी ठठा कर हंस पड़े। शास्त्री जी भी सकुचा गये। अपनी दलील की कमजोरी समझते उन्हें भी देर न लगी।

गौरी फिर उसी प्रकार मुस्कुरा कर बोली — "ठीक शास्त्री जी, ठीक ! साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। लेकिन न साँप मरा, न लाठी टूटी। पूरे पैसे देकर जमीनदारी खरीदी

जा रही है। जमीनदारों को कल-कारखाने खोलने को कहा जा रहा है और सच पूछिये तो पूंजी पति वर्ग को और भी मजबूत बनाने की जालसाजी रची जा रही है।"

शास्त्री जी—"काँग्रेस की नीयत पर संदेह करना गलत है। जिस में महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष हों, अहिंसा और सत्य ही जिसका आदर्श हो, उस संस्था की नीति और नीयत पर आक्षेप करना, उसके उद्देश्य को लाँछित करना, शरारत है, भयंकर अपराध है।"

गौरी हंस पड़ी और बोली—"और इस भयंकर अपराध के अभियोग में सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों को फाँसी पर लटका देना चाहिये शास्त्री जी!"

शास्त्री जी—"हां जरूर! यदि मेरा वश चले तो इन्हें चुन चुन कर गोली से उड़वा दूं। और खास कर यह कम्युनिस्ट तो पक्के पंचमाँगी हैं, गद्दार हैं, जिन्हों ने सन् ४२ के आँदोलन में देश के साथ गद्दारी की थी।"

गौरी उसी प्रकार मुस्कुराती बोली—"सत्य और अहिंसा के पुजारियों की गोली से उड़ कर सीधे स्वर्ग चले जायेंगे। मुक्ति मिल जायेगी। नुकसान तो कुछ दीखता नहीं शास्त्री जी! अच्छा कम्युनिस्ट भला गद्दार और पंचमांगी हैं, लेकिन सोशलिस्ट क्या हैं? उन्हों ने देश के साथ क्या गद्दारी की है? सन ४२ के आँदोलन में जब आप लोग जेलों में ए. क्लास के आनन्द उड़ा रहे थे, उस समय सोशलिस्ट जनता के कंधे से कंधा भिड़ा कर अंग्रेजी गोलियों से जूझ रहे थे।"

शास्त्री जी—"सोशलिस्ट हमारी संस्कृति और सभ्यता के शत्रु हैं। वे भी विदेशी संस्कृति को हमारे देश में लाना चाहते हैं। ईश्वर तक को नहीं मानते। और इस ईश्वरवाद पर ही तो हमारी संस्कृति और सभ्यता आधारित है। अतः सोशलिस्ट भी गद्दार हैं।"

गौरी--"वे गद्दार हैं जमीनदारों की दृष्टि में, थैलीशाहों की दृष्टि में और मुफ्तखोरों की दृष्टि में।"

शास्त्री जी आग-बगूला हो उठे। गरज कर बोले-"क्या हम मुफ्तखोर हैं ? त्याग और तपस्या में हम किस से कम हैं ? देश को किस ने ऊपर उठाया ? जनता को किस ने जगाया ? इस भारतीय संस्कृति और सभ्यता को किसने समुन्नत बनाया ?"

गौरी--"हां शास्त्री जी, आपका वर्ग त्याग और तपस्या का प्रतीक तो अवश्य है। खासकर अखबारों और प्रचारों के बल पर। जब बाहर थे, आलीशान बंगलों में रहते, परिचारकों से घिरे रहते, और संसार के सारे सुख उपलब्ध थे। जब जेल में जाते, ए. क्लास में रखे जाते। भीतर बाहर हर जगह वही हरी दुनिया, वही चाँदनी रात ! और जब लाखों निरीह मानव के बलिदान पर देश को आजादी मिली, तो चट गद्दीनशीन बन गये। सेवक से शासक बन गये। शाही महल, शाही तनखाह, शाही शान-शौकत ! इस से बढ़ कर त्याग तपस्या और हो ही क्या सकती है ?" फिर दोनों हाथ शिर से सटा कर वह बोली— "त्याग और तपस्या की महामूर्तियो ! तुम्हें बार बार नमस्कार।"

शास्त्री जी खिसिया गये। खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे वाली कहावत चरितार्थ करने लगे। बोले—"आपको और देशों के बारे में तो कुछ पता नहीं, अध्ययन तो कुछ किया नहीं, लगीं आलोचना करने ! भारत जैसा विशाल देश ! विशाल शासन की जिम्मेदारी ! फिर तीन चार हजार वेतन भी आपको अधिक लगता है ? आश्चर्य है ! तरस आता है आप लोगों की अक्ल पर। बृटेन जैसे क्षुद्र देशों के मिनिस्ट्रों के वेतन से जरा इनके वेतन की तुलना कीजिये ! यह कुछ नहीं है ! इसके अतिरिक्त इनके प्राइवेट लाइफ (निजी जीवन) का आपको पता नहीं। इनके बंगलों पर मेहमानों का संघट लगा रहता है ! इनके पास बचता क्या है ?

बल्कि पाकेट से खरचना पड़ता है। इसी मामले में इंगलैंड के चेंबरलेन और चर्चिल का दिवाला निकल गया था।"

सुनकर गौरी की देह में आग लग गयी। मारे क्रोध, घृणा और वितृष्णा के हृदय उसका क्षुब्ध हो उठा। क्षुब्ध स्वर में वह बोली—"तरस आता है आपके विचार और अभिज्ञता पर! आप भारत की बृटेन से तुलना करने चले हैं, और नेहरू पटेल की चर्चिल और चेंबरलेन से? छिः! भारत जैसे गरीब और निरीह देश का बृटेन जैसे संपन्न साम्राज्य शाली शोषक देश से, और नेहरू पटेल सरीखे त्यागी-तपस्वी का चर्चिल चेंबरलेन जैसे पूंजीपति शोषक से तुलना करना! क्रोध के साथ हंसी भी आती है शास्त्री जी! जरा सोचिये तो, दिल में मानवता के भाव भरकर! भारत की सामान्य जनता की औसत और न्यूनतम अधिकतम आय क्या है? और अंग्रेज जनता की औसत और न्यूनतम अधिकतम आय क्या है? फिर वहाँ के अधिकतम और न्यूनतम का यहां के अधिकतम और न्यूनतम से तुलना कीजिये। फिर देखिये कि हमारे महात्यागी नेताओं और यहाँ की सामान्य जनता में कितना अंतर है, कितना भेद है? एक आकाश में, तो दूसरा बिल्कुल पाताल में!"

शास्त्री जी और खिसिया गये। क्रोध में पागल हो के बोले —"छोटे मुंह बड़ी बात! चली हैं नेहरू-पटेल की आलोचना करने! जिनकी अक्ल का लोहा दुनिया मानती है! जिनकी योग्यता और अभिज्ञता का हर मानव आदर करता है! जिनका नाम देश के बच्चे बच्चे की जबान पर है! जिनके एक इशारे पर सारा देश कट मरने को तैयार है। जरा अपनी ओर ध्यान दीजिये, और सोचिये कि किसकी आलोचना कर रही हैं?"

गौरी ठठा कर हंस पड़ी। बोली—"वाह शास्त्री जी! कमाल कर दिया आपने! जवाब पास में न होने पर लोग ऐसी ही भद्दी दलीलों से विपक्षी का मुंह भूंदना चाहते हैं। पर

गौरी ऐसी वाहयात भावुकता और ऐसी रद्दी दलीलों की कायल होने की नहीं ; गौरी केवल मात्र वास्तविकता को देखती है, ठोस वास्तविकता को। इस के अतिरिक्त न वह कुछ जानना चाहती है, न मानना चाहती है।"

"वास्तविकता की पुजारिन बनने का मिथ्या गर्व न कीजिये गौरी जी ! वास्तविकता को परखिये और परखने की चेष्टा कीजिये ! इन नेताओं का त्याग कितना बड़ा है, कुर्बानी कितनी बड़ी है ? अंग्रेजों की गुलामी करके नेहरू किसी प्रांत के गवर्नर बन सकते थे, पटेल किसी हाईकोर्ट के जज बन सकते थे। लेकिन इन सारी सुनहली संभावनाओं को ठुकरा कर आजादी के युद्ध में कूद पड़े, अपनी फलती-फूलती वकालत को त्याग कर गरीब बन गये। फिर भी इनके त्याग और बलिदान पर संदेह ?"

"पर हाय ! गरीब बन कर भी कभी गरीबी को अपना न सके। त्याग करके भी कभी त्यागी बन न सके। और अंत में जाकर पुनः उसी गड्ढे में लुढ़क पड़े, जहां से इतने त्याग और बलिदान के बाद निकले थे। शास्त्री जी ! इस थोथी विज्ञापनबाजी को छोड़िये। भारत की इस आजादी में उस मूक गरीब जनता का कितना त्याग है, कितना बलिदान है, इस पर जरा कभी सोचा है आपने ? और यह आजादी तब तक आजादी नहीं कही जा सकेगी, जब तक कि हर व्यक्ति का भविष्य सुरक्षित न हो जाय, हर व्यक्ति के भोजन-वसन की समस्या हल न हो जाय ! स्वयं अमीराना सुविधा में रह कर मजदूरों को उपदेश दिया जाता है, गरीबों को आश्वासन दिया जाता है — 'अभी धीरज धरो, देश को धनी बनाओ, तब तुम्हें भी कुछ मिलेगा।' लेकिन मैं पूछती हूँ आपसे, देश के धनी बनने तक आपने क्यों नहीं प्रतीक्षा की ? आपका धीरज क्यों नहीं कायम रहा ? महात्मा गाँधी के शिष्य होकर भी आपने उनके आदर्शों की उपेक्षा क्यों की ? यह तो

ठीक वैसा ही लगता है जैसा कोई व्यभिचारी ब्रह्मचर्य का उपदेश दे रहा हो ! और मैं फिर पूछती हूँ आप से, क्या इसी बृटिश परंपरा और अमीराना व्यवस्था कायम रखने के लिये यह आजादी की लड़ाई लड़ी गयी है ? कलकत्ता नोआखली, बिहार, बंबई और अंत में पंजाब के लाखों निरीहों की नृशंस हत्या क्या इसी व्यवस्था के लिये हुई है ? राजनीतिक पशुता के शिकार इन लाखों गरीबों का बलिदान किस नेता और महानेता से कम है ? देश के असंख्य नौजवानों का आजादी की वेदी पर हंस कर बलि हो जाना किस के त्याग और तपस्या से कम है ? क्या वे इसी आजादी के लिये शहीद हुए ? नहीं शास्त्रीजी नहीं, हरगिज नहीं। इन असंख्य बलिदानों, इन लाखों निरीहों और गरीबों की बीभत्स हत्या का सच्चा प्रतिशोध तो हरिहरपुर के इस सङ्घ-जीवन में, इस सङ्घ पद्धति में अन्तर्हित है शास्त्रीजी ! जहां मानव मानव का सम्मान करता है, दूसरे की कठिनाइयों का ध्यान रखता है। जहाँ अपने लिये अधिक की कामना कोई नहीं करता। जहाँ समता नाच रही है, ममता विराज रही है। पशुता नष्ट होकर देवत्व अपनी पूर्ण कला में विकसित हो रहा है।"

गौरी एक अद्भुत आवेश में आ गयी थी, और सुनने वालों में भी अद्भुत रस का संचार हो रहा था। इस बार स्वयं शास्त्रीजी भी मुग्ध होकर उसकी बातें सुन रहे थे।

गौरी बोलती गयी—"शास्त्री जी ! जिस संस्कृति और सभ्यता की दुहाई देकर अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को आप लोग नीचा दिखाना चाहते हैं, जनमत को गुमराह करना चाहते हैं, उस संस्कृति और सभ्यता का उस जनता से, उस सर्व सामान्य समुदाय से कितना संबंध है ? जरा उस उत्पीड़ित समुदाय की स्थिति और परिस्थिति पर गौर तो कीजिये ! इस प्रश्न का उत्तर अपने आप मिल जायगा। केवल भारत में ही नहीं, विश्व के

कोने कोने से ऐसी थोथी और भद्दी दलीलें सुनाई दे रही हैं। हर देश में स्वार्थियों, स्वार्थियों के एजेंटों और पढ़े लिखे अबोधों के द्वारा ऐसे कुतर्क उपस्थित किये जा रहे हैं, और जनमत को विपथ करने के कुचक्र रचे जा रहे हैं। लेकिन मैं पूछती हूँ आपसे क्या उस संस्कृति और सभ्यता से मानवता कभी उठ सकेगी, मानव का उद्धार हो सकेगा, यदि उसका संबंध सर्व सामान्य मानव समुदाय से न हो? क्या हमारी संस्कृति और सभ्यता ने स्त्रियों और शूद्रों को वेदाध्ययन से वंचित नहीं किया? 'न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयाताम्' का उद्घोष उसने नहीं किया? क्या उसने वेदाध्यायी और वेदश्रावी शूद्रों के कानों में शीशे गलाकर डालने का आदेश नहीं दिया? क्या उसने महापतित, निरंकुश निष्ठुर राजाओं तक को ईश्वर का अवतार घोषित करके उनके अन्याय उत्पीड़न को प्रोत्साहित नहीं किया? क्या उसने राजतन्त्री और सामंती पद्धति को मान्यता देने में एड़ी-चोटी का पसीना एक नहीं किया? क्या इसी संस्कृति और सभ्यता पर हम गर्व करें? क्या इसीका गला फाड़-फाड़ कर उद्घोष करें?

"सृष्टि की अन्य वस्तुओं की भांति संस्कृतियाँ और सभ्यताएं भी बनती, बिगड़ती और विनष्ट होती रहती हैं शास्त्री जी! अब तक का मानव-इतिहास तो हमें यही बता रहा है। यह एक और बात है कि हम उस मृत संस्कृति और सभ्यता की हड्डियों को चबाते रहें, उसके काल्पनिक रस का आस्वाद लेते रहें, और संसार के सामने उद्घोष करते रहें कि अहा! कैसा सुन्दर है! कैसा स्वादिष्ट है!

"हम पर आक्षेप किया जाता है कि हम विदेशी संस्कृति और सभ्यता के एजेंट हैं, दलाल हैं, लेकिन इस हरिहरपुर के संघ-जीवन में आपने कौन-सा विदेशीपन देखा? कौन-सी बुरी बात देखी? हमारे इस संघ-जीवन का आदर्श मानव-संस्कृति पर आधारित है शास्त्री जी! हम मानवता के पुजारी हैं, मानव-

सभ्यता के पुजारी हैं। और हमारा विश्वास है कि एक दिन यह मानव-सभ्यता विश्व के कोने-कोने में प्रतिष्ठित हो के रहेगी। वह सभ्यता वह संस्कृति न पश्चिम की होगी, न पूर्व की होगी, न उत्तर की होगी, न दक्षिण की होगी ; वह होगी विश्व के व्यापक मानव-समुदाय की, जिसका संबंध होगा सीधे व्यापक मानव समुदाय से। जिस में शोषण और उत्पीड़न अतीत की कहानी रह जायेंगे। मानव और मानव का वैषम्य मिटकर सच्चे भ्रातृत्व और बंधुत्व का उज्ज्वल प्रकाश सारे संसार को आलोकित करेगा। और तब मनुष्य बनेगा मनुष्य, और वसुधा बनेगी अपनी महिमा के अनुकूल।"

गौरी चुप हो गयी। शास्त्री जी भी चुप रहे। अब अधिक तर्क-वितर्क करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई। उनके चेहरे को देख लगता तो ऐसा था कि उनके विचार भी शायद बदल रहे हैं। इतने में भोजन की घंटी बजी, और गौरीशंकर जी बड़े प्रेम और सम्मान के साथ शास्त्रीजी तथा उनके साथियों को भोजन शाला की ओर ले चले।

शास्त्री जी अपने साथियों के साथ सङ्घ में बैठे भोजन कर रहे थे। गार्गी, गौरी, सरोज, पार्वती और कुछेक अन्य पुरुष सङ्घी भी बड़े स्निग्ध आग्रह के साथ मेहमानों तथा सङ्घियों के आगे भांति-भाँति के भोजन परोस रहे थे। खिला रहे थे। शास्त्री जी खाना खा रहे थे, विचारों में डूबे हुए थे। वे सोच रहे थे, ऐसा भोजन तो बहुतेरे अमीरों को भी नसीब नहीं होता। तो क्या ये रोज ऐसा खाते हैं ? इन सबों की आकृति और स्वास्थ्य तो कुछ ऐसी ही गवाही दे रहा है। एक समय उन्हों ने गौरीशंकर जी से पूछा—"क्या आपके सङ्घ में रोज ऐसा भोजन बनता है ?"

"जी शास्त्री जी, बनता ऐसा ही है, लेकिन चीजें बदल बदल कर। और चीजें होती भी तो काफी हैं। ये सारी चीजें सङ्घ की पैदा की हुई हैं शास्त्री जी ! बाहर की एक भी नहीं।

खूब उपजाना और खूब खाना, और मनुष्य की तरह रहना ! यही इस सङ्घ-जीवन का आदर्श है।"

शास्त्री जी ने फिर कुछ नहीं पूछा। भोजनोपरांत कुछ आराम करने के बाद दिन के तीसरे पहर शास्त्री जी ने बड़े विनयपूर्वक बिदा माँगी। उन्हें स्टेशन तक पहुंचाने के लिये सङ्घ की कार आ खड़ी हुई। खड़े हो सभी शास्त्री जी को बिदा दे रहे थे। कार पर सवार होने से पहले हाथ जोड़ शास्त्री जी गौरी को उद्देश करके बोले—"क्षमा करना गौरी बहन ! आज से तुम गुरु और मैं चेला। अब तक मैं समझे हुए था कि अक्ल की सारी पूंजी मेरे ही हाथ लगी है। अपने अध्ययन और अभिज्ञता के अहंकार में, और सच पूछो तो अपने दल-गत स्वार्थ में अपने को भूला हुआ था। तुम्हारी निष्कपट वाणी और निःस्वार्थ उद्गार ने मेरे नेत्र खोल दिये हैं ! आज मैं वास्तविकता का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रहा हूँ। वह वास्तविकता इस हरिहरपुर के सङ्घ जीवन में साकार होकर नाच रही है। इसे देख कर भी मैं देख न रहा था। समझ कर भी समझ न रहा था। इस सङ्घ का आदर्श आज से मेरा भी आदर्श होगा गौरी! अब से महामानव सुमन और महामानवी पार्वती के पद-चिह्न ही मेरा आदर्श होंगे।" और फिर गौरीशङ्करजी की ओर मुड़कर बोले—"आप ने ठीक कहा बाबू जी ! इस सङ्घ के आदर्श में महात्मा गाँधी की आत्मा बोलती है, मार्क्स की आत्मा खेलती है, और अब तक के सारे महापुरुषों के स्वप्न देह धर कर नाच रहे हैं। इस सङ्घ की जय ! इस सङ्घ-जीवन की जय ! मानवता की जय और मानव-समता की जय !"—कहते कहते शास्त्री जी अत्यंत भाव-विभोर हो उठे और उस सङ्घ के लहलहाते झंडे को उद्देश करके बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ साष्टाँग दंडवत् हो गये।

— — ——

: ४५ :

"छिः ! क्या लीडर और नेता लोग ऐसे ही होते हैं ? क्या इनके दिल में दया-माया का छूत नहीं होता ?"

अपने सोने के कमरे में पैर रखते ही अपनी पत्नी प्रतिमा के मुख से ऐसी बातें सुन कर भुवन चकरा गया, अचकचा गया। किंतु प्रतिमा की फटकार का अभिप्राय समझ गया। फिर जवाब में पत्नी को फटकारते हुए बोला—"चुप हरामजादी ! मुँह सम्हाल कर बोल !"

"चुप क्यों रहूँ ? मुँह सम्हाल कर क्यों बोलूँ ?"

"तो फिर यहाँ से भाग। और कहीं जा कर बड़बड़ कर। मुझे सोने दे, नींद लग रही है।"

"सोने दे ! नींद लग रही है ! अगर इस वक्त मुझे गांधी-जी से मुलाकात होती ?"

"मुलाकात होती, तो क्या कर लेती ?"

"तुम पापियों का सोना हराम कर देती। नींद लगना बंद कर देती। और जा कर महात्मा जी से भंडा-फोड़ कर देती कि, देखिये महात्मा जी ! आपका नाम ले-लेकर लोग कितना पाप कर रहे हैं ! कितना अन्याय कर रहे हैं !"

"फिर कहता हूँ, चुप हरामजादी ! हमने क्या पाप किया है ? क्या अन्याय किया है ?"

"कहे देती हूँ, अधिक हरामजादी-हरामजादी मत बको। नहीं तो ....."

पत्नी की इस चुनौती को भला भुवन बर्दाश्त कैसे कर सकता था ! अपनी खाट पर से उठा और प्रतिमा को एक जोर का धक्का दे मारा। वह जमीन पर लुढ़क गयी, और ऊपर से भुवन ने कस कर दो लात लगा दीं। लात खा कर प्रतिमा चंडी

हुई गरजते स्वर में बोली—"कलमुँहे ! लात मारते तुझे शरम नहीं आती ? पापी ! चाँडाल ! दगाबाज ! अभी तू उस कमरे में रघुवीर से क्या बातें कर रहा था ? मैं अच्छर अच्छर सुन चुकी हूँ। देवता-सरीखा सहोदर भाई ! और उसके खिलाफ़ ऐसी नीच जालसाजी ! मैं भंडा फोड़ कर दूँगी ! गाँव वालों से बता दूँगी ! फिर तुम्हारी खैर नहीं ! बोटी-बोटी नोच लेंगे।"

भुवन डर गया ! उसे सचमुच ऐसा लगा मानो गाँव के लोग उसकी जान लेने आ रहे हैं। फिर जरा भय-विकंपित स्वर में बोला — "तुझे मेरी जान का मोह नहीं ? पतिता कहीं की ! पति के साथ विश्वासघात !"

प्रतिमा ने फटकार भरे दृढ़ स्वर में जवाब दिया — "पतित कहीं का ! सगे भाई के साथ विश्वासघात ! तुम्हें शरम नहीं आती बोलते ? चुल्लू-भर पानी में डूब मरो ! यह छोटे बाबू ही हैं जो अब तक तुम्हारी जान बची है। नहीं तो कब की बोटी-बोटी उड़ गई होती ! और कल से यदि यह कलमुँहा रघुवीर फिर हमारे दरवाजे आया, तो मैं सारी लाज-शरम ताक पर रख कर उसे झाड़ू मारूँगी।"

भुवन अब गुस्से में लाल हो गया। लपक कर उसने प्रतिमा के बाल पकड़ लिये और गरज कर बोला — "झाड़ू मारूँगी ! तू किसे झाड़ू मारेगी ? मेरे मित्र रघुवीर को ? हरामजादी, तेरी जीभ खींच लूँगा ! तुझे और तेरे छोटे बाबू दोनों को जूते लगाऊँगा..... निकल मेरे घर से। हरामजादी ! भटियारिन !"— और कह कर वह प्रतिमा की पीठ पर पटापट खड़ाऊं मारने लगा।

मार खाकर प्रतिमा का विवेक-ज्ञान लुप्त हो गया। अब वह भी चंडी बन कर लगी भुवन पर थप्पड़, लात और मुक्के की बौछार करने। इस द्वंद्व-युद्ध में अपने तेज दाँत और नखों का

प्रयोग भी करने लगी। और बोलने लगी — "मार तो मुझे कैसे मारता है ? पापी ! बेईमान ! नमकहराम ! छोटे बाबू को जूते लगाने चला है ! बड़े जूते वाले बने हैं ! उस वक्त तेरा हाथ कट कर नहीं गिर जायगा ? अब मैं इस पापी के घर नहीं रहूँगी ! अपनी दीदी और छोटे बाबू के पास जाऊँगी। उन से सब बातें बता दूँगी। अभी बता दूंगी।"—कहती हुई अपने दो साला रोते बच्चे मुकुल की ओर बढ़ी, और चट उसे गोद में लेकर तीर की तरह घर से निकल कर अंधेरे में अदृश्य हो गयी।

× × ×

सन १९४६ के चुनाव में कांग्रेस ने किसानों से वोट माँगा था इस वादे पर कि वह सत्तारूढ़ होते ही जमीनदारी खत्म कर देगी, जमीन किसानों की होगी और उनका जीवन परम संपन्न और समृद्ध बन जायगा। किसानों ने खुल कर कांग्रेस को वोट दिये। फलस्वरूप कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई। किसानों के दिलों में आशा का सञ्चार हुआ वे सब्जबाग के सपने देखने लगे।

जमीनदारी खत्म करने का बिल धारा सभा में पेश हुआ। सभा भवन में लंबे-चौड़े भाषण हुए, बिल के विरोध और पक्ष में ! बिल बहुमत से पास हुआ। किसानों की आशा की कली खिल उठी। किंतु वह कली खिल कर शीघ्र ही मुरझाने लगी। फल की आशा जाती रही। सरकार की गति-विधि से किसानों के दिलों में संदेह होने लगा, और यह संदेह तब और पक्का हो गया, जब पूरी रकम दे कर जमीनदारों की जमीनदारी खरीदने का सरकारी निश्चय घोषित किया गया। किसानों के सपने सपने ही रह गये। उनकी आशा पर पानी फिर गया।

उधर जमीनदारों ने बड़े पैमाने पर हरकतें शुरू कीं। पुलिस, लाठी, और भाड़े के गुंडों की मदद से किसानों की बकाश्त जमीनों पर वे कब्जा जमाने लगे। किसानों को उनकी जमीनों से जबर्दस्ती हटाने लगे। फलतः किसानों और जमीनदारों

में सङ्घर्ष छिड़ गया। किसान भी कमर कस कर तैयार हो गये। युक्त-प्रांत और बिहार के जिलों से ऐसे सङ्घर्ष के समाचार आने लगे।

इधर रघुवीर और भुवन की मंत्रणा और सहायता के वादे से उत्साहित हो राजा राघवेंद्रसिंह ने हरिहरपुर के सङ्घ पर हमला करने का निर्णय किया। जो परती जमीन सुमन को पैतृक संपत्ति के हिस्से के रूप में मिली थी, वह राजा राघवेंद्र की ही दी हुई थी। हरिनाथ झा की सेवाओं से संतुष्ट होकर नाम-मात्र का नजराना ले कर राजा साहेब ने वह जमीन उन्हें दी थी। थी भी तो परती ही। किंतु अब वही परती रत्नगर्भा बन गयी थी। उसकी श्री-समृद्धि देख कर राजा साहेब की जीभ से लार टपकने लगी थी। और इस जमीन पर कब्जा उस नमकहराम सुमन का था, जिस ने किसी समय भरी सभा में उन्हें अपमानित किया था। अतः राजा साहेब के इस निर्णय में अनेक कारण थे। और इस निर्णय का पता सुमन और पार्वती को अपनी भाभी प्रतिमा के द्वारा उसी रात को लग गया, जिस रात को प्रतिमा अपने घर से भाग कर सङ्घ में आ गयी थी। उसी समय इस उपस्थित समस्या पर विचार के लिये सङ्घ की गोष्ठी बुलाई गयी।

सुमन गौरीशङ्कर जी को उद्देश करके बोला—"अब क्या करना चाहिये चाचाजी ?"

चाचाजी ने दृढ़ स्वर में जवाब दिया — "करना क्या चाहिये, डट जाना चाहिये। पूरी दृढ़ता के साथ, सत्य और अहिंसा का आदर्श आगे रख कर।"

गौरी बोली—"इस सत्य-अहिंसा का अर्थ क्या है चाचाजी ? निरीह बनकर जमीनदारों के गुंडों की लाठियाँ खाना तो नहीं ?"

चाचाजी—"नहीं बेटो ! सत्य-अहिंसा का यह अर्थ कदापि नहीं। इसका अर्थ यह है, कि अपनी ओर से उपद्रव या हिंसा की शुरूआत न होनी चाहिये।"

गौरी—"और जब शत्रु वार करे तब ?"

चाचाजी—"तब उसका डट कर मुकाबला करना चाहिये एक पूरे मनुष्य की तरह। और यह ध्यान रहे कि सङ्घ के खेतों से एक डंठल भी कोई जबर्दस्ती न ले जाने पाय !"

गौरी—"देख कर बड़ा दुख होता है चाचाजी ! कांग्रेस का शासन और इतना अन्याय-उपद्रव ! सुना है कि राघवेंद्र सिंह को पुलिस की मदद मिलेगी। खुद थानेदार यहाँ कब्जा दिलाने आयगा !"

चाचाजी—"कांग्रेस का शासन है तो क्या ? शासन का यन्त्र तो वही पुराना है, वही अमीराना है।"

सरोज—"लेकिन कांग्रेस के नेता लोग तो जनता के सेवक हैं। उन्हें तो जनता के स्वार्थ का ध्यान रखना चाहिये ? शासन के ऊँचे पदों पर भी तो आजकल ये ही लोग हैं ?"

चाचाजी—"अब ये लोग सेवक नहीं रहे बिटिया, शासक बन गये हैं। कम से कम इनके आचरण से तो ऐसा ही पता चलता है।"

सरोज एक गहरी साँस लेकर चुप रही।

इसके बाद विनोद बोला — "इस कांग्रेसी शासन से तो अंग्रेजी शासन का इंतजाम कहीं अच्छा था ! देख कर घृणा होती है ! जहाँ देखो वहीं बेईमानी, घूंसखोरी, चोरबाजारी !"

चाचाजी जरा मुस्कुराते हुए विनोद से बोले — "तुम नौजवानों और मजदूरों के शासन में यह घूंसखोरी और बेईमानी नहीं रह पायगी बेटा ! ..... अच्छा बीनू, यदि तुम लोगों का शासन हो तो क्या करोगे ?"

विनोद ने बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया — "सब सब जगह अपने सङ्घ जैसी पद्धति कायम करेंगे। फिर चोरी, बेईमानी और शैतानी के लिये गुंजायश ही नहीं रह जायगी, उसका कारण ही नहीं रह जायगा।"

पार्वती— "और यदि तुम्हारे शासन में भी चोरी-बेईमानी हो तब ?"

विनोद — "तब उन बेईमानों और चोरों को फाँसी पर लटका देंगे।"

सभी हँस पड़े।

पार्वती मुस्कुराती हुई बोली — "तब तो तुम्हारा शासन बड़ा कठोर होगा भैया !"

उधर से सुरजीत बोल उठा — "कठोर तो होगा, लेकिन होगा बड़ा अच्छा बहिन जी !"

पार्वती विनोद की ओर ताक कर हँसती हुई बोली — "सुरजीत को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लेना विनोद ! तब तुम्हारे शासन में जरा भी आँच नहीं आने पायेगी।"

सब हँस पड़े और सुरजीत लजा गया।

अब सुमन जरा गंभीर स्वर में बोला — "कुछ निश्चय हो जाना चाहिये चाचाजी ! कल उन लुटेरों का दल जरूर आयगा। उन से निबटने के तरीके का निर्णय हो ही जाना चाहिये।"

चाचाजी ने उसी प्रकार दृढ़ और गंभीर स्वर में जवाब दिया — "बस निर्णय यही है, कि कल सवेरे ही सङ्घ का बच्चा-बच्चा खेतों में लपट पड़े। सारी फसल काट कर खलिहान में ले आई जाय।"

गौरी ने कहा—"मेरा तो विचार है चाचा, कि इसी वक्त काटने का काम शुरू कर देना चाहिये, जिस से कि भोर होते-होते आधे से अधिक काम पूरा हो जाय।"

गौरीशङ्कर जी एकाएक उठ खड़े हुए, और बोले—"विचार तुम्हारा सोलह आने सही है गौरी ! अच्छा पुत्रो ! तैयार होते जाओ। सारे सङ्घ में खबर दे दो। हमें इसी क्षण फसल काटना शुरू कर देना चाहिये। फसल भी तैयार है।"

चाचा जी का आदेश पाते ही सब उठ खड़े हुए। सारे सङ्घ में यह सूचना बिजली की तरह फैल गयी। आबाल-वृद्ध नर-नारी एक-एक लाठी और हँसिया लेकर खेतों में उतर पड़े।

बड़े जोश, उत्साह और आशङ्का के साथ खेतों के धान काटे जा रहे थे। धीरे-धीरे भगवान भास्कर की अरुणिमा प्राची के दिग्-दिगत में फैलती जा रही थी। मानो आज का प्रभात हरिहरपुर के सङ्घवासियों को एक नया संदेशा, एक नई सूचना दे रहा था। मानो रक्तिम समारंभ का आभास दे रहा था। सूरज उगा, आसमान पर उठा, और वह लाली मिट गयी। किंतु सङ्घियों के दिलों में जो आशङ्का थी, वह न मिटी।

दस बज गये। एक-एक कर सारे सङ्घ-श्रमी दिशा-मैदान से निबट कर धान काटने और ढोने में लगे थे। इसी समय राजा राघवेंद्र की फौज आती दिखाई दी। निकट पहुंच भी गयी। आगे आगे एक बड़े विशाल हाथी के हौदे पर सवार हो राजा राघवेंद्र स्वयं आ रहे थे, और अगल-बगल में थे उनके भाड़े के गुंडे। एक दर्जन सशस्त्र कांस्टेबलों के साथ दारोगा साहेब भी घोड़े पर चढ़े आगे बढ़ रहे थे। राजा साहेब की बगल में देवकीनाथ का लड़का भवनाथ बैठे-बैठे राघवेंद्र सिंह का दिशा-निर्देश कर रहा था। उसने आहिस्ते से अंगुली का इशारा कर के राजा से कहा—"इन सारी खुराफातों की जड़ सुमना वही खड़ा है।" और राजा राघवेंद्र ने बगैर कुछ पूछे अपनी भरी पिस्तौल का निशाना साध दिया।

गड़गड़ करती गोली छूट पड़ी। और उस गोली की ही तरह गौरी लपक कर बड़े जोर से सुमन को पीछे ठेल कर आगे आ गयी, और उसी क्षण गौरी की छाती को चीरती वह गोली सुमन की बगल से निकल गयी। और सुमन के सम्हलने से पहले ही एक और दूसरी गोली उसकी कनपट्टी में आ लगी। और दूसरी ओर से छूटती एक और गोली आकर उसकी कमर में

लगी। क्षण भर पहले गौरी गिरी और दूसरे क्षण सुमन गिरा। सङ्खियों में हाहाकार मच गया। सब मानो क्रोध में पागल बन गये। और सबों ने बड़े आश्चर्य और विस्मय के साथ देखा, कि उसी क्षण तीर की तरह सुरजीत हाथी की पूँछ पकड़ एकाएक हौदे पर जा धमका। और अपनी वज्र-सरीखी मुट्ठी को राजा राघवेंद्र के शिर पर कस कर दे मारा। राजा के मुँह और नाक से खून की धारा निकल चली, हाथ से पिस्तौल गिर पड़ी, हौदे पर राजा भी बेहोश होकर गिर पड़ा, किंतु सुरजीत इतने से ही संतुष्ट न हो सका। सुमन को गोली लग कर भूमि पर गिरते देख शोक और क्रोध में वह पागल बन गया था। अपने क्रोध की आग में वह सारे विश्व को जला कर राख कर देना चाहता था। वह था भी सङ्ग का भीमसेन, और आज तो वह पवन-सुत हनुमान भी बन गया! उसने राजा राघवेन्द्र की टाङ्ग कस कर पकड़ ली, और चारों ओर उसे घुमा कर इतने जोर से आकाश में फेंक मारा कि राजा की लाश दो-तीन सौ गज की दूरी पर जा गिरी, और गिरते ही चकनाचूर हो गयी। इसी बीच भवनाथ डर कर स्वयं हौदे से नीचे कूद पड़ा, किंतु दूसरे ही क्षण उस हाथी के पैरों से दब कर धूल के कणों में मिल गया।

इधर अंधाधुंध लाठी, भाले और गड़ाँसे चलने लगे। पुलिस वाले भाग खड़े हुए। दारोगा बेचारा पहले ही जान लेकर भाग निकला था। राजा के गुंडों में से एक-दो के गिरते ही गुंडे भी भाग निकले। और इस प्रकार यह सारी दुःखांत घटना केवल दस मिनट के अंदर घटित होकर हरिहरपुर के सुखमय शांत वातावरण में एक भयानक तूफान उठाकर स्वयं प्रशाँत हो गयी।

: ४६ :

बाबू गौरीशङ्कर गौरी के शव को अपने अङ्क में लेकर रो रहे थे। सारा सङ्ग रो रहा था। सारी जनता रो रही थी। आकाश रो रहा था। दिशाएँ रो रही थीं। नारीत्व रो रहा था। मानवता रो रही थी। एकाएक उस शव को छाती से लगाकर गौरीशङ्कर जी उच्छ्वसित हो पड़े। चिग्घाड़ मार कर रो पड़े। रोते हुए जोर से बोले—"ओ बिटिया! ओ मेरी गोद की कली! कहाँ गयी? अभी मानवता का उद्धार कहाँ हुआ गौरी! इसे अधूरा छोड़ कहाँ चल पड़ी बेटी?" —और कहते कहते मूर्छित होकर गौरी के शव पर गिर पड़े।

उधर सुमन के मूर्छित शरीर को चट अस्पाल में लाकर उसका उपचार होने लगा। रामचंद्र और गार्गी ने बड़े कौशल से चीर कर उसकी कनपट्टी और कमर की गोली निकाली। और अपनी सारी अभिज्ञता के साथ दोनों जने उस महाप्राण की चिकित्सा में जुट पड़े।

दो दिन बीत गये, किंतु सुमन की बेहोशी बनी रही। हृदय की धीमी गति उसकी सप्राणता का सादय दे रही थी। रोगी के कमरे को हर तरह से शांत रखने की चेष्टा की जा रही थी। सुरजीत बाहर बरामदे में बैठा रहता, और जब-तब एकाएक हृदय उसका फूट पड़ता। 'बाबूजी-बाबूजी' कह कर वह चिग्घाड़ मार कर रो पड़ता। और सरोज भूख, प्यास और नींद को त्याग कर अहर्निश सुमन के पैताने में बैठी 'अपने नीरव आँसुओं से बिछौने को भिगोती रहती। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। गार्गी किंतु बड़ी दृढ़ता से अपने पति की चिकित्सा में लगी थी। बात-बात में रामचंद्र से परामर्श ले रही थी।

तीसरे दिन सुमन की आँखें खुलीं। सर्व-प्रथम वे आँखें पैताने में बैठी रोती सरोज पर पड़ीं। सब के चेहरे पर आशा

और संतोष की झलक दिखाई देने लगी। लेकिन सब के सब चुप रहे। पड़े-पड़े ही सुमन ने एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाने की चेष्टा की। फिर आहिस्ते से हाथ के इशारे से उसने गार्गी को बुलाया। गार्गी उसके कानों के निकट मुँह ले जाकर धीरे से बोली — "तबीयत तो तुम्हारी ठीक है ? अभी बोलो मत, सो जाओ !"

सुमन ने भी धीरे से लड़खड़ाते स्वर में कहा— "सो...ना .... तो....है....ही !" फिर सरोज को हाथ का इशारा कर के बोला—"स...रो !...इध....र आ...ओ !"

और सरोज उसी क्षण चुपचाप रोती उसके सिरहाने में जा खड़ी हुई। सुमन ने अपने काँपते हाथ से सरोज का दायाँ हाथ पकड़ लिया। फिर सारी शक्ति बटोर कर डबडबायी आँखों से बड़े करुण और दीन स्वर में गार्गी से बोला — "मेरे बाद भी... मेरी आत्मा ... तुम में ... और सरोज में ... मौजूद .... रहेगी गार्गी ! ... मेरे .... अधूरे... काम को .... पूरा करना। .... और लो इसे ... ! सरोज का हाथ ... पकड़ो ! तुम्हारे लिये ... कितना त्याग .... किया है इसने ! मैं अब.... नहीं बचूँगा गार्गी !" —कहते-कहते सुमन की रुलाई एकाएक उच्छ्वसित हो उठी, और दूसरे ही क्षण वह पुनः बेहोशी की गोद में गिर पड़ा।

सरोज गार्गी का गला पकड़ के जोर से रो पड़ी। रामचंद्र ने दौड़ कर सुमन की नाड़ी पकड़ी। यंत्र के द्वारा उसके हृदय की गति की परीक्षा कर के मूर्छा के उपचार में लग पड़ा।

सुमन की दशा अनिश्चित थी। कभी होश में आता। ऊट-पटांग बोलने लगता। फिर बेहोश हो जाता। फिर दो दिन तक उसकी यही स्थिति रही। तीसरे दिन थानेदार साहेब, जो उस दिन दुम दबाकर भाग निकले थे, फौज और पुलिस लेकर पुनः सङ्घ में आ पहुंचे। और खून के अपराध में सुरजीत, भिखारी, बुद्धू, रमेश, रामचंद्र आदि कई सङ्घियों को गिरफ्तार करके लेते

गये। इस घटना के कुछ ही क्षण बाद सहसा एक महा-तेजस्विनी वृद्धा तीर की तरह दौड़ी हुई उस कमरे में जा पहुँची जहाँ रुग्न-शैया पर पड़ा सुमन अध-बेहोशी की दशा में माँ-माँ की रट लगाये हुए था।

वहाँ पहुंचते ही वृद्धा बोली—"सुम्मू! ओ सुम्मू! ओ मेरे प्यारे सुम्मू!"

और इस शब्द के कान में पड़ते ही सुमन की आँखें खुल गयीं। अपनी बची-खुची ताकत बटोर कर दोनों हाथ फैला के वह बोल पड़ा—"माँ! आ गयी माँ! तुम्हें ही याद कर रहा था माँ! अब जा रहा हूँ माँ!" — कहते-कहते एकाएक उसकी आवाज बंद हो गयी, और वृद्धा चट सुमन के सिरहाने बैठ कर उसके निष्प्राण मस्तक को अपनी गोद में लेती हुई बोली — "कहाँ जा रहे हो मेरे लाल! मेरे जिगर के टुकड़े!" और कह कर वह स्वयं भी जड़-कटे वृक्ष की भाँति वहीं अर्रा कर गिर पड़ी।

पार्वती घबड़ा कर दौड़ी, और उस वृद्धा के बेहोश चेहरे को देखते ही चौंक कर चिल्ला उठी—"मां अन्नपूर्णा!" और स्वयं भी वहीं पछाड़ खा कर गिर पड़ी।

× × ×

सारे सङ्घ में कुहराम मच गया! शोक की उमड़ती नदी में कुछ देर के लिये सारा सङ्घ विलीन हो गया। आज उनके दिल भी इन दीनों की कराह से भर उठे, जो छिपे या खुले तौर पर सङ्घ के आदर्शों और सिद्धांतों से द्वेष रखते थे। करुणा की नदी सब के दिलों से अब तक की राग-द्वेष की सारी कालिमा बहा ले गयी। सुमन के बलिदान ने विरोध की विरूपता नष्ट कर दी। हरिहरपुर का बच्चा-बच्चा और चप्पा-चप्पा रो रहा था। आज अभागा भुवन भी अपने दिवंगत अनुज के चरणों में रो-रो कर अपने अब तक के पापों को धो रहा था! पर इस समस्त करुणा

तरह खड़ी थी। शोक और करुणा की उत्तरोत्तर बढ़ती बाढ़ से सब के उद्धार के लिये उस समय भी सयत्न थी। कुछ उपचार के बाद बहिन पार्वती और मां अन्नपूर्णा की मूर्छा अब दूर हो चुकी थी।

× × ×

सुमन की चिता धू-धू कर जल रही थी। सारा सङ्घ, हरिहर-पुर का सारा जन-समाज आज इस मृत महात्मा के चरणों में अपनी श्रद्धा के अंतिम अर्घ्य अर्पित करने को उमड़ पड़ा था। सङ्घ के लोग चेहरे पर गहरी निराशा, वेदना और चिंता के चिह्न लिये चिता को घेरे बैठे थे। जो भविष्य इन सबों के आगे सदा सुनहले रूप में दिखाई देता, आज वही अपनी सारी छिपी भयानकता के साथ अपनी कुटिल क्रूर आँखों से इन्हें झांक रहा था। पार्वती रो रही थी, अब गार्गी भी रो रही थी, और सरोज अपनी सूनी आंखों से जलती चिता की लपटों को एक टक निहार रही थी। बाबू गौरीशङ्कर शिर झुकाये चुपचाप बैठे थे। बिल्कुल सन्नाटा था! इसी समय माँ अन्नपूर्णा एकाएक खड़ी होकर चिता को लक्ष्य कर करुणा-विगलित स्वर में बोली—

"ओ वसुधा के महाप्राण! यह सच है, तुम्हारे शरीर का अंत हो गया; और जो स्वभाव से ही अंतशील है उसका अंत भी स्वाभाविक है; पर इस अंत पर तुम ने अनंत की छाप लगा दी! तुम्हारी महाप्राणता सदा के लिये सप्राण बन गई! तुम अमर बन गये!

"ओ मानवता के अमर-संदेशवाहक! यह सच है कि तुम्हारा स्वप्न अधूरा ही रहा; हरिहरपुर के एक कोने में उसे मूर्तिमंत बनाकर भी उसके मंगलमय आलोक से सारे देश और सारे विश्व को आलोकित करने का स्वप्न पूरा नहीं हुआ; परन्तु हरिहरपुर के सङ्घ के रूप में तुम्हारा आदर्श, तुम्हारा सिद्धांत

मूर्तिमान होकर दलितों और दीनों को जिस अमर आशा का संदेश दे गया है, वह आज न सही कल, या परसों, या कभी-न-कभी पूरी अवश्य होगी।"

कहते कहते माँ का चेहरा उद्दीप्त हो उठा। चिता की उठती लपटों के आलोक में उनके सदा दीप्तिमान मुख पर एक अद्भुत आभा का अंकुर फूटता दिखाई दिया। उनके स्वर में करुणा की जगह एकाएक वीरता ने ले ली, और साथ ही सारा उपस्थित जन-समूह उत्कर्ण होकर उनकी ओर उत्सुक आंखों से देखने लगा। सबको लक्ष्य कर शौर्यभरे गँभीर स्वर में फिर बोलीं—

"ऐ, हरिहरपुर के भाग्यवान निवासियो! ऐ, सुमनचँद्र के सभागे साथियो! आओ, आगे बढ़ो, और अपने प्यारे नेता और साथी की इस जलती चिता की बलती राख को हाथों में लेकर यह गंभीर प्रतिज्ञा करो। 'हम इस संघ के आदर्श को जीते जी बरबाद न होने देंगे। इस संघ के आदर्श पर सारे मानव-समाज के निर्माण में अपने आप को खपा देंगे।'—बोलो, मानव-समाज की जै! मानव-समता की जै! महात्मा सुमन की जै।"

और सारी उपस्थित जन-मंडली एकाएक सारी वेदना और विषाद को भूलकर, जलती चिता की बलती राख को हाथों में लेकर अपने समवेत स्वरों से वहाँ की धरती और आकाश को गुंजाती हुई बोली—

"हम इस सँघ के आदर्श को जीते जी बरबाद न होने देंगे! इस संघ के आदर्श पर सारे मानव समाज के निर्माण में अपने आप को खपा देंगे! मानव-समाज की जै! मानव-समता की जै! महात्मा सुमन की जै!"

—:-o-:—

हिन्दी साहित्य का परम्परा

अथवा

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

लेखक—हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध विद्वान्

प्रो० हंसराज अग्रवाल एम. ए., पी. ई. एस.

विशेषताएं—

१. हिन्दी की उच्च परीक्षाओं के लिये परमोपयोगी।

२. वर्तमान सभी इतिहासों की आवश्यक सामग्री इस में आ गयी है।

३. शैली विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक।

४. प्रत्येक काल की राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के विकास क्रम को भी स्पष्ट कर दिया गया है।

५. यथासम्भव पूर्वापर परम्परा को भी स्पष्ट किया गया है।

६. प्रत्येक काल की विशिष्ट प्रवृत्ति की विशेषताओं को भी प्रदर्शित किया गया है।

७. प्रत्येक काल के विशिष्ट कवियों का आलोचनात्मक परिचय देकर उसकी कला-पक्ष तथा भाव-पक्ष की विशेषताओं को स्पष्ट किया गया है।

८. दृष्टि कोण वैज्ञानिक, निष्पक्ष तथा नवीनतम।

इत्यादि

पृष्ठ संख्या १६+४३६=४५२ मूल्य ५)

पता—

शक्ति पब्लिकेशन्स, माडल टाऊन, लुध्याना

हमारी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

१. दोआबा हाऊस प्रकाशक लुधियाना २. नेशनल बुकस्टाल कचहरी रोड, लुधियाना ३. रामा ब्रादर्स, प्रकाशक लुधियाना ४. लायल बुक डीपो चौड़ा बाज़ार, लुधियाना ५. राजहंस प्रैस सदर बाज़ार, दिल्ली ६. कलामन्दिर नई सड़क, दिल्ली ७. आत्माराम ऐण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली ८. इण्डियन पब्लिशिंग हाऊस नई सड़क, दिल्ली ९. रीगल बुक डीपो, नई सड़क, दिल्ली १०. हिन्दी भवन प्रकाशक, जालन्धर शहर ११. मोतीलाल बनारसीदास, गौ घाट, बनारस १२. चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, पो. बा. नं० ८ बनारस १ १३. मोतीलाल बनारसीदास बाँकीपुर १४. साहित्य रत्न भण्डार, आगरा १५. गयाप्रसाद ऐण्ड सन, अस्पताल रोड, आगरा १६. नवयुग साहित्य सदन पुस्तक विक्रेता इन्दौर १७. आधुनिक पुस्तक भवन, ३०-३१ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता १८. साहित्य निकेतन पुस्तक विक्रेता, कानपुर १९. राम सहाय लाल पुस्तक विक्रेता, गया २०. मानसरोवर पुस्तक भण्डार, गया २१. भारती मन्दिर भगवान बाज़ार, छपरा २२. सुषमा साहित्य मन्दिर जवाहरगंज, जब्बलपुर २३. मोहन न्यूज़ एजंसी कोटा (राजपूताना) २४. रामनारायण लाल पुस्तक विक्रेता, प्रयाग २५. हिन्दी मन्दिर जीरो रोड, प्रयाग २६. साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग २७. हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाऊस ६३ जीरो रोड, प्रयाग २८. हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय हीरा बाग, गिरगाँव, बम्बई २९. भारती पुस्तक भवन, कालका देवी रोड, बम्बई २० ३०. नालन्दा पब्लिकेशन्स, फीरोज़शाह मेहता रोड, बम्बई १ ३१. राजस्थानी गश्ती पुस्तकालय, ब्यावर (राजपूताना) ३२. किताबी दुनियाँ, शुजागंज, भागलपुर ३३. दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, मद्रास ३४. विद्यार्थी पुस्तक मन्दिर मजफ्फरपुर ३५. किताब घर, जिंसीपुल

लश्कर (मध्य भारत) ३६. शिवाजी बुक डीपो, अमीनाबाद, लखनऊ ३७. सुबोध ग्रन्थमाला कार्यालय, राँची ३८. मालवीय पुस्तक भवन, लखनऊ।

नई सामग्री, ओज भरी स्फूर्ति, मौलिक विचारों तथा
उच्च साहित्यक भावनाओं के लिये आप पढ़ें—

"नई धारा"

एक प्रति १) (मासिक पत्रिका) वार्षिक १०)
पटना ६

निराला जी की सम्मति—श्री रामवृक्ष बेनीपुर मेरे पुराने जानकार और गहरे दोस्त हैं—हंस मुख, विद्वान, वक्ता, सम्पादक और सुलेखक। उन की देख-रेख में निकली 'नई धारा' देखने को मिली। बिहार की राजधानी की जोत, उसके कवि और लेखकों से कैसी फूटी है। इसकी छान-बीन अपमान है, जबकि अपनी वह खसूसियत नहीं। साहित्य और व्याकरण आदि के माध्यम से जांच पड़ताल भी बेकार, क्योंकि दिनकर सत्यनारायण, नलिन, विलोचन, वियोगी, प्रभात, जानकी वल्लभ, रुद्र, देवेन्द्रनाथ आदि बुझे तारे नहीं। 'नई धारा' के बह जाने का भी खौफ़ नहीं। और अगर बिहार हिन्दी की दीवार है और पहले राष्ट्रपति का मुकाम तो इसकी पायेदारी की ओर इशारा ही काफी है।

हिन्दी का सर्व श्रेष्ठ दैनिक 'आज' लिखता है, 'इस में सन्देह नहीं कि बिहार से अब तक प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में यह सर्व श्रेष्ठ कही जा सकती है।

दिल्ली, पञ्जाब, हिमालय, पटियाला यूनियन, जम्मू कश्मीर के लिये
सोल एजंट—

शक्ति पब्लिकेशन्स, माडल टाऊन, लुध्याना।

प्रबन्ध पूर्णिमा

(उच्च परीक्षाओं के लिये निबन्ध साहित्य की सर्वोत्तम पुस्तक)

लेखक—हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध विद्वान

प्रो० हंसराज अग्रवाल ऐम. ए., पी. ई. ऐस.

यह पुस्तक उत्कृष्ट रचना शैली में नवीनतम सामग्री के साथ प्रकाशित हुई है, जिस ने अन्य सब पुस्तकों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। विषयों की सूची देखिये—

(१) साहित्य क्या है ? (२) ललित कलाओं में काव्य का स्थान। (३) मुसलमानों की हिन्दी सेवा। (४) हिन्दी साहित्य की वीर कविता। (५) तुलसीदास की सर्वाङ्गीणता। (६) मीरा और उसकी कविता। (७) हिंदी कवि और भारत की एकता। (८) हिन्दी के भक्ति साहित्य पर आलोचनात्मक दृष्टि। (९) कविता गगन में सूर को सूर का स्थान क्यों प्राप्त है ? (१०) सूर सूर तुलसी ससी। (११) छायावाद और रहस्यवाद। (१२) हिन्दी कविता में रहस्यवाद। (१३) प्रेमचन्द की प्रतिभा स्फूर्ति उनके उपन्यासों में अधिक प्रकट होती है अथवा गल्पों में ? (१४) दृश्य काव्य में जयशंकर का स्थान। (१५) शरत्पूर्णिमा को ऐतिहासिक स्थान की एक यात्रा। (१६) किसी पर्वतीय स्थान की स्वानुभूत यात्रा। (१७) श्मशान दृश्य। (१८) उपदेश से आदर्श उत्तम है। (१९) जब आये सन्तोष धन सब धन धूरि समान। (२०) मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। (२१) सच्चरित्रता और जीवन। (२२) विज्ञान की पिछले ४० वर्षों की प्रगति। (२३) हिन्दी सेवा में स्त्रियों का स्थान। (२४) प्राचीन भारत में स्त्रियों का स्थान। (२५) प्राच्य तथा पाश्चात्य नारी का जीवन लक्ष्य। (२६) जातियों के उत्थान पतन की समस्या। (२७) प्रजातन्त्रवाद और तानाशाही। (२८) ग्राम सुधार की आवश्यकता। (२९) कार्य सिद्धि में

लक्ष्य निर्धारण की आवश्यकता । (३०) चलते बोलते चित्र-पट। (३१) नदी तट का सायंकालीन दृश्य । (३२) हिन्दी नाट्य साहित्य का क्रम विकास । (३३) हिन्दी गीति काव्य । (३४) हिन्दी उपन्यासों में मनो विश्लेषण । (३५) विज्ञान की उपयोगिता । (३६) भारत का एक महान् वैज्ञानिक । (३७) हिन्दी को पंजाब की देन । (३८) स्वतन्त्रता संग्राम में पंजाबी महिलाओं का सहयोग । (३९) शरणार्थियों का पुनर्वास। (४०) हमारी खाद्य समस्या। (४१) कोरिया युद्ध। (४२) आधुनिक साहित्य में प्रगतिवाद । (४३) भारत का नवीन संविधान। (४४) महंगाई और मुद्राप्रसार । (४५) भारतीय स्वाधीनता के प्रथम तीन वर्ष । (४६) मार्शल योजना। (४७) शासन प्रणालियां । (४८) संसार के मुख्य आँदोलन। (४९) भारत-पाकिस्तान समझौता । (५०) संयुक्त राष्ट्र सङ्घ। (५१) हिन्दू कोड बिल। (५२) कश्मीर समस्या। (५३) विश्व शान्ति के उपाय । (५४) पश्चिमीय और पूर्वीय सभ्यता । (५५) दस वर्ष बाद का भारत । (५६) हिन्दी का भविष्य। (५७) वैज्ञानिक आविष्कार वर्तमान संसार के लिये अभिशाप सिद्ध हुए हैं । (५८) सभ्यता के वर्तमान युग में मानवता का पतन हो रहा है । (५९) देश, जाति और समाज के लिये अपने आप को परमोपयोगी बनाना विद्यार्थी जीवन का मुख्य कर्तव्य है। (६०) सह शिक्षा।

पृष्ठ संख्या ४२४+४०=४६४ सजिल्द मूल्य ४॥)

पता —

शक्ति पब्लिकेशन्स, माडल टाऊन, लुध्याना।

आधुनिक हिन्दी साहित्य

का

विचारात्मक अध्ययन

द्वारा

प्रिंसिपल शकुन्तला अग्रवाल प्रभाकर, साहित्यरत्न

इस में आधुनिक हिन्दी साहित्य की ५१ आवश्यक समस्याओं पर प्रश्न-उत्तर रूप में विचार किया गया है। साहित्य की गूढ़ तथा जटिल समस्याओं को भी अत्यन्त रोचक तथा सरल बना दिया गया है।

बी० ए०, भूषण, प्रभाकर तथा मध्यमा आदि परीक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये परमोपयोगी है।

मूल्य केवल १।)

सूचना–१) संस्थाओं तथा पुस्तक विक्रेताओं को विशेष सुविधायें दी जाती हैं।

२) १०० प्रतियां लेने वाले विद्यालय अथवा पुस्तक विक्रेता का नाम मुखपृष्ठ पर छापा जाता है।

प्रकाशक—

शक्ति पब्लिकेशन्स, माडल टाऊन, लुध्याना

Latest Invention

SHAKTI BRAND
Economical Duplicator

* No Carbon required.
* * No Stencil required.
* * * No Special paper required.
* * * * No special pen required.
* * * * * Available in different sizes :—

Card size	4″×6″
Letter pad size (small)	5½″×9″
Letter pad size (big)	7½″×9″
Full scape half (Register size)	8½″×13½″
Book size	10″×15″
Full scape	13½″×17″

Prints hundreds of copies without any difficulty.

Ask for rates and specimen work.

Special facilities are provided to canvassers and stockists.

Sole Distributors :—

S. GUPTA & Co.,

Model Town, **LUDHIANA.**

स्वाध्याय सदन के नियम व उद्देश्य

आजकल स्वाध्याय के जो स्तोत्र, पाठ, गुटके आदि मिलते हैं, उन में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं, जिस से कि पूरे फल की प्राप्ति नहीं होती। उनकी गैट-अप भी अच्छी नहीं होती। स्वाध्याय सदन का उद्देश्य ऐसे ग्रन्थों को शुद्ध रूप में और आकर्षकगैट-अप के साथ प्रकाशित करना है जिस से कि स्वाध्याय में मन लगे, और पूरे फल की प्राप्ति हो।

२. स्वाध्याय की पुस्तकों को सस्ते मूल्य पर देकर उनका प्रचार करना।

३. अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशिता स्वाध्याय की पुस्तकों को सर्व-सुलभ करना।

सदस्यता के नियम

१. **साधारण सदस्य**—प्रत्येक नर-नारी (बालक, युवा व वृद्ध) इस का सदस्य बन सकता है, प्रवेश शुल्क केवल १) है। सदस्यों को सभी प्रकाशित पुस्तकों की एक एक प्रति पौने मूल्य पर भेंट की जायेगी।

२. प्रत्येक संस्था और फर्म इस का सदस्य बन सकती है, प्रवेश शुल्क केवल १०) है। इन्हें अधिकार होगा कि प्रत्येक ग्रन्थ की जितनी प्रतियाँ चाहें अपने लिये पहले सुरक्षित करवा लें। ऐसी प्रतियाँ इन्हें दो-तिहाई मूल्य पर दी जायेंगी। उस से अधिक प्रतियाँ पौने मूल्य पर मिल सकेंगी।

३. **आजीवन सदस्य**—प्रवेश शुल्क केवल ५१)। इन्हें सभी प्रकाशित पुस्तकों की एक २ प्रति आधे मूल्य पर भेंट की जावेगी। ऐसे सदस्यों के परामर्शों पर सदन विशेष ध्यान देगा।

४. संरक्षक सदस्य–प्रवेश शुल्क केवल २५१) । इन्हें सभी प्रकाशित पुस्तकों की एक २ प्रति आजीवन मुफ्त भेंट की जावेगी। ऐसे सदस्यों के परामर्शों को सदन विशेष मान्यता देगा, तथा इनकी सूची व चित्र आदि प्रत्येक प्रकाशित ग्रन्थ में विशेष रूप से छापे जायेंगे।

स्वाध्याय सदन का कार्य

स्वाध्याय सदन अपने प्रस्तावित व प्रकाशित ग्रन्थों की सूचना समय २ पर सभी सदस्यों को देता रहेगा ताकि वे अपनी सम्मति आदि भेज सकें तथा इस के कार्य से विशेष लाभ उठा सकें।

सदन का पहला प्रस्तावित कार्य है त्यागमूर्ति गोस्वामी गणेशदत्त को उनके जन्म दिवस पर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करना। गोस्वामी जी के सभी मित्रों और भक्तों से निवेदन है कि वे हमें अपने लेख, संस्मरण, विचार, श्रद्धाञ्जलि, कविता आदि शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें। जिन महानुभावों के लेख छपेंगे, उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ की एक प्रति मुफ्त भेंट की जावेगी।

निवेदक—

संचालक स्वाध्याय सदन, २०० माडल टाऊन, लुध्याना

हमारे उद्देश्य

१. विविध उपायों से साहित्य का प्रचार करना।

२. लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यिकों की कृतियों को सर्वसुलभ बनाना।

३. उदीयमान लेखकों की सुन्दर मौलिक कृतियों को प्रकाशित करके उन्हें प्रोत्साहित करना।

४. लेखकों को उचित पारिश्रमिक देकर उनके जीवन-स्तर को ऊंचा करना।

५. प्रतिष्ठित प्रकाशकों का उत्तर भारत में प्रतिनिधित्व करना तथा उन्हें प्रचार में सहयोग देना।

६. प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं का उत्तर भारत में प्रतिनिधित्व करना तथा उनका प्रचार करना।

७. परोक्षोपयोगी साहित्य द्वारा विद्यार्थियों की सहायता करना।

८. बाल-साहित्यक को प्रचारित तथा प्रकाशित करना।

९. अपने सदस्यों को सस्ते मूल्य पर पुस्तकें देना।

१०. अपने लेखक-सदस्यों को साहित्यिक प्रतियोगिताओं द्वारा पुरस्कृत करना।

सदस्यता का प्रवेश शुल्क केवल १) है।

प्रबन्धक— शक्ति पब्लिकेशन्स,

मॉडल टाऊन, लुध्याना